आवश्यक स्पष्टीकरण

ज्ञानसार ग्रन्थावली का इतने लंबे समय से और इस रूप में प्रकाशित होते देख हर्ष और दुख दोनों की एक साथ अनुभूति होती है। हर्ष तो इसलिये कि अपनी २५ वर्षों की साध पूरी हो रही है और दुख इस बात का है कि जिस रूप में और जितनी शीघ्रता से हम इसका प्रकाशन करना चाहते थे, नहीं कर पाये। विधि का विधान कुछ ऐसा ही था कि इसमें हर्ष और शोक, ये दोनों ही करना वृथा है। पर हम अभी ज्ञानसारजी जैसे महायोगी की भाँति समत्व में नहीं पहुँच सके हैं।

विधि के आगे मनुष्य का प्रयत्न कुछ काम नहीं देता, इसका इस ग्रंथ के प्रकाशन प्रसंग से खूब अनुभव हुआ। पचीस वर्ष पहले बड़ी उमंग और आशा के साथ ज्ञानसारजी के ग्रन्थों की पाण्डुलिपि बड़ी लगन के साथ की थी। पन्द्रह वर्ष तो वह योंही पड़ी रही। बीच में चूहों ने भी कुछ सामग्री के पुर्जे-पुर्जे करके हमें सचेत किया। परम सत भद्रमुनिजी (सहजानन्दजी) की प्रेरणा व कृपा से ७।८ वर्ष पूर्व इसका छपवाना प्रारंभ किया। चारसौ छियासी पृष्ठों में ज्ञानसारजी की रचनाओं का एक भाग छप कर तैयार हुआ और ११२ पृष्ठों में उनका परिचय छप गया। मूल ग्रंथ के छपे हुए फरमे दफ्तरी को जिल्द बन्धाई के लिये दे दिये गये, पर उसी समय कलकत्ते में हिन्दु मुसलमानों का संघर्ष हुआ, हिन्दुस्तान पाकिस्तान

दो टुकडे हो गए। दफ्तरी मुसलमान था-कहां गया पता नहीं। बहुत खोज की गई, पर उसके मकान का भी पता न लगने से फरमे प्राप्त नहीं हो सके। तीन चार वर्ष इसी प्रतीक्षा में रहे कि दफ्तरी आजायगा और फरमें मिल जायगे। इसी बीच जिसने दफ्तरी को फरमे दिये थे वह व्यक्ति भी मर गया। समस्त आशाओं पर कुठाराघात होगया। ग्रन्थ को दुबारा मुद्रण करवाना पडा। पर सारे ही ग्रथ को मुद्रण करवाने में बहुत लम्बा समय लगता, इसलिये करीब आधे ग्रथ की सामग्री का पुनर्मुद्रण कर ही प्रकाशित किया जा रहा है।

सौभाग्य से प्राक्कथन, किंचित् वक्तव्य, अनुक्रमणिका और ज्ञानसारजी की जीवनी के फरमे दूसरे प्रेस मे छपवाने से यही मे मगवा लिये गये और वे बच गये। बाहर पडे रहने से खराब अवश्य हो गये है पर वे इसमे ज्यों के त्यों दिये जा रहे हैं। इसकी अनुक्रमणिका से पहले कितनी सामग्री मुद्रित हुई थी उसका विवरण मिल जाता है। पृष्ठ १७६ तक की रचनाए तो ज्यों की त्यों पुनर्मुद्रण हो गई है। उसके बाद हीयाली, बालावबोध और तत्त्वार्थ गीत बालावबोध को नहीं देकर सम्बोध अष्टोत्तरी, प्रस्तावित अष्टोत्तरी और आत्मनिंदा पूर्व क्रम से ही दी गई हैं। फिर पृष्ठ २६३ में पूर्व प्रकाशित गूढ(निहाल) बावनी और पृ० ४७३ में प्रकाशित नवपदपूजा दे दी गई है। तदनन्तर तीन पृष्ठ की सामग्री इसमें नई दी गई है जो उस समय नहीं दी जा सकी थी। इसके बाद पूर्व देश वर्णन दिया गया है। अवशिष्ट रचनाओं को हम दूसरे भाग में देंगे। वे रचनाए भी साहित्यिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत मूल्यवान है जो लगभग ५०० पृष्ठों की होगी। इसमें माला पिंगल, कामोद्दीपन, चन्द चौपाई,

समालोचना और राजाओं के वर्णनात्मक चित्र-काव्य-साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हैं और आनंदघनजी की चौबीसी का बालावबोध, पदों का विवेचन, आध्यात्मिक गीता बालावबोध, तत्त्वार्थ गीत बालावबोध आध्यात्मिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाएं सैद्धान्तिक या तात्त्विक हैं।

इस ग्रंथ के साथ ज्ञानसारजी के तीन चित्र, एक फोटो और इनके द्वारा रचित और स्वलिखित स्तवन का फोटो, दिये जा रहे हैं।

पूर्व प्रकाशित अनुक्रमणिका में पुनर्मुद्रण के समय आगे जो व्यतिक्रम हो गया है इसलिये नई अनुक्रमणिका यहां दी जा रही है।—

मूलग्रंथ

प्राक्कथन

"ज्ञानसार-ग्रंथावलीका प्रकाशन करके नाहटाजीने हिन्दी साहित्य के ऊपर बड़ा उपकार किया है। वस्तुत. हिंदीकी अक्षुण्ण परंपराकी जितनी रक्षा जैनोंने की, वैसा न होने पर हमे हिंदी भाषा और उसके साहित्य के विकास का बहुत अपूर्ण ज्ञान रहता। एक समय था, जब कि हमारे देश के विद्वान् संस्कृत से सीधे हिंदीकी उत्पत्ति मानते थे, फिर बीचकी कड़ी उन्होंने पाली-प्राकृतको माना। प्राकृत और आधुनिक हिंदी तथा उसकी भगिनी-भाषाओंके बीच की कड़ी अपभ्रंश थी, इस निष्कर्ष पर विद्वान् पहुंच तो गये, लेकिन अपभ्रंश साहित्य का कितना अभाव तथा कितना अल्प-परिचय हमारे लोगोंको अभी हाल तक रहा इसका इसीसे पता लगेगा, कि कितने ही जैन भंडारोंमें प्राकृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं के ग्रंथों को प्राकृत मान कर सूचियों में दर्ज किया गया। अपभ्रंश के कुछ छोटे-छोटे पद या पद्य-ग्रन्थ बौद्ध चौरासी सिद्धों के भी मिले जिन्हें महा-महोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्रीने "बौद्ध गान ओ दोहा" के नाम से प्रकाशित किया। उसके बाद बहुत थोड़े ही से नमूने और मिले, जिनमें से कुछ तिब्बत से प्राप्त हुये। यद्यपि तन-जुर में अनुवादित अपभ्रंश के छोटे-मोटे ग्रंथों की संख्या सौ से अधिक है, लेकिन उनका मूल शायद अब मिल नहीं सकता। लेकिन स्वयंभू, देवसेन, पुष्पदंत, जोगींदु, रामसिंह, धनपाल,

हरिभद्रसूरि, कन-कामर, जिनदत्तसूरि, आदि बहुत से प्रतिभाशाली अपभ्रंश कवियों के महाकाव्यों और काव्य-साहित्य की रक्षा करके अपभ्रंश-साहित्य के अब भी अवशिष्ट विशाल कलेवरको हमारे सामने रखनेका काम जैन ग्रंथ-रक्षकोंने ही किया। यही नहीं कि इन्होंने अपभ्रंश के पद्य-साहित्य का काफी भंडार सुरक्षित रखा, बल्कि उनके गद्यके नमूने भी पुराने जैन भंडारोंमें मिले है, खोज करनेपर वह और भी अधिक मिल सकते है।

जनता की भाषा हमारे देश मे जिस तरह बदलती गई उसी तरह उसकी शिक्षा और स्वाध्याय के लिये नई भाषाओंमें धार्मिक-साहित्य तैयार करनेकी आवश्यकता पड़ी। यद्यपि ब्राह्मण धर्म ने संस्कृतको ही सदा प्रधानता दी, तो भी पालि-प्राकृत और अपभ्रंश कालमें ब्राह्मणधर्मी धार्मिक साहित्य भी अवश्य कुछ बना होगा, लेकिन जान पड़ता है, उसके साथ वैसा ही बरताव किया गया, जैसे लड़के स्लेट पर लिखे लेखोंके साथ करते है। यही कारण है, जो कि तुलसी, सूर कबीर, विद्यापतिके पीछे जानेपर हमें अन्धकार दिखाई पड़ता है। बौद्ध तेरहवीं सदी मे ही यहा से विदा हो गये, लेकिन उनके अपभ्रंश ग्रन्थों का जो अनुवाद तिब्बती भाषा मे मिलता है। उससे मालूम होता है, कि जैनो की तरह उनके पास भी अपभ्रंश का काफी बड़ा भंडार रहा होगा। तो भी वह जैनोंके बराबर रहा होगा, इसमें सन्देह है, क्योंकि महायानने ब्राह्मणों की तरह संस्कृत को प्रधानता दे रखी थी, और चौरासी सिद्धोंकी परंपरा ही लोक-भाषा पर जोर देती थी। जैन भंडारों मे

अपभ्रंश काल में भिन्न-भिन्न व्रत-त्योहारों के लिये कथायें और माहात्म्य अपभ्रंश में लिखे गये अब भी मिलते हैं। इससे यही पता लगता है, कि लोक-शिक्षा के लिये कम से कम धार्मिक क्षेत्रमें जैन धर्माचार्यों का बराबर ध्यान रहा, कि अर्द्धमागधी और संस्कृत से अपरिचित जैन गृहस्थ नर-नारियोंके लिये उनकी भाषा में ग्रंथ लिखे जायँ। जब अपभ्रंश भाषा परिवर्तित होकर आधुनिक भाषाओंके प्राचीन रूप में आकर मौजूद हुई, तो उन्होंने इस भाषा में भी लिखना शुरू किया। यदि खोज की जाय, तो अपभ्रंश काल के आरंभ (७ वीं-८ वीं सदी) के बाद हिन्दी भाषी-क्षेत्रकी साहित्यिक भाषा का विकास किस तरह हुआ, इसके उदाहरण आसानी से प्रति शताब्दी और लगातार मिल सकेंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक हमारी दृष्टि सम्प्रदायों से बाहर नहीं जाती, इसीलिये जैन कवियों और साहित्यकारों की देनें हिंदी के विद्वानों के लिये भी बन्द पोथी सी हैं।

मुनि ज्ञानसार उसी परंपरा के रत्न थे, जिन्होंने श्रमण महावीर और बुद्ध के समय से ही लोक-शिक्षा के लिये लोकभाषा को प्रधानता दी, और उसमें हर काल में सुन्दर रचनायें कीं। ज्ञानसार के बारे में बहुत कुछ आगे लिखा गया है, और स्वयं उनकी कृतियों से भी बहुत-सी बातें मालूम हो सकती हैं, इसलिये उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि वह उस समय हुए, जब कि अंग्रेज अपने पैरोंको भारत में मजबूत कर रहे थे। पलासी के निर्णायक-युद्ध में अंग्रेजोंने जब अपने शासनको दृढ़ किया, उस समय ज्ञानसार (या नारायण जैसा कि पहले उन्हें कहा जाता था) तेरह वर्ष के

हो चुके थे। उनके गुरुओंने जिस भारतको देखा था, ज्ञानसार के सामने वह दूसरे ही रूप मे आया। म्लेच्छ मुसलमानों का शासन खतम हो रहा था और महाम्लेच्छ अंग्रेज अब उनकी जगह ले रहे थे। ज्ञानसार यद्यपि राजस्थान मे पैदा हुये थे। १८ वीं सदी में यात्रा सुविधा की नहीं होती थी, किन्तु उनको साधुदीक्षा लेने के बाद यात्रा करने का काफी मौका मिला। वह हिन्दी भाषी क्षेत्र से बाहर गुजरात-काठियावाड अनेक बार गये, इसमे कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि दोनों पडोसी प्रदेशों राजस्थान और गुजरात की सीमा निर्धारित करना बहुत समय तक कठिन रहा। आज भी इसी अनिश्चयका परिणाम हुआ राजस्थान के आबूका जबरदस्ती कटकर गुजरात में मिला लिया जाना। मुनि ज्ञानसार पूर्व मे बंगाल तक गये। उस समय यात्राओं के सुन्दर वर्णन की कोई कदर नहीं थी, जिसके कारण ही सैकडों अद्भुत साहसी यात्रियों और घुमक्कडोंको पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त करने पर भी हमारा देश यात्रा-साहित्य से वंचित रह गया। उनके वर्णन से मालूम होगा, कि देश-विदेश के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजों और स्वरूपोंके देखनेके लिये उनके पास कितनी पैनी बुद्धि थी। पूर्व देश उन्हें पसन्द नहीं आया, यह तो उनके इस वचन से ही मालूम होता है—

पूरब मति जाज्यो, पच्छिम जाज्यो, दक्षिण-उत्तर हो भाई।"

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर जानेमें उनको आपत्ति नहीं थी, फिर भी पूर्व के ऊपर ही इतना रोष क्यों? यदि पूर्व (बंगाल) में मछली-मांस खानेका बहुत रिवाज था, तो पश्चिम (पंजाब) में क्या भक्ष्याभक्ष्य की कमी थी? चाहे मुनि ज्ञानसार को

धारणा पूर्ववालों (बंगालियों) के प्रति सहानुभूतिपूर्ण न हो किन्तु उन्होंने वहांकी वेष-भूषा और कितने ही रीति-रिवाजोंका सुन्दर वर्णन किया है, जैसे :—

कडि[1] वेणी लटकें कपड़े फटकें, पाणी मटकें केसां सूं
क्या छोटी मोटी, क्या अवरोटी केस न बांधे लोगाई ॥ पूरब०॥८॥
सिर धरत्र सिन्दूरं, मांगन पूरं ताजू चूर सब अंगे।
कडि धोती बंधें, आधी खंधें कुछ न टंके सिर नंगे ॥
कर मे रँख-चूरी, खांचन पूरी, सोइ अधूरी बलि काई ॥ पूरब०॥६॥
जनपद पल[2]-भच्छी, मारै मच्छी, क्या मोटा[3] अरु क्या छोटा।
क्या कोई धीवर, क्या फुनि विजवर[4], खाने पीनै सब खोटा ॥
क्या नइयाऽदरजी, उनके मुरजी, क्या धोबी अरु क्या नाई ॥ पू०
जो ब्रह्म विचारै, बैन उचारै, अध्यातम रुपी दीसै।
जल कंठै जाइ, न्हाई धोई, जप करतां जलचर दीसै ॥
कर धर जपमाला, मच्छी वाला, पकड़ी थेलै पधराई ॥ पू० ॥१४॥
वेदध्वनि करता, मारग चलता, इक हाथे मच्छी लावै।
विण न्हायो भींटं, टेढो मीटं, देखी पाछौ फिर जावै ॥
गंगा जल नाही, फिरभींटाई, फिर आवै अरु फिर जाई॥पूरब०॥१५॥
ज्ञानसार-ग्रंथावलि (पृष्ठ ४३५-३७)

नाहटाजी ने जैनों के यहां पड़ी हुई हमारी साहित्यिक और ऐतिहासिक निधियोंको प्रकाशमें लाने का जो प्रयत्न किया है वह बड़ा ही स्तुत्य है, लेकिन उनका संग्रह और विशाल है, जिसको प्रकाश में लाना उतना आसान नहीं है, साथ ही ऐसे संग्रह का

१ कटि २ मांस ३ बड़ी जाति वाला ४ द्विजवर

अप्रकाशित रह जाना भी अच्छा नहीं है। मैंने उन्हें कहा था, कि टाइपराइटर और माइक्रोफ़िल्म के सहारे हर एक महत्वपूर्ण सामग्री की सौ-सौ प्रतियां निकलवाकर यदि देश-विदेश के जिज्ञासु विद्वानों और विद्यापीठोंके पास भेज दें, तो बड़ा काम हो। हमारे विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और संचालकों का भी कुछ कर्तव्य है। डाक्टरेट के लिये एक ही विषय को घुमा-फिराकर निबंधका विषय बनाया जा रहा है। विद्यार्थी और पथप्रदर्शक दोनों चाहते हैं कि "हर्रा लगे न फिटकिरी, रंग चोखा आवे।" अनुसंधान करनेके लिये यह कष्ट उठानेको तैयार नहीं। यदि प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध जैन भण्डारोंको सामग्री के अनुसंधान करने की प्रेरणा दी जाय, तो सुगमता से, बहुत से अनघ रत्नोंका पता और मूल्यांकन हो जाय। यह स्मरण रखना चाहिये, कि पाटन और जैसलमेर के भण्डारों में प्राचीन दुर्लभ बहुमूल्य ग्रंथ तो है ही, किन्तु हमारी वर्त्तमान भाषाओंके सम्बन्धकी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री आगरा, कालपी, लखनऊ जैसे नगरों के साधारण से समझे जानेवाले जैन-पुस्तकागारों मे भी है। यदि उत्तर-प्रदेश के चार भाषा विभागों अवधी, बुन्देली, ब्रज और कौरवी के क्षेत्रोंके जैन पुस्तकागारों के सविवरण सूचिपत्र तथा उनपर विश्लेषणात्मक निबन्ध लिखने के लिये डाक्टरेट की इच्छा रखने वाले चार तरुणों को लगा दिया जाय, तो इससे बहुत लाभ होगा।

मसूरी ३१-८-५२

राहुल सांकृत्यायन

किञ्चित् वक्तव्य

श्रीमद्ज्ञानसारजी के साहित्यसे हमारा सम्बन्ध विद्यार्थीकाल से है। लगभग ३० वर्ष पूर्व हमारी धर्मनिष्ठा पूजनीया मातुश्री ने श्रीमद् की आत्मनिन्दा संज्ञक रचना सुनने की इच्छा प्रकट की। अतः हमने उनको सुनाने की सुविधा के लिए प्रकाशित पुस्तक में से उसकी एक कापीमें नकल की थी। वह कापी आज भी हमारे पास विद्यमान है।

सं० १९८४ की वसन्तपंचमी को जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी बीकानेर पधारे और हमारी कोटड़ी में उनका चातुर्मास हुआ उनके सम्पर्क से जैनतत्त्वज्ञान और साहित्य की ओर हमारी अभिरुचि विकसित हुई। समय समय पर सूरिजी से श्रीमद् ज्ञानसारजी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती रहती थी। एक बार आपने अपने ज्ञानभंडार मे श्रीमद् के मालापिंगल की प्रति के सम्बन्ध में पोथी संख्या और पत्राङ्कों की संख्या सूचित करने के साथ साथ अंतिम पत्र के कुछ कटे हुए होने का भी निर्देशकर अपनी ३० वर्ष पूर्व की स्मृति की झांकी दी। मालापिंगल नाम बडा आकर्षक था। हमने आपकी सूचनानुसार उक्त पोथी खोल कर प्रति देखी। सूरिजी ने उसके बाद श्रीमद् के गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन की वह कड़ी भी हमें सुनाई थी जिससे उनके ९८ वर्ष की उम्र तक विद्यमान रहने की सूचना मिली थी।

तदनंतर साहित्य शोध के लिए स्थानीय ज्ञानभंडारोंका निरीक्षण करते हुए श्रीमद् की अन्य कृतिया भी अवलोकन में

आयी। इससे हमारा आपकी रचनाओं के प्रति आकर्षण बढ़ा और प्राप्त समस्त कृतियों की प्रेसकापी की जाने लगी। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी के पूर्वजों से श्रीमद् ज्ञानसारजी का आत्मीय सा सम्बन्ध था अतः उनके ज्ञानभंडार से हमें श्रीमद् की प्राय समस्त रचनाओं की सुन्दर प्रतियें प्राप्त हुईं।

साहित्यान्वेषण के साथ-साथ हमारा लक्ष्य कूड़े कचरे में डाले जाने वाले प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधि के संग्रह की ओर भी गया। बड़े उपाश्रय के बाड़े में पड़े हुए हस्तलिखित प्रतियों के अस्त-व्यस्त पत्रों को टोकरी व बोरों में भर कर खरीद किये गये। उनकी छंटाई करने पर श्रीमद् के अनेक ग्रंथों की स्वलिखित पोथियें-प्राथमिक खरड़े श्रीमद् को दिये महाराजाओंके खास रुक्के, श्रीपूज्यों के आदेशपत्र व प्रशंसात्मक फुटकर विकीर्ण पत्रादि विपुल सामग्री की उपलब्धि हुई। इसी कचरे में से श्रीमद् के जीवनचरित्र के दोहे वाले दो लघु पत्र भी हमें प्राप्त हुए जिनमें से एक तो करीब ७॥ इंच लम्बा और १॥ इंच चौड़ा ही था। बहुत खोज करने पर और बड़ी-बड़ी पुस्तकों में भी जिस वस्तु की प्राप्ति सम्भव न हो, कभी कभी वह ऐसे कूड़े कर्कट में डाले हुए छोटे से पुर्जे में मिल जाती है। साधारणतया ऐसे पत्रों को महत्व नहीं दिया जाता। पर न मालूम कितने ही हजारों लाखों पत्र जिनसे ऐतिहासिक सामग्री की अनमोल सूचनाएँ मिलती हैं, हमारी अज्ञानता व असावधानता के कारण नष्ट हो चुके हैं।

संयोग की बात, २२ वर्ष पूर्व जिन प्रतियों की प्रेसकापियां तैयार की गयी थीं वे इतने लंबे काल तक अप्रकाशित अवस्था

में ही पड़ी रहीं। इसी बीच श्रीमद् का साहित्य प्रकाशनार्थ कलकत्ते लाया गया पर तब तक काल परिपाक नहीं हुआ था। हम उसे गद्दी में छोड़कर बीकानेर चले गये और पीछे से मूषकों ने उसे अपना भक्ष्य बनाना प्रारंभ कर दिया। हमने वापस आ कर देखा तो इसके बहुत से पृष्ठ तो कातर कातर हो गये थे, कुछ रचनाएँ किनारे से भक्षित अवस्था में मिलीं। हमें अपनी असावधानी और गणेशवाहन की करतूत पर अत्यन्त खेद हुआ। इस घटना को भी लगभग १७ वर्ष बीत गये, प्रकाशनकी व्यवस्था न हो सकी। पर अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में श्रीमद् के जीवन सम्बन्धी दोहे, श्रीमद् के हाथ से लिखे हुए एक स्तवन और आप के चित्र का ब्लाक बनवाकर प्रकाशित कर दिया था।

अपने साहित्यिक शोध के प्रारंभकालमें कविवर समयसुन्दर सबन्धी कतिपय बातों के उत्तर प्राप्त करने के सिलसिले में जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई से हमारा सम्बन्ध स्थापित हुआ और वह क्रमश दृढतर होता गया। हमारे द्वारा बीकानेर के ज्ञानभंडारों की विपुल साहित्य और हमारे संग्रह की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की सूचना पाकर श्रीयुत देसाई बीकानेर पधारने के लिए उत्कंठित हो उठे। लंबी बाटाघाट के पश्चात् लगभग १२ वर्ष पूर्व उनका बीकानेर पधारना हुआ तो उन्होंने अपने प्राप्त श्रीमद् ज्ञानसारजी के पदोंकी एक सुन्दर प्रति की सूचना दी तो हमने अपने नकल किये हुए पद संग्रहकी प्रेसकापी उन्हें दिखलायी। आप श्रीमद्के पदोंकी मार्मिकतासे पहले से ही प्रभावित थे और सम्भवत प्राप्त प्रति की प्रेसकापी भी वे कर चुके थे अब हमारी प्रेसकापी भी वे जाते समय साथ ले गये

और श्रीमद् के समस्त पदों का सम्पादन कर दिया। अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल की ओर से इसके प्रकाशन की बात भी चली। हमारे मित्र श्री० मणिलाल मोहनलाल पादराकर प्रेस में देने के लिए उनसे प्रेसकापी भी ले गये पर संयोगवश वह प्रकाशित न हो सकी। देसाई जी का सम्पादित श्रीमद् के पद संग्रह का संस्करण अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होता पर खेद है कि उनके स्वर्गवास के अनंतर उनका संग्रह बहुत अस्तव्यस्त हो गया अतः बम्बई जाकर बचे हुए संग्रह का अवलोकन करने पर भी वह प्रेसकापी न प्राप्त हो सकी, संभवतः रद्दी कागजों में वह नष्ट हो गई होगी। जिस संग्रह के लिए स्वर्गीय देसाई ने अपना जीवन लगा दिया था और रात को १२ और दो-दो बजे तक कठिन परिश्रम कर सैकड़ों नोट्स एवं प्रेसकापियें तैयार की थी उनकी ऐसी दुरवस्था देखकर हृदय को बड़ा ही परिताप होता है। योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में साहित्यिक विद्वानों के किए हुए परिश्रम यों ही बेकार हो जाते हैं।

लगभग ८-६ वर्ष पूर्व पूज्य श्रीभद्रमुनिजी महाराजने अध्यात्मिक साधना की ओर उत्तरोत्तर बढते हुए श्रीमद् की रचनाओं को अवलोकनार्थ हम से मंगवाया और उनका स्वाध्यायकर उन्हें प्रकाशन की विशेष रूप से सूचना करते हुए आर्थिक सहायता का प्रबंध भी कर दिया। तदनुसार तीन वर्ष पूर्व यह ग्रंथ प्रेस में दे दिया पर प्रेस की असुविधादि के कारण यह ग्रंथ इतने लम्बे अरसे से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य भद्रमुनिजी ने इसमें रही हुई अशुद्धियां और प्रकाशन विलंब के लिए हमें मीठे उपालंभ भी दिये पर हम निरुपाय थे। पहले ग्रंथ छोटे रूप में

ही प्रकाशन का विचार था अतः प्रथम द्रव्य सहाय की स्वीकृति देने वाले सज्जन ने ८००) से अधिक देने की अनिच्छा जाहिर की तब पूज्यश्री ने मण्डूर निवासी सा० भेरामचन्द नेमचन्द को सूचित कर पूरे ग्रंथ की सहायता के लिए भी तैयार कर दिया। इधर हमारा भी लोभ बढ़ता रहा और ग्रंथ काफी बड़ा होता गया। फिर भी श्रीमद् की रचनाओं का यह एक ही भाग है और इसमें मुख्यत: अध्यात्मिक रचनाओं ही संग्रह किया गया है। श्रीमद् की जैन तत्त्वज्ञान और छंदादि इतर विषयक अन्य रचनाओं का लगभग इतना ही संग्रह अभी हमारे पास और पड़ा है। उन अप्रकाशित रचनाओं में श्रीमद् की साहित्यिक प्रतिभा की झांकी अधिक रूप से सन्निहित है।

हमारा विचार जीवनचरित्र के साथ श्रीमद् को दिये हुए खास (राजाओं के स्वयं लिखित) रुक्कों की पूरी नकलें देनेका भी था पर जीवनी बहुत लम्बी हो जाने से उस विचार को स्थगित रखना पड़ा। श्रीमद्की अध्यात्मिक रचनाओं में योगिराज आनंदघनजी की चौबीसी पर बालावबोध, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसे प्रकाशित करना भी नितान्त आवश्यक है पर स्वतंत्र पुस्तक जितना बड़ा होने के कारण इस संग्रहमें सम्मिलित नहीं किया जा सका। हर्षका विषय है कि उसका विशेष रूप से उपयोग करतेहुए हमारे मित्र जयपुर के जौहरी श्री उमरावचन्द-जी जरगड़ ने आनंदघनजी की चौबीसी पर आधुनिक ढंग का विवेचन लिखा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

हमें खेद है कि ग्रंथ में बहुतसी अशुद्धियां रह गयीं, पूज्य श्रीभद्रमुनिजी (श्रानकक-सहजानन्दजी)महाराजने उनका शुद्धिपत्र

भेजनेकी कृपा की जिसके लिए हम पूज्यश्रीके अत्यन्त आभारी हैं। इस ग्रंथके प्रकाशनका सारा श्रेय भी इन्हीं पूज्यश्री को है। अतः यह इन्हीं के चरणों में समर्पित है। आप अभी बहुत ही उत्कृष्ट साधना में लीन हैं, गुरुदेव इन्हें पूर्ण सफलता दें यही हमारी मनोकामना है। हमारी इच्छा थी कि पूज्यश्री इस ग्रंथ में दो चार शब्द लिखते पर आपने किसी भी प्रकार से प्रसिद्धि में आना स्वीकार नहीं किया। हमने आपकी इच्छा के विपरीत अपनी हार्दिक भक्ति वश आपश्री का फोटो देने की धृष्टता की है अतः हम इसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं।

विश्वविश्रुत महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपनी अनेक साहित्य प्रवृत्तियों में व्यस्त रहने पर भी प्रस्तुत ग्रंथ की प्रस्तावना प्रेमपूर्वक लिख भेजनेकी कृपा की इसके लिए हम आपके अनुगृहित है। स्वर्गीय आचार्य श्रीहरिसागरसूरिजी महाराजने अपने समय-स्थ गुटके से श्रीमद् के फुटकर पदों की दो दो चार नकल करा के भेजी एतदर्थ उनका आभार स्मरणीय है।

कलकत्ता वैशाख कृष्ण ७ सं० २०१०	अगरचन्द नाहटा भंवरलाल नाहटा।

अनुक्रमणिका

कृतिनाम		आदिपद	पृष्ठ संख्या
१६ श्री शांति	,, ,,	जय सब जग गयौ सब मेटयौ	८
१७ श्री कुंथुनाथ	जिन स्तवन	कुंथु जिनेसर साहिबा	८
१८ श्री अरनाथ	,,	अर जिन अमुध श्रद्धान विधान	८
१९ श्री मल्लिनाथ	,,	मल्लि मनोहर तुम्ह ठकुराई	९
२० श्री मुनिसुव्रत	,,	मुनिसुव्रत जिन वंदौ	९
२१ श्री नमिनाथ	,,	नमि जिन हम कलि के ससारी	१०
२२ श्री नेमि जिन	,,	ऐसे वसंत सखायो नेमि जिन०	१०
२३ श्री पार्श्वनाथ	,,	पास जिन तूं है जग उपगारी	११
२४ श्री वीर जिन	,,	वीतराग किम कहि वधमान	११
२५ कलश (गौड़ीचा	,,	गौड़ेचाजी तैं सुहि सुधि बुधि दीधी	११

३ बहुत्तरी पद संग्रह

आदिपद		पृष्ठ संख्या

आदिपद		पृष्ठ संख्या
३६ अवधो हम बिन जग कछु नाहीं	...	५५
३७ अवधू आतम तत गति धूमैं	...	५६
३८ अवधू या जग के जगवासी	...	५६
३९ अवधू आतम मरम भुलाना	...	५७
४० अवधू सुमति सुहागिनी जागी	...	५७
४१ अवधू आतम रूप प्रकाशा	...	५७
४२ अवधू आतम धरम सुभावैं	.	५८
४३ अवधू जिनमत जग उपगारी	.	५८
४४ अवधू कैसी कुटुम्ब सगाई	..	५९
४५ मेरा आतम अति ही अयाना	...	६०
४६ साधो भाई ऐसा जोग कमाया	...	६१
४७ साधो भाई आतम भाव परेखा	...	६१
४८ साधो भाई आतम खेल अकेला	...	६१
४९ साधो भाई जग करता कहि माया	..	६२
५० साधो भाई जब हम भये निरासी	..	६३
५१ सन्तो घर में होत लड़ाई	...	६४
५२ साधो भाई निहचै खेल अकेला	..	६४
५३ क्यूँ आज अचानक आए गोर	...	६६
५४ क्यूँ जात चतुर घर चिन बटोर	...	६६
५५ कित जइयैं क्या कहियैं बयान	..	६७
५६ मनमोहन मेरे क्यों न आये हो	...	६८
५७ छकी छबि बदन निहार निहार	...	६९
५८ सासरै री आज रग बधाई म्हारै	...	६९

आदिपद | पृष्ठ संख्या

४ जिनमत धारक व्यवस्था गीत बालावबोध ८०

५ आध्यात्मिक पद संग्रह

६ स्तवनादि भक्ति पद संग्रह

७ दादा गुरु स्तवन

अभय जैन ग्रन्थमाला के प्रकाशन

१—अभयरत्नसार	अलभ्य
२— पूजा संग्रह	,,
३—सती मृगावती	,,
४—विधवा कर्त्तव्य	,,
५—स्नात्र पूजादि संग्रह	,,
६—जिनराज भक्ति आदर्श	,,
७—संघपति सोमजी साह	,,
८—युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि	,,
९—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	᠁॥)
१०—दादा श्रीजिनकुशलसूरि	॥)
११—मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि	।)
१२—युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि	१)
१३—ज्ञानसार ग्रन्थावली	३॥)
१४— बीकानेर जैन लेख संग्रह	छप रहा है

प्राप्ति स्थान—

नाहटा ब्रदर्स

४, जगमोहन मल्लिक लैन

कलकत्ता—७
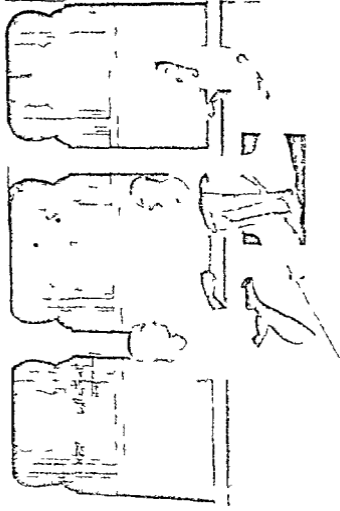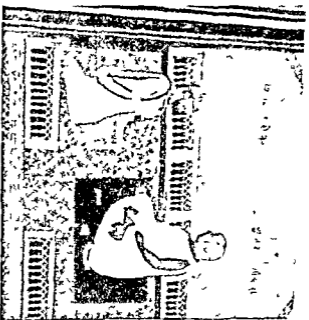
श्रीमद् ज्ञानसारजी, अमीचन्दजी सेठिया,

श्रीमद् ज्ञानसारजी

योगिराज श्रीमद् ज्ञानसारजी

सन्त पुरुष मानव समाज के पथ प्रदर्शक होते हैं। विश्व के प्राणियों को उनकी अनुपम देन प्राप्त होती रहती है। उनका साधनामय जीवन मानव-समाज के जीवन-निर्माण व उत्थान के लिए आदर्श दीपस्तंभकल्प होता है। उनके दर्शन मात्र से भव्य जीवों के हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनकी प्रशान्त मुद्रा से व्यथित हृदय में भी शान्ति का अनुभव होता है। मानव ही नहीं उनकी करुणा व कृपा का श्रोत तो पशुपक्षी आदि अबोध प्राणियों पर भी एकसा प्रवाहित होता है, तभी तो योगी के लिये भगवान् पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र मे कहा है कि "अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग"। उनके विश्वप्रेम की अनुपम भावना से प्रभावित होकर सिंह और बकरी भी अपने जातिगत वैरभाव को त्याग कर एक घाट पानी पीते हैं। दुष्ट से दुष्ट प्राणी भी उनके प्रभाव से शिष्ट बन जाते हैं। सन्तों का पवित्र जीवन स्वयं कल्याणमय होने के साथ साथ दूसरों के लिए भी कल्याणकारी होता है। उनकी वाणी में जादू का सा असर होता है, जिसके श्रवण और स्वाध्याय से जिज्ञासुओं के हृदय में अपूर्व आनन्द का उद्भव होता है। और

वस्तुस्वरूप का भान होकर अकरणीय कार्यों को त्याग एवं आत्मोत्कर्ष-पथगामी होने की अनुपम प्रेरणा मिलती है। संतों के सत्संग का बड़ा भारी माहात्म्य है। महाकवि तुलसीदासजी के शब्दों में:—

"एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी सङ्गत साधु की, कटै कोटि अपराध॥"

सन्तों का क्षणमात्र का समागम एक भव का नहीं, अनेकों भवों के पापों का नाश कर देता है।

चिर अभ्यास के कारण मन सर्वदा बाह्य पदार्थों एवं इन्द्रियों के विषयों को ही प्रिय एवं सुखदाता समझकर उन्हीं में फंसा रह आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर नहीं होता। शमरस के आनन्द का अनुभव न होने के कारण ही स्थायीसुख न मिलने पर भी मन पर पौद्‌गलिक विषयों की ओर धावित रहता है।

बहिर्दृष्टि विद्वानों के मतानुसार भलेही क्षणिक सुखमय शृङ्गार रस सर्वश्रेष्ट हो, परन्तु वस्तुतः शान्तरस का अनुपम आनन्द अनिर्वचनीय है। शृंगाररस उसकी कोटि में नगण्यसा ही है। जिसने शम की अनुभूति प्राप्त की है, वही उस अनिर्वचनीय आनंद को समझ सकता है।

सन्त पुरुषों ने अपनी साधना द्वारा जो अध्यात्मशांति रूप अमृत खोज निकाला, वह सचमुच अनुपम था। अध्यात्म प्रेमी विरल व्यक्तियों ने ही उनके प्रसाद से उस अमृतरस का यत्किञ्चित् आस्वादन प्राप्त किया है।

सन्तों की वाणी, अनुभव प्रधान होने से, बहुत ही उद्‌बोधक और हृदयस्पर्शी होती है। वह मोहनिद्रा में भान भूले व्यक्तियों में

नवचेतना लाती है । ज्यों ज्यों उस वाणी का अवगाहन किया जाता है वह जिज्ञासु को आनंद विभोर कर देती है अध्येता परमानंद रसमें सराबोर हो जाता है । सन्त का भौतिक देह तो प्रकृति धर्मानुसार समय आने पर विलीन हो जाता है, पर उनका अक्षर देह युग युगान्तरों तक जीवन सन्देश देता रहता है, जिससे आध्यात्मिक जीवन-स्तर ऊंचा उठता रहता है । सन्त और सन्तवाणी के सदृश मानव के लिए उत्तम कल्याणपथ अन्य नहीं है । अतः इसे हृदयंगम करते हुए जब कभी व जहाँ कहीं भी सन्त का संयोग मिले उससे लाभ उठाना चाहिये एवं सन्तवाणी का तो नित्य व निरंतर स्वाध्याय कर आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना चाहिये ।

वैसे तो विश्व के प्रत्येक देश व प्रान्तमें सन्तों का प्रादुर्भाव होता है, फिर भी भारतवर्ष आध्यात्मप्रधान देश होने से यहाँ सन्तों का आविर्भाव प्रचुर मात्रा में हुआ है । इसके एक छोर से दूसरे छोर तक आज भी सन्त महात्मा उपलब्ध होते हैं । ऐसी अवस्था में भारत संतों की लीलाभूमि है—कह दें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । ये सन्त किसी देश जाति या सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं किन्तु वे सार्वजनिक निधिरूप हैं ।

भारत में प्राचीनकाल से सन्तों की कई अखण्ड परम्पराएं चली आती हैं । उनमें साधना प्रणाली प्रत्येक की पृथक पृथक दृग्गोचर होती हैं पर साध्य सबका एक ही प्रतीत होता है। प्रारम्भमें विचारभेद और क्रियाभेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है, पर आगे चलकर वह नष्ट हो जाता है और मुख्य ध्येयका एकीकरण हो जाता है । इसलिये तो कहा गया है कि:—"एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" ।

भारतीय सन्त परम्परा का इतिहास बहुत विस्तृत है। इनमें प्रधानतया दो परम्पराएं हैं एक वैदिक परंपरा और दूसरी श्रमण परंपरा। वैदिक परंपरा में अन्य सम्पूर्ण सन्त परंपराओं का समावेश हो जाता है और श्रमण परंपरा में जैन एवं बौद्ध परंपराओं का। इन परंपराओं में समय समय पर अनेकों नष्ट हो गई और कई नवीन परंपराओं का प्रादुर्भाव भी होता रहा है।

अपभ्रंश काल में सन्त साहित्य की प्रधानतया दो धाराएं नजर आती हैं, (१) सिद्धों और नाथपंथियों की, एवं (२) जैनों की। फिर भक्तिकाल में भक्तिवाद ने जोर पकड़ा, और तीसरी भक्तिमार्गी सन्त परम्परा कायम हुई। यह भक्तिधारा अल्प समय में ही अत्यधिक विस्तृत हो गई। भक्ति अध्यात्म की सहचारिणी है, साथही भक्ति का आध्यात्म पर प्रभाव भी लक्षित होता है। ये दोनों अध्यात्म और भक्ति धाराएँ अत्यधिक निकटवर्ती होने से इनका सामञ्जस्य—एकीकरण हो ही जाता है।

हिन्दी साहित्य के उन्नयन और भाषा के विकास का बहुत बड़ा श्रेय इन सन्तों को ही प्राप्त है। सन्तों की वाणी राष्ट्र के इस छोर से उस छोर तक प्रचारित होने के कारण ही हिन्दी प्रान्तीयता से ऊपर उठकर साहित्य की परिमार्जित भाषा बनती हुई राष्ट्र भाषा पद पर आसीन हो सकी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन सन्तों का भी महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। दोहापाहुड, परमात्म-प्रकाशादि ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य में जैन संत साहित्य की परपरा प्रारंभ होती है। १७ वीं शताब्दि से अब तक की हिन्दी जैन

साहित्य का लेखा लगाया जाय तो वह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा।

कबीर आदि संतों के पदों का तथा तत्कालीन वातावरण का प्रभाव जैन सन्तों पर अत्यधिक लक्षित होता है। जिन जैनों कवियों की मातृभाषा गुजराती व राजस्थानी थी, तथा जिन्होंने अपनी अनेकों रचनाएं अपनी मातृभाषा में की उन सन्तों ने भी पद साहित्य के लिए हिन्दी भाषा को ही चुना और उसी में रचनाएं की, फलतः जैन कवियों के हजारों की संख्या में भक्ति एवं आध्यात्मिक पद हिन्दी भाषा में उपलब्ध हैं। ये पद बहुत ही उद्बोधक और हृत्तलस्पर्शी है कलापक्ष एवं भावपक्ष उभय दृष्टि से बहुमूल्य हैं। कई कवियों के पद संग्रह तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। बनारसीदास, रूपचन्द, द्यानत, भूधर आदि दि० एवं श्वे० समय सुन्दर, जिनराजसूरि, आनंदघन, यशोविजय, विनयविजय, धर्मवर्द्धन, ज्ञानसार, ज्ञानानन्द चिदानन्द आदि पचासों जैन कवियोंके गेय पद हिन्दी भाषामें प्राप्त हैं। पर खेद है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं गीतिकाव्य सम्बंधी बड़े बड़े लेखों व ग्रन्थों मे इन जैन संतों का कहीं भी नाम निर्देश तक प्राप्त नहीं होता। अतः विद्वत्समाज से अनुरोध है कि वह इन सन्त कवियों के साहित्य का अध्ययन कर हिन्दी साहित्य के इतिहास व गीतिकाव्य सम्बन्धी ग्रन्थों में उचित स्थान अवश्य दें। अन्यथा इतिहास सर्वाङ्गीण न हो सकेगा।

हिन्दी सन्त साहित्य का विहंगावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सुन्दरदासादि थोड़े से सन्तों को छोड़कर अधिकांश सन्त साधारण पढ़े लिखे ही थे, फलतः उनके साहित्य में, साधनामय जीवन के

कारण भावों की अभिव्यक्ति तो सुन्दर ढंग से हुई है, पर काव्य कला की दृष्टि से वह उच्चकोटि का नहीं मालूम देता। इधर जैन सन्त, साधनाशील होने के साथ साथ उच्चकोटि के विद्वान भी थे, अतः कविता की दृष्टि से भी उनकी रचनायें निम्नस्तर की नहीं हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे ही एक अध्यात्ममस्त योगी जैनकवि के रचनाओं के संग्रह का प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है जो उच्चकोटि के योगी व सन्त होने के साथ काव्यमर्मज्ञ विद्वान भी थे, आगे के पृष्ठ उन्हीं की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करेंगे।

जन्म राजस्थानवर्ती प्राचीन जांगल देश की राजधानी, जांगलू[1] बीकानेर राज्य का एक अतिप्राचीन स्थान है। यहां से पांच मील की दूरी पर स्थित जेगलेवास में उन दिनों जैनों की अच्छी बस्ती थी। अब तो लोग वहांसे उठकर देशनोक आदि स्थानोंमें जाकर बस गये हैं। ओसवाल जाति के सांड गोत्रीय श्रेष्ठी उदयचन्द जी वहां

---

१ जांगलू में एक जैन मन्दिर तथा सत जामाजी का प्राचीन स्थान है। सवत् ११८१ का एक अभिलेख कूए पर तथा शिवालय के सामने है। बीकानेर के श्री वासुपूज्य जिनालय तथा चिंतामणि जी के मन्दिर में विराजमान प्रतिमाद्वय के परिकरोत्कीर्णित अभिलेखों से मालूम होता है कि वहां भगवान महावीर का विधिचैत्य था और उस जिनालय में स० ११७६ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ के दिन साढक श्रावक के सुपुत्र तिहक ने शान्तिनाथ बिम्ब की स्थापना की थी। दूसरा लेख इसी मिती का अजयपुर से सम्बन्धित है। यह अजयपुर भी जांगलू का ही उपनगर था। जांगलू स्थित शिवालय के सामने वाले लेख में भी अजयपुर नाम पाया जाता है।

निवास करते थे, जिनकी धर्मपत्नी का नाम जीवणदेवी था। सं० १८०१ में आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिनका नाम नाराण, नराण या नारायण रखा गया जो आगे चलकर नराणजी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए[2]। ज्ञानसार इन्हीका दीक्षा नाम था।

शिक्षा संवत् १८१२ में मारवाड़ में भयंकर दुष्काल पड़ा था। जिसका वर्णन "बांडो काल बारोतरो" के नाम से प्राचीन साहित्य में मिलता है। ग्राम्यजीवन सुकाल में ही सुखमय होता है, दुष्काल में नहीं; अतः माता-पिता की विद्यमानता या अविद्यमानता[3] में आप ग्रामका परित्याग करके साधन-सुलभ बीकानेर नगर में आये और सर्वप्रथम बड़े उपाश्रय में विराजमान श्रीजिनलाभसूरिजी[4] महाराजकी चरण-सेवा में उपस्थित हुए। सूरिजी महाराज ने आपकी भव्याकृति तथा विचक्षण बुद्धि देखकर श्रावक-बालक होने के नाते विद्याध्ययन के लिए विशेष प्रेरणा की और व्यवस्था का सारा भार स्वीकार कर अपने तत्त्वावधान में रख लिया।

---

२ देखिये हमारे 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में प्रकाशित "ज्ञानसार अवदात दोहे"।

३ प्रमाणाभाव से निश्चित नहीं कहा जा सकता।

४ बीकानेर राज्य के बापेउ गांव में बोथरा पञ्चायनदास की धर्मपत्नी पद्मादेवी की कुक्षी से सं० १७८४ श्रा० सु० ५ के दिन आपका जन्म हुआ। जन्म नाम लालचन्द था। सं० १७९६ ज्येष्ठ सुदि ६ जैसलमेर में श्रीजिनभक्तिसूरिजीसे दीक्षित हो लक्ष्मीलाभ नाम पाया। सं० १८०४ ज्येष्ठ शुक्ला ५ के दिन श्रीजिनभक्तिसूरिजी ने मांडवीबंदरमें आपको आचार्य पद पर स्थापित किया। आपने बहुतसे जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठायें की तथा अनेक देशोंमें विहार किया था। सं० १८१९ ज्येष्ठ वदि ५ को ७५ यतियों सहित श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ यात्रा, सं०

दीक्षा श्रीजिनलाभसूरिजी के पास आपका विद्याध्ययन निर्विघ्न होने लगा। सं १८१५ में सूरिजी ने बीकानेर से विहार कर दिया, नराणजी भी साथ ही थे। गारबदेसर में चातुर्मास बिताकर मि० ब० ३ को विहार कर समस्त थली-प्रान्त में विचरते हुए आचार्य-श्री जैसलमेर पधारे। जैसलमेर उन दिनों समृद्धिशाली और जैनों की बहुत बड़ी बस्तीवाला क्षेत्र था। सूरिजीने वहां सं० १८१६-१७-१८-१९ के चार चातुर्मास करके धर्मध्यान का खूब लाभ लिया, श्रीलौद्रवाजी तीर्थ की यात्रा भी कई वार की थी। वहां से विहार कर श्रीगोड़ी पार्श्व-नाथजीकी यात्रा करते हुए सं १८२० का चातुर्मास गुढेमें किया। फिर महेवा प्रदेश को वंदाते हुए श्री नाकोड़ाजी तीर्थ का वन्दन किया। सं० १८२१ का चातुर्मास जरोल हुआ। वहाँ से क्रमश विहार करते हुए

१८२१ फाल्गुन शुक्ला १ को ८५ यतियोंके साथ आबू तीर्थयात्रा, स० १८२७ वैसाख शुक्ला १५ को ८८ यतियोंके परिवार सह श्रीकेशरियाजीकी यात्रा, स० १८३० माघकृष्णा ५ को ७५ यति सह शत्रुंजय यात्रा, वहां से जूनागढ आकर १०५ यतियों के साथ गिरनार यात्रा, स० १८३३ चै० ब० २ को श्रीगौड़ीजी की एवं श्री सखेश्वरजी आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। स० १८२७ वैसाख शुक्ला १२ को सूरत में १८१ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा की तथा स० १८२८ में फिर वहीं ८२ बिम्ब प्रतिष्ठित किये। पर-पक्षियों पर विजय प्राप्तकर अनेक देशोंमें विहार करते हुए स० १८३४ आश्विन कृष्णा १२ को आप गुढ़ा में स्वर्ग सिधारे। आप अच्छे कवि भी थे, आपकी दो चौबीसियां प्रकाशित हैं एव अनेक स्तवन, स्तुतियां उपलब्ध हैं। आपने सवत् १८३३ में आत्मप्रबोध नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी। परम्परानुसार यह उ० क्षमाकल्याणजी की रचना है, ग्रन्थकी प्रशस्ति में उनका नाम सशोधक के रूप में आता है। प्रस्तुत ग्रन्थ २।३ स्थानों से प्रकाशित हो चुका है।

सूरि महाराज पादरु ग्राम में पधारे। स्मरण रहे कि श्रीजिनलाभ-सूरिजी महाराज पैदल विहारी थे और समयानुसार संयम में प्रवृत्त रहते हुए विचरते थे। हमारे चरितनायक को भी इनके साथ रहते ६ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था, इसी बीच व्याकरण, काव्य कोष, छंद, अलंकार, आगम, प्रकरणादि का अभ्यास भी उच्चकोटि का कर चुके थे और दीक्षा के योग्य २१ वर्ष की परिपक्व अवस्था प्राप्त थे अतः सूरि महाराजसे निवेदन कर शुभ मुहूर्तमें सं० १८२१ के मिती माघ शुक्ला ८ के दिन सिद्धियोग में पादरु गांवमे आपने दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के अनंतर सूरिजी ने आपका गुणनिष्पन्न नाम "ज्ञानसार" रखा और प्रथम अपना शिष्य बनाया पश्चात् अपने शिष्य श्री रत्नराज गणि (रायचंदजी) के शिष्यरूप में इनकी प्रसिद्धि की।

आचार्य श्री के साथ विहार दीक्षा के पूर्व ६ वर्षों तक आपको आचार्यश्री की निश्रा में रहने का सुयोग मिला था इसी बीच आपने अनेक तीर्थों की यात्रा भी की थी जिनमे स० १८१६ ज्येष्ठ वदि ५ को गोडी पार्श्वयात्रा उल्लेखनीय है। दीक्षा के अनंतर मिती फाल्गुन शुक्ला १ को आपने सूरिजी के साथ श्री आबू महातीर्थकी यात्रा की। तदनन्तर खेजड़ले, खारिया रहकर रोहीठ, मंडोवर, जोधपुर, तिमरी होकर सं० १८२३ में मेड़ते में चातुर्मास बिताया। चातुर्मास के अनन्तर सूरि महाराज जयपुर पधारे। श्री संघ के हर्ष का पारावार न रहा। धर्म ध्यान का खूब ठाट रहा। जयपुर मानो स्वर्गपुरी ही थी। वहाँ

[१] आपकी दीक्षा स० १८१० मिती श्रावण वदि १० को बीकानेर में श्री जिनलाभसूरिजी के समीप हुई थी।

घड़ियों की तरह दिन बीते। संघ का अत्याग्रह होने पर भी यशस्वी पूज्यश्री वहाँ न रुककर मेवाड़ पधारे और उदयपुरसे १८ कोश पर स्थित धुलेवा ग्राममें श्रीऋषभदेव—केसरियानाथजी[1] की यात्रा सं० १८२५ वैसाखी पूर्णिमा को ८८ यतियों के परिवार सह हुई। फिर सं १८२५ का चातुर्मास उदयपुर में पाली वालों के पट्ट पर (उपाश्रय में) किया। बीकानेर के संघ को आशा थी कि अब नागौर होते हुए पूज्यश्री अवश्य बीकानेर पधारकर हमारी आशा पूर्ण करेंगे पर सूरि महाराज सीधे साचौर[2] पधारे और सत्यपुर मण्डण श्रीमहावीर स्वामी के दर्शन किये।

सूरत में जिन बिम्ब प्रतिष्ठा

सूरत[3] बन्दरमें नव्य जिनालय तथा नव्य जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा कराने के लिये सूरत का संघ लालायित था। जब सूरिमहाराज साचौर थे, सूरत के संघकी विज्ञप्ति आई और सूरि महाराजने अपने शिष्य परिवार के साथ वहां के लिए विहार कर दिया। सं० १८२६ मि० ज्येष्ठ वदी ८ शनिवार को जब आप सूरत में विराजमान थे, पादराके माना, हीनाभाई, फत्तानजी भाई, जीवणदास, मनेरचंद आदि श्रावकोंने आपको जो पत्र दिया था उससे मालूम होता है कि उस

---

१ यह तीर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय सम्प्रदाय मान्य है। यहां का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये चंदनमलजी नागौरी लिखित "केशरिया तीर्थ का इतिहास देखना चाहिये"।

२ यह जोधपुर राज्य का प्राचीन स्थान है। जिनप्रभसूरि के सत्यपुरीय महावीर कल्पादि में इस तीर्थ के सम्बन्धी ज्ञातव्य मिलता है। तिलकमंजरी के रचयिता महाकवि धनपाल यहाँ आकर रहे थे व सत्यपुरीय महावीर उत्साह की रचना की जिसमें इस तीर्थ का महिमा वर्णित है। देखें जैनसाहित्य संशोधक वर्ष ३।

३ सूरत के जैन इतिहास सम्बन्धी तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं विशेष जानने के लिए उन्हें देखना चाहिये।

समय सूरिजी पं० हीरधर्म, पं० महिमाधर्म, पं० रत्नराज, पं० विवेक कल्याण पं० उदयसार और पं० ज्ञानसार आदि २७ ठाणा से थे। सं० १८२७ वै० सु० १२ को सूरत में १८१ बिम्बों की तथा सं० १८२८ में फिर ८२ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई। इस समय ज्ञानसारजी का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था। आपके अक्षर मोती की तरह सुन्दर थे, आपके रचित श्री पार्श्वनाथ स्तवन सूरतमें ही लिखा हुआ है—जिसका चित्र इसी ग्रन्थ में दिया जा रहा है। प्रस्तुत स्तवन भी इस ग्रन्थ के पृ० १२६ मे मुद्रित है। इससे मालुम होता है कि आपने लघु कृतियों का निर्माण तो यौवनावस्था में ही प्रारंभ कर दिया था[1] पर बड़ी बड़ी कृतियां आपने अपनी परिपक्व

---

१ सं० १८२६ के आसपास श्रीजिनलाभसूरिजी के गुण वर्णनात्मक रचे हुए ३ छप्पय छन्द उपलब्ध हैं। जिन्हें यहां दिया जाता है:—

(१) सत मन साहस संत, साहसीकां सिर टीकौ।
सिर सूरां सिर सेहरौ, सील पालण सब नीकौ।
सुमति सुपति सहु धार, सूर गुण सिगला राजै
सेवक कुं सुख दयण, सैल भ्रम मारग साझै।
सोभे सदीव सोभागधर, सीध सकल सुगुण सुथिर।
ससार पारुतारण सदा, सद्गुरु श्री जिनलाभ वर ॥१॥

इति श्रीजिनलाभसूरिराजानां सकार द्वादशाक्षरी गर्भिता स्तुति विहिता विपश्चित् ज्ञानसारेण।

(२) मैन राज रुप इसो, तेज कला तसु चन्द
जैन राज दीपै जिसो, श्रीजिनलाभ सूरिन्द ॥१॥

बाबाजी श्री ज्ञानसारजी कृत छै ॥ सही २ ॥

(३) सवैया तेतीसा:—

भल हलतौ भानु किधुं,शारद कौ चंद किधुं, सुखहूको गाज मानुं अवाज घनराज कौ।
भुजन प्रचण्ड किधुं सुमेर गिरि दण्ड चंड,साहस जिनचद किधुं सत्व मृगराज कौ॥
छाती कौ कपाट किधुं कपाट जम्बुद्वीप जू कौ, राजहंस चाल किधुं गमन गच्छराज कौ।
सगुननि कौ आगर यू सागर रत्नागर सौ,सूर कौ प्रताप किधुं प्रताप गच्छराजकौ॥१॥
॥ कृतिरियं प। प्र। ज्ञानसारगणेः ॥

अवस्था में ही बनाई थी। प्रारम्भ से ही आपकी वृत्ति अन्तर्मुखी थी, अतः आपने आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। आनंदघन चौवीसी बालावबोध से मालूम होता है कि आपने सं० १८२६ से ही श्रीमद् आनन्दघनजी के अर्थ गाम्भीर्यवाली आध्यात्मिक व तात्त्विक भावपूर्ण चौवीसी-स्तवनों की अर्थविचारणा प्रारम्भ कर दी थी।

आचार्य श्रीजिनलाभसूरिजीने सं० १८२६ में राजनगर चातुर्मास किया वहां तालेवरने बहुतसे उत्सव किये तथा दो वर्षतक बड़ी भक्ति थी। वहां से श्रावक संघ सहित शत्रुंजय और गिरनार महातीर्थों की यात्रा कर सं १८३० में वेलाउल पधारे। कच्छ देश के श्रावकों के अत्याग्रह से सं० १८३१ में मांडवी चातुर्मास किया। बन्दरगाहों से समुद्री व्यापार करने वाले लक्षाधीश तथा कोट्याधीश श्रावकों ने १ वर्ष पर्यन्त खूब द्रव्य व्यय करके धर्म ध्यान का ठाठ किया। सं० १८३२ में इसी प्रकार भुज में चातुर्मास हुआ। सं० १८३३ में आप मनरा बन्दर होते हुए क्रमशः गुढा पधारे और वहीं सं १८३४ के चतुर्मास में मिती आश्विन कृष्ण १० को सूरि महाराज स्वर्ग सिधारे। इन वर्षों में प्रायः हमारे चरित्रनायक सूरिजी की छत्रछाया में विचरे थे। इनके गुरुमहाराज श्रीरत्नराज गणि का स्वर्गवास तो इससे पूर्व ही हो गया मालूम देता है पर इस वर्ष दादा गुरु श्रीजिनलाभसूरिजी का भी विरह हो गया। श्रीजिनलाभसूरिजी के विहारका वर्णन हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में प्रकाशित दोहे आदि के आधार से किया गया है।

वाचक राजधर्म जी के साथ—

सं० १८३५ में श्री जिनलाभसूरिजी के सात शिष्य अलग अलग हुए, तब से आप अपने गुरुश्री के गुरुभ्राता वाचक श्रीराजधर्मजी के साथ रहने लगे। संवत् १८४० को सौभाग्यधर्म गणि की पृष्ठ टिप्पनिका[१] से मालूम होता है कि आप वै० व ४ सं० १८४० में वाचकजीके साथ गूढा नगर में थे। सं० १८४१ चै० व० १ के पत्र से मालूम होता है कि आप पाली में वा० हीरधर्म तथा वा० राजधर्म जी के साथ थे। इसके बाद वाचक राजधर्म जी नागौर चले आये तथा ज्ञानसार जी किसनगढ़ गये। वहां सं० १८४२ से १८४४ के तीन चातुर्मास बिताकर फिर नागौर में वाचकजी से मिले। दोनों के वस्त्र पुस्तकादि परिग्रह की ४ गांठें नागौर में छोड़ कर आप जयपुर आगये। सं० १८४५ मिती वैसाख कृष्ण १ को लखनऊ से श्रीजिनचंद्रसूरि जी के दिये आदेशपत्र से मालूम होता है कि उस समय आप जयपुर थे और इसी आदेशपत्रानुसार तथा फारखती पत्र से ज्ञात होता है कि सं० १८४५-४६—४७ के तीन चातुर्मास वाचकजी के साथ ही जयपुर हुए। स० १८४८ का चातुर्मास श्रीज्ञानसारजी ने जयपुर ही किया और वाचक राजधर्मजी पुहकरण जाकर स्वर्गवासी हो गये।

---

१ ज्ञानसारजी के समय यति लोग रुपये पैसे आदि परिग्रह रखने लग गये थे अतः अपने आयुष्य का अन्त निकटवर्ती जानने पर वे अपनी विद्यमानता में गच्छ के समस्त यतियों को इच्छानुसार ॥) या १) वितीर्ण करते तब यतियों के संघाड़ों की नामावलि लिखी जाती उस लेखको हर्ष टिप्पनिका और स्वर्गवास के अनन्तर शिष्यों द्वारा गुरु की स्मृति में ॥), १) वितीर्ण किया जाता उस समय के टिप्पनक को पृष्ठ टिप्पनिका कहा जाता है।

सं० १८४८ में जब आप जयपुर में थे, तत्कालीन आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आपको यहां से विहार करके महाजनटोली जाने का आदेश दिया, आदेशपत्र की नकल इस प्रकार है :—

सही

॥ श्री ॥

॥ स्वस्ति श्री पार्श्वेशं प्रणम्य ॥ श्रीलखणेऊ नगरात्भट्टारक। श्रीजिनचन्द्रसूरिवराः सपरिकरा श्री जयपुर नगरे पं। प्र०। ज्ञानसार मुनि योग्य समनुम्य समादिशंति श्रेयोत्र तत्रत्यं च देयं। तथा तुमने आदेश श्रीमहाजनटोली नो छै तत्र पुंहचेज्यो। घणी शोभा लेज्यो, शिष्यां ने हितशिक्षा में प्रवर्त्ताज्यो जिम श्री संघ रांजी रहै तिम प्रवर्तज्यो, प्रस्तावै पत्र देज्यो मिती फागुण सुदि १२ सं० १८४८ रा।

मुख पृष्ठ पर :—

१ म। श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः।

२ पं। प्र। ज्ञानसार मुनियोग्यम्।

इस पत्र से तत्कालीन श्रीपूज्यों के पत्रलेखन शैली आदि का सुन्दर परिचय मिलता है।

पूर्व देश विहार और तीर्थ-यात्रा

गच्छनायक श्रीपूज्यजी के आदेशानुसार आपने वहां से विहार कर दिया और सं० १८४९ का चातुर्मास महाजनटोलीमें किया सं० १८४९ मिति माघ शुक्ला १२ के दिन आपने श्री सम्मेतशिखर महातीर्थ की यात्राकर अपना जीवन सफल किया। सं० १८५०-५१ के चातुर्मास सम्भवतः मुर्शिदाबाद-अजीमगंजादि में ही किये थे।

इसी बीच सम्भव है कि बंगाल में जहां जहां जैन लोग निवास करते थे आपने विचरण किया होगा। पूरब देशके नाना अनुभवों, वहां की समाज व्यवस्था, रहन सहन आदि का वर्णन बड़ाही सजीव और अपूर्व आपने "पूरब देश वर्णन छंद" में किया है जिसे पाठकों की जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है। सं० १८५१ मिती माघ शुक्ला ५ को आपने द्वितीय बार श्री समेतशिखरजी[1] की यात्रा की। इसके बाद श्रीपूज्यजी के आदेशानुसार विचरते हुए दिल्ली आए सं० १८५२ का चातुर्मास यहीं किया। इन चार वर्षों में आपने मार्गस्थित संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगालके सभी तीर्थों की यात्रा भी अवश्य की होगी। उसका विशेष वर्णन प्राप्त होता तो जैनतीर्थों के इतिहास सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता। पत्रादिमें संक्षिप्त वर्णन अवश्य ही लिखा होगा। पर खेद है कि वे अब प्राप्त नहीं है।

पट्टहस्ती का रोगनिवारण :-

सं० १८५३ में आप जयपुर पधारे और सं० १८६२ पर्य्यन्त १० वर्षके चातुर्मास जयपुर में किये। कहा जाता है कि जब आप जयपुर पधारे थे, महाराजा का पट्टहस्ति बीमारी के कारण दिनों दिन सूख रहा था। रोग प्रतिकारके अनेक उपाय किये गये पर कोई फल न मिला। अन्ततोगत्त्वा श्रीज्ञानसारजी से निवेदन करने पर इन्होंने अपने असाधारण बुद्धि बल से गजराज के रोग का निदान किया और उसके उदर में उगी हुई बल्लि को निकाल कर उसे पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

---

१ बिहार प्रान्त में पार्श्वनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। यहां जैनों के २० तीर्थङ्कर मोक्ष पधारे थे अतः महत्त्वपूर्ण तीर्थ है।

जयपुर में १०' चातुर्मास :--

जयपुर में तो आपने पहले भी कई चातुर्मास किये थे और वहा के सङ्घ तथा राज्य की ओर से भी खरतर गच्छ के उपाश्रयस्थ यतियों को काफी सम्मान प्राप्त था। श्रीपूज्यजी का आदेश महाराजा प्रताप सिंह' का आग्रह और सङ्घ की भक्तिवश ही आपका जयपुर में चिरकाल रहना हुआ। श्रीमद् ज्ञानसारजी का प्रायः राजसभा में जाना होता था। राजकीय विद्वानों से विद्वद्गोष्टी कर अपनी विद्वत्ता से इन्होंने महाराजा को प्रभावित कर दिया था। खास खास प्रसङ्गों पर इनकी उपस्थिति और आशीर्वाद परमावश्यक समझे जाते थे। इन आशीर्वादात्मक कवित्तों में से सम्वत् १८५३ माघ वदि ८ को रचित समुद्रबद्ध प्रतापसिंह' गुणवर्णन पर स्वोपज्ञ वचनिका एवं कामोद्दीपन ग्रंथ में दो सवैये उपलब्ध हैं।

---

१ महाराजा प्रतापसिंह

सं० १७८४ में जयपुर बसाने वाले सवाई जयसिंह के ईस्वरीसिंह और उनके उत्तराधिकारी माधवसिंह हुए इनकी राजगद्दी सम्वत् १८०७ व मृत्यु सम्वत १८२४ में हुई। इनके बाद बड़े पुत्र पृथ्वीसिंह ५ वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुए जिनका सं० १८३३ में देहान्त हो जाने से प्रतापसिंह राजा हुए। इनका जन्म सम्वत् १८२१ पौ० कृ० १२ और राजगद्दी सं० १८३३ वै० व० ३ को हुई। ये बड़े वीर व योग्य शासक होने के साथ साथ सुकवि भी थे। आपको भर्तृहरि शतकत्रय का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर व प्रसिद्ध है तथा अन्य २० ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। इन सब को पुरोहित हरिनारायणजी ने नागरी प्रचारिणी सभा से व्रजनिधि ग्रन्थावली में प्रकाशित कराया है। इन ग्रन्थों की रचना सम्वत् १८४८ से सम्वत् १८५३ तक हुई थी।

महाराजा स्वयं कवि होने के साथ साथ अनेक विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। आप की आज्ञा से पारसी आइने अकबरी व दिवानी हाफिज का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इन्होंने प्रताप मार्तण्ड आदि ज्योतिष के ग्रन्थ बनवाए तथा धर्मशास्त्रों का संग्रह व अनुवाद कराया जिनमें धर्म जहाज प्रसिद्ध है।

महाराजा की आज्ञा से विश्वेश्वर महाशब्दे के प्रतापार्क नामक धर्मशास्त्र का उपयोगी ग्रन्थ बनाया। प्रतापसागर नामक वैद्यक ग्रन्थ भी अनुभवी विद्वानों से प्रस्तुत करवाया जिसका हिन्दी अनुवाद अमृतसागर भारत विख्यात वैद्यक ग्रन्थ है। संगीत के तो मानो आचार्य ही थे, आपके उत्साह से राधागोविन्द संगीतसार नामक विशद ग्रन्थ सात अध्यायों में बना जो हिन्दी साहित्य में अपने विषय का अजोड़ ग्रन्थ है। यह मुद्रित (अशुद्ध) रूप में जयपुर लाइब्रेरी में प्राप्त है। आपके समय में ही राधाकृष्ण ने राग रत्नाकर बहुत सुन्दर छोटासा संगीत का रीति ग्रन्थ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। आपके संगीत के उस्ताद सुधप्रकाश जी (चांद खां उपनाम दूलह खां) ने संगीत का एक उत्तम ग्रन्थ "स्वरसागर" बनाया। अमृतराम पल्लीवाल ने अमृतप्रकाश, बखतेश का टकशाली पद संग्रह उत्तम है। महाकवि राव शंभुराम, महाकवि गणपतिभारती, गुसांइ रसपुञ्ज, रसराशि के पद भी उक्त संग्रह में है। नवरस अलंकार सुधानिधि आदि भारतीजी के निर्मित हैं। हजारा काव्यों का संग्रह भी मुख्यतया इन्होंने किया था।

महाराजा ने कई हजारे संग्रह करवाये जिनमें प्रताप वीर हजारा और प्रताप सिंगार हजारा मिलते हैं। आपके आश्रित कितने ही चारणादि कवियों का साहित्य भी प्राप्त है। आपको इमारतें बनाने का भी काफी शौक था। सुप्रसिद्ध हवामहल आदि इसके प्रतीक और संसार प्रसिद्ध है। सम्वत् १८६० मिती श्रावण सुदि १२ को आपकी मृत्यु हुई। विशेष जानने के लिये व्रजनिधि ग्रन्थावली देखना चाहिये।

तो प्रमाणाभाव से बता सकना कठिन है। परंतु समुद्रबद्ध वचनिका और मागोद्दीपन ग्रंथ जो क्रमशः १८५३ माघ शुक्ला ८ और सम्वत् १८५६ चैत्र शुक्ला ३ को रचित हैं—से इनका जयपुर नरेश पर अच्छा प्रभाव विदित होता है।

गुरुभ्राताओं से बँटवारा:—

श्रीजिनलाभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद वर्षों तक आप वाचक राजधर्म जी के साथ रहे थे * यह ऊपर लिखा जा चुका है। फारकती पत्र से मालूम होता है कि वाचकजी का देहान्त हो जानेपर उनके शिष्य अमरदत्तजी ने आपसे उस परिग्रह के सम्बंध में खींचातान की थी आखिर सं० १८५६ के मिती जेठ शुक्ला ४ को लूणिया उत्तमचंदजी की मध्यस्थता से निबटारा हो गया। इसका एक फारकती पत्र हमारे संग्रह में है जिसमें कई यति व श्रावकों की साक्षियाँ भी लिखी हुई है। पाठकों के परिज्ञानार्थ इस फारकती की नकल यहां दी जाती है :—

श्री

॥सम्वत् १८३५ रो। श्रीजिनलाभसूरिजी का शिष्य सात न्यारा हूआ। जद। वा० राजधर्मगणिजी और ज्ञानसार। ए दोनूं मेला रह्या। परिग्रह पईसे सहित मेला रह्या। पछै पाली चौमास किया मेला। पाली सुं वा। राजधर्मगणिजी नागौर रह्या। पं० ज्ञानसार किसनगढ़ न्यारो रह्यो। पछै फेर नागोर वा० राजधर्मजी कनै पं० ज्ञानसार आयो। नागोरमें दोनां ही रैं परिग्रहरी गांठड्यों नग ४ मेली ही राखी। रास नैं जयपुर चौमास दोनूं मेला तीन वरष रह्या।

---

* और उनके परिग्रह पुस्तकादि भी साथ ही थे।

पछै ज्ञानसार चौथो चौमास किए जैपुरहीज रह्यौ। अर वाचकजी पोंहकरण जाय नै देवंगत हुआ। अनै ज्ञानसार जैपुर सूं पूरव च्यार चोमासा करने फेर जैपुर आयो जद अमरदत्तजी जैपुर में। जैपुर रे आदेशारी उपत दिसा। और गांठड्यां नागोर राखी छी तिए दिसा। रूपीया रोक दिसा। जगड़ो कीनौ। जद जैपुरमें। लूणिया साह श्री उत्तमचन्दजीये। दोनां ही नै समझाय नै झगड़ो निवेड़्यौ। सो आज पछै। पं। ज्ञानसार सूं अथवा चेलांसुं। पं। अमरदत्तजी। व अथवा अमरदत्तजी रा चेला। दावै पेदावै। और आजसुं पाछला लैणा देणा का कागद सरब रद छै। पं। अमरदत्तजी वा चेला कोई तरांको। पं। ज्ञानसार वा चेला सुं झगड़े तौ। राजमें। पंचायती। जतीमें…… एक को दावौ नहीं। उपर लिख्यौ सो……(सही ?)

इसके पश्चात् वाणिका लिपिमें लिखा है वही व अन्य स्वतन्त्र फारकती पत्रमें इस प्रकार लिखा है :—

॥ पं। प्र श्री नारणजी चेला हरसुख खूबचन्द सुं अमरदत्त चेला ज्ञानचन्द की वंदणा वाचज्यौ। अपरंच थे में सामल था ऋपणी चीज वस्त सर्व सामल थी पछै थांके मांकै झगड़ो हुवौ जदी राजी बाजी हुय नै फारकतो लिख दीनी आज पेलां कोई कागद पत्र निकलै सो रद छै। आज पछै कोई दावों न छै, फारकती रजाबदी सूं लिख दीनी छै मिती जेठ सुद ४ वार शुक्र सं० १८५६ का लिखतुं पं। अमरदत्त ज्ञानचन्द उपर लिख्यौ सो सही छै।

साख १ सवाईविजै जी नी घण्यां दोनुं रजु

साख १ पं० जीवणविजय जी नी घण्यां दोनुं रजु

साख १ पं० माणिकचन्द की दोन्यां घण्यां कै कह्यै लिखी

साख १ बणारस अमृतसुन्दर गणि री घण्यां दोना......
साख १ महता रतनचन्द लोढ़या धणी···हाजर लिखी
साख १ ज्ञानचन्द डागा धणी दोनु हाजर
साख १ हरचन्द चोरड़िया धणी द···
साख १ उत्तमचन्द (लूणीया)

यह पत्र तत्कालीन दस्तावेज लेखन पद्धति का सुन्दर नमूना है।

जयपुर में साहित्य प्रगति :—

व्याख्यान, स्वाध्याय, धर्म-चर्चा आदि के अतिरिक्त आपका समय आगमग्रन्थ एवं श्रीमद् आनन्दघनजी के ग्रन्थों का परिशीलन करने में ही व्यतीत होता था। इस समय आपके साथ शिष्य हरसुख (हितविजय सं० १८३५ फा० व० ११ जिनचन्द्रसूरि दीक्षित) और क्षमानन्दन[1] (खूबचन्द) थे जिनका नाम उपर्युक्त फारकती पत्रमें आता है। इस अरसे में संवतोल्लेखसह बने हुए ग्रन्थों में जो उपलब्ध हैं सभी तात्त्विक और शास्त्रीय विचारमय हैं। सं० १८५८ ज्येष्ठ सुदि ३ को सबोध अष्टोत्तरी, सं० १८५८ दीवालीके दिन ४७ बोल गर्भित चतुर्विंशतिजिन स्तवन, सम्वत् १८६१ पौषशुक्ला ७ सोमवार को दण्डकस्तवन, माघमें जीवविचार स्तवन, माघवदि १३ चन्द्रवार को नवतत्त्व स्तवन, की रचना हुई। सं० १८६२ की २ रचनायें उपलब्ध हुई हैं, जिनमें मार्गशीर्ष कृष्ण १४ को हेमदण्डक स्तवन तथा चैत्रशुक्ल ८ को रचित ६२ यन्त्ररचना स्तवन हैं।

---

१ श्रीपूज्यजी के दफ्तर की दीक्षानन्दी सूची के अनुसार इनकी दीक्षा सं० १८४५ मि० व० ७ गु० बीकानेर में हुई थी।

जयपुर निवासी गोलछा सुखलाल को बाल्यकाल से ही जैनधर्म के प्रति रुचि नहीं थी। पर आपश्री के समागम व सत्संगति से उन्होंने शुद्धवृत्ति से जैनदर्शन की श्रद्धा स्वीकार की और पठन पाठन स्वाध्यायमें विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। भाव छतीसी की रचना इनके लिये किसनगढ़ में की गयी थी।

एक बार आप जयपुरनगर से बाहर बगीचेमें आकर रहने लगे थे। उपाश्रय की अपेक्षा नगर से बाहर शान्ति और एकान्त विशेष मिलता है अतः स्वाध्याय ध्यान में विशेष प्रवृति होती है। एकदिन जयपुर निवासी सरावगी ऋषभदास काला आपके पास आये। धार्मिक वार्तालाप से आनन्दित होकर कहने लगे कि आप यदि सिद्धांत वाचन करें तो मैं भी दो घड़ी लाभ लूं! श्रीमद्ने कहा कि मैं श्रीउत्तराध्ययन सूत्र का व्याख्यान करता हूं। सरावगीजीने कहा—समयसारजी सिद्धान्त वांचिये! यों तो श्रीमद् के समयसारादि सभी सिद्धान्तोंका अवगाहन किया हुआ था। पर यहां सरावगीजीका आशय समयसार के अतिरिक्त ग्रन्थोंको सिद्धान्त न मानने का होना समझकर स्पष्टवादिता से श्रीमद् ने फरमाया कि समयसार[1] तो ज्ञानप्रधान व निश्चय नय की

---

[1] समयसार मूल ग्रन्थ दिगम्बराचार्य श्रीकुन्दकुन्द कृत है जिसपर अमृतचन्द्रसूरिकी टीका तथा कविवर बनारसीदासजी कृत हिन्दीपद्यानुवाद सं० १६९३ आगरा में रचित प्रकाशित है। इस पर राजमल्ल कृत भाषाटीका तथा खरतर गच्छीय विद्वान श्री रूपचन्द (उ० रामविजय) जी कृत वचनिका उपलब्ध है। परिवर्तित भाषा में भीमसी माणक द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। विशेष परिचय मुनि कान्तिसागरजी के लेख में द्रष्टव्य है। श्रीमद् ज्ञानसार जी का आशय कविवर बनारसीदास जी की कृति से है।

दोषवाला होनेसे जिनागम का चोर है। सरावगीजीने कहा—समयसार में ऐसी क्या बात है? कृपया बतलाइये। तब श्रीमद् ने आश्रव सम्वर द्वारमें "आसवा ते परिसवा, परिसवा ते आसवा" सिद्धान्तके एकान्त पक्ष ग्रहण की जो प्ररूपणा थी, विस्तृत व्याख्या करके बतलाई। ज्ञानी के नवीन बन्ध नहीं होता—आत्मा सर्वदा शुद्ध है इत्यादि वाक्योंपर जहां एकान्तवाद और क्रिया की अनावश्यकता प्ररूपित है उसका निरसन करके जैनदृष्टि और स्याद्वाद से तप संयमादि युक्त शुद्धात्मा की प्ररूपिका श्री आत्म प्रबोध छत्तीसी नामक ग्रन्थ की रचना आपने इसी प्रसङ्ग से सरावगीजी के निवेदन से की। श्री ऋषभदासजी सरावगी इस व्याख्या से आत्मविभोर हो उठे। यह छत्तीसी इसी ग्रन्थ के पृ० १५५ से १६४ तक प्रकाशित है।

गुरूमन्दिर प्रतिष्ठा :—

जयपुर नगर के बाहर मोहनबाड़ी नाम से प्रसिद्ध दादा साहब का स्थान है। श्रीमद् ने वहां दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी तथा श्रीजिनकुशलसूरिजी के चरण, स्वगुरु श्रीजिनलाभसूरिजी

ये हिन्दी के उच्चकोटि के कवि थे। ये मूलतः खरतर गच्छ की जिनप्रभसूरि शाखा के श्रावक और श्रीमाल जाति के थे पर आगरे में दि० विद्वानों के सत्संगत् व समयसार ग्रन्थादि अध्ययन के प्रभाव से दिगम्बर हो गये थे। इनकी कृतियों में अर्द्धकथानक (आत्मकथा), बनारसीनाममाला, बनारसीविलास (संग्रह ग्रन्थ) प्रकाशित है। वर्त्तमानकाल में सोनगढ़ के श्रीकानजी स्वामी इस ग्रन्थ के प्रमुख प्रचारक हैं।

उनके पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा गुरु श्रीरत्नराजगणि के चरणपादुके निर्माण करवाके प्रतिष्ठित करवाये थे। आपश्री के शिष्यवर्गने भी आपकी विद्यमानता में ही आपके चरण बनवाकर प्रतिष्ठित किये थे। इन चरणपादुकाओंके सब लेखों को अप्रकाशित होनेके कारण यहां दिये जाते हैं।

(१) ॥ संवत् १८९२ मिते माघ सुदि पंचम्यां श्री जयनगर म्यर्णे श्रीबृहत् खरतर गच्छाधीश्वर युगप्रधान भ० श्री जिनदत्तसूरीणां। युगप्रधान [illegible]। श्रीजिनकुशलसूरीणां च पादन्यासौ श्रीजिनहर्षसूरि विजयि राज्ये। पं० ॥ ज्ञानसार मुनिना कारिता प्रतिष्ठापितौ च तयाश्च पूज्यानामुपदेशात्।

(२) . सं० १८९२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जयनगराम्यर्णे। श्री बृहत्खरतर गच्छाधीश यु० भ० श्रीजिनलाभसूरीणां श्री जिनचन्द्रसूरीणां च पादन्यासौ श्री जिनहर्षसूरि विजयि राज्ये पं। ज्ञानसार मुनिना कारितौ प्रतिष्ठापितौ च।

(३) ॥ संवत् १८९२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जयनगराम्यर्णे श्री बृहत् खरतर गच्छेश भ। श्री जिनलाभसूरि शिष्य प्राज्ञ प्रवर्द्ध श्री रत्नराजगणीनां पादन्यासः श्री जिनहर्षसूरि विजयिराज्ये। पं० ज्ञानसार मुनिना कारिते प्रतिष्ठापितेश्च।

(४) ॥ सं १८९२ मिते माघ सुदि पंचम्या। श्री जिनहर्षसूरि विजयिराज्ये विद्वद्वर्ये श्री रत्नराज गणि शिष्य प्राज्ञ ज्ञानसार मुने विद्यमानस्य पादन्यासः। शिष्य वर्गेण कारिता प्रतिष्ठापितश्च।

आपकी विद्यमान अवस्था में चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा होना यह उनके उस समय के गुणोत्कर्ष और पूज्यमान होने की महत्त्वपूर्ण सूचना देता है।

क्षमानन्दन रचित सांगानेर के दादाजी के स्तवन से विदित होता है कि एकवार आप संघ के साथ यहां दादागुरु के वन्दनार्थ पधारे। उस समय लूणियागोत्रीय श्रावक ने गोठ की थी जिसका उल्लेख निम्न गाथा में हैं:—

श्री संघ मिल तिहां आवैं, जिहां लूणिया गोठ रचावैं रे म्हां।
श्री ज्ञानसार गणिराजा, ज्यां रा बाजै सदाई बाजारे म्हां॥

एक बार आपने जयपुर से उ० श्री क्षमाकल्याणजी [1] गणि को पत्र दिया जिसके हांसिये पर चित्र किये हुए हैं यह पत्र बड़े उपाश्रय के महिमाभक्ति भण्डार में है उस पत्र में रूपनगर के राजा के स्वर्गवास, होने व वै० सु० १ के दिन बहादुरसिंह के पुत्र का उनके गद्दी पर बैठने का समाचार है तथा मुंहताई खुस्यालचंद के होने का लिखा है। इससे रूपनगर से भी श्रीमद् का सम्बन्ध मालूम देता है।

कृष्णगढ़ के ६ चातुर्मास :—

श्रीमद् ज्ञानसारजी जयपुर से विहार कर किसनगढ़ पधारे। सं० १८६३ से सं० १८६८ तक के चातुर्मास किसनगढ़ में किये। यहां श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर की अवस्था जीर्णशीर्ण हो गई थी। आप श्री ने व्याख्यान में जीर्णोद्धार का महान् फल बतलाते हुए

---

१ अपने समय के ये बड़े गीतार्थ विद्वान थे इनके रचित अनेकों ग्रंथ उपलब्ध हैं।

श्रावकों को चिन्तामणि पार्श्वनाथजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार का उपदेश दिया। कहा जाता है कि रात में पार्श्वयक्ष ने प्रकट हो कर २१) रुपये रख दिये और उसी पूंजी से काम आरंभ करने का निर्देश किया। श्रावकों ने श्रीमद् के कथनानुसार कार्य आरंभ कर दिया और थोड़े दिनों में जिनालय खूब सगीन और चित्रादि से सुशोभित तैयार हो गया। शुभ मुहूर्त्त में ध्वजदण्डारोपण महोत्सव किया गया। इस विषय के वर्णन के निम्नोक्त कवित्त प्राप्त हुए है :—

सुन्दर सरूप श्याम अंगी नग जग मगत
समोशरण अधिक शोभा सरसाई है।
मन्डप सभा मे यों फरस मकरिंद वनी
चित्रकारी नानाविध रङ्ग बरसाई है॥
ठाढे द्वार हाथी मोर छत्र किये बंगला पे
कंचन के कलशा अद्भुत छवि छाई है।
कृष्णगढ़ मांझ देखो साधु नारायनजी,
चिन्तामणि रावजू की भक्ति दरसाई है॥१॥
प्रगट प्रवासन किधो इंद सुर आसनको
मानक नग हीर किधों हाटक मंढायो है।
चौक चित्रकारी चिहुं फेरकर सवार जारी,
मोल रजतारी मम पाहन कढायो है॥
चिन्तामन हाथ चढो नामी नराय(ण)कै किधौं,
कृष्णगढ़ कीरत को नीरध बढायो है।
मन्दिर जैनराजहू कौ जीरण होतो तहां,
मण्डप सुधाराय धजा इंदप चढायो है॥२॥

चिहुंदिशि जाको जस प्रसिद्ध, नाराइन मुनिराज।
भवजीव तारण प्रनै, भवद्ध रुप जिहाज॥

भावछत्तीसी की रचना :—

पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले वर्षों में जयपुर निवासी श्री रूपचन्द जी गोलछा श्रीमद् के संसर्ग से पक्के जैन धर्मानुयायी हो गये थे। उन्हें स्वाध्याय का बड़ा शौक था, जयपुर में दिगम्बर बन्धु पर्याप्त थे और उनके सहयोग से समयसार का वाचन प्रारम्भ किया था, जब श्रीमद् को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने द्रव्य भाव और ज्ञान क्रिया के रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली "भाव षट्-त्रिंशिका" नामक कृति निर्माणकर भेजी जिसके मूल और विवेचन के पाठ से उन्हें समयसार का वास्तविक स्वरूप मालूम हो गया।

आनन्दघन चौवीसी पर विवेचन :—

इस समय श्रीमद् ज्ञानसारजी की अवस्था ६६ वर्ष की हो गई थी इन्होंने सम्वत् १८२६ में श्री आनंदघनजी [1] महाराज के स्तवनों

[1] १ श्वेताम्बर जैन समाजमें ये उच्च कोटिके योगी माने जाते हैं। हालहीमें प्राप्त खरतरगच्छीय यति जयरंग जैनसीजी के पत्रसे आपका खरतरगच्छीय होना ज्ञात होता है। मेड़तामें आप बहुत काल तक रहे थे। प्रणामी सम्प्रदायके एक साधु के कथनानुसार सं० १७३१ में वहीं आपका स्वर्गवास हुआ था। सुप्रसिद्ध न्यायाचार्य यशोविजय उपाध्यायका आपसे मिलन होना कहा जाता है। आनन्दघन जी के सम्बन्ध में उनकी अष्टपदी प्रसिद्ध है। आपका प्रसिद्ध नाम लाभानन्द था, अनुभव प्रधान नाम आनन्दघन अपनी रचनाओं में आपने स्वयं दिया है। आपके रचित चौवीसी में से २२ स्तवन उपलब्ध हैं, जिसकी पूर्ति में श्रीमद् देवचन्द्र, ज्ञानविमलसूरि व श्री ज्ञानसार जी आदि के रचित स्तवन प्रकाशित हैं। आपकी चौवीसी

(चौवीसी के २२ स्तवनों) का अध्ययन और परिशीलन प्रारम्भ किया था जिन्हें ३७ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो जाने से लोकोपकार के हेतु अपने परिपक्व अनुभव के उपयोग द्वारा विशद विवेचनमय बालावबोध लिखकर मुमुक्षु जनता का परम हितसाधन किया। श्री

पर सर्व प्रथम यशोविजय उपाध्याय के विवेचन करने का उल्लेख मिलता है पर वह उपलब्ध नहीं है। इसके पश्चात् ज्ञानविमलसूरि जी ने बालावबोध बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। श्रीमद् ज्ञानसार जी ने इस बाला वबोध की अनेक त्रुटियों पर मार्मिक प्रकाश डाला है। हालही में दो अन्य विवेचन भी प्रकाशित हो चुके हैं जो मनसुखलाल जी और पं० प्रभूदास बेचरदास द्वारा लिखे गये हैं। स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधरदास कापड़िया भी विस्तृत विवेचन लिख रहे थे। जयपुर निवासी श्री उमरावचन्द जी जरगड़ ने हिन्दी भाषा में आनन्दघन चौवीसीका भावार्थ किया है, जिसे शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक है।

श्रीमद् आनन्दघन जी के पद बहुत्तरी के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी संख्या १११ के लगभग है वास्तव में कई पद अन्य रचित भी उसमें सम्मिलित हो गये हैं। हमारे संग्रह में आपके ६६ पदों की एक प्राचीन प्रति है। अन्य हस्तलिखित प्रतियों के आधार से पाठ निर्णय करके हम आपके पदों का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते हैं, आपके पदों पर श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी ने विवेचन लिखा है जो अध्यात्म ज्ञान-प्रसारक मंडल से प्रकाशित हो चुका है स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधर कापड़िया ने भी सुन्दर विवेचन लिखा जिसमे से लगभग ९ पदोंका विवेचन "आनन्दघन पद रत्नावली" में बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था अन्य पदों का विवेचन जैन धर्म प्रकाश में कई वर्षों तक निकलता रहा जिसे स्वर्गीय कापड़िया जी शीघ्रही प्रकाशित करने वाले थे पर इसी बीच आपका स्वर्गवास हो गया। आनन्दघन और घनानन्द पुस्तक में भी उपर्युक्त चौवीसी और पद प्रकाशित हुए हैं।

आनंदघनजी महाराज पर आपकी अत्यन्त श्रद्धा थी, और उनकी वाणी का आपके जीवनमें पर्य्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस बालावबोध में २२ स्तवन श्रीमद् आनन्दघन जी के तथा २ स्तवन इनके स्वयं निर्माण किए हुए हैं। अन्तमें उनकी महानता व अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए श्रीमद् ने लिखा है कि :—

"आशय आनन्दघन तणो अति गम्भीर उदार
बालक बांह पसार के कहै उदधि विस्तार"

कृष्णगढ़ के महाराजा [1] भी आपका बड़ा सम्मान किया करते थे तथा जैन व जैनेतर प्रजा पर आपका अच्छा प्रभाव था। यहां के ६ चातुर्मास ज्ञान ध्यान में लीन और शान्त सुधारस में सराबोर बीते। तदनन्तर ग्रामानुग्राम विचरते हुए तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय पधारे।

सिद्धाचल यात्रा :—

सं० १८६६ मिती फाल्गुन कृष्णा १४ को युगादि देव श्री ऋषभ प्रभु के दर्शन कर आत्मविभोर हो उठे। श्री सिद्धाचल के आदि जिन स्तवन में आपश्री ने अपने मनोगत भावों को निःशल्यता पूर्वक आत्मचर्या के रूप में प्रभु चरणों में निवेदित किये हैं। जिन से विदित होता है कि आपने इस वृद्धावस्था में उपकरणों को स्कंधो पर वहन करते, नाना उपसर्ग सहते, कण्टकाकीर्ण मार्ग को पैदल विचरते हुए तै किया था।

---

१ किसनगढ़ के इतिहास के अनुसार इस समय वहां के राजा कल्याणसिंह थे।

बीकानेर आगमन :—

बीकानेर राज्य श्रीमद् की जन्मभूमि होने हुए भी बाल्यकाल से अबतक लगभग ७० वर्ष की आयु हो जानेपर भी बीकानेर पधारने का अवसर प्रायः नहीं मिला था। तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय की यात्रा करने के पश्चात् आपने अपना अन्तिम जीवन बीकानेरमें व्यतीत करने का विचार किया। इसके कई कारण थे, एक तो बीकानेर सभी तरहसे उत्तम क्षेत्र था, यहां क्या राजधानी और क्या छोटे मोटे ग्राम, सर्वत्र जैनो की बहुत बड़ी बस्ती थी। जिनप्रसाद और उपाश्रयों का प्राचुर्य था जहां सैकड़ों गीतार्थ यति लोगों का आवागमन रहता था। उपाध्यायजी श्री क्षमाकल्याणजी जैसे क्रियापात्र और इनके बचपन के साथी भी विराजमान थे अतः आप अपने शिष्योंके साथ बीकानेर पधारे और यावजीव बीकानेर मे ही विराजे। इस समय आपकी वृद्धावस्था होते हुए भी त्याग, वैराग्य तथा साध्वाचार उच्च कोटिका था। आपश्रीने नगरके बाहर श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालयके पृष्ठभाग में स्मशानोंके निकटवर्त्ती ढढ्ढोंकी साल को ही अपनी तपोभूमि चुनी और वहीं रहने लगे। श्रीमद् का जीवन बड़ाही सात्त्विक था, एक पात्र तथा अल्प वस्त्र धारण करते थे दुपहरके समय एकवार आहार करते थे। धारविगय[१] का त्याग था जो कुछ भी रूखा सूखा मिल जाता, ले आते। नगरके बाहर निर्जन स्मशानभूमिके निकट अपनी ध्यान समाधि जमाकर आत्मानुभवके परम सुखका अनुभव करते हुए तप संयमसे आत्मा को भावित करते थे।

---

१ आहार में ऊपर से घृतादि विगय (विकृति ६ दूध, दही, घी, तेल, गुड़, पक्वान्न) न लेना धार विगय त्याग कहलाता है।

इस प्रकारके कई प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालूम होता है कि श्री पार्श्वयक्ष (चिन्तामणि यक्ष) आपको प्रत्यक्ष थे और समय समय पर रात्रिमें प्रकट होकर आपने नाना विधि ज्ञान गोष्ठी एवं भूत भविष्य सम्बन्धी वार्तालाप किया करते थे।

महाराजा सूरतसिंह पर प्रभाव :—

बीकानेर नरेश महाराजा सूरतसिंहजी [१] ने आपकी यशोगाथा सुनी और तत्काल आकर मिले फिर तो घनिष्टता इतनी बढ़ी कि महाराजा किसी भी कार्य करनेके पूर्व आपकी आज्ञा व आशीर्वादके

१ महाराजा सूरतसिंह बीकानेर नरेश महाराजा गजसिंह के पुत्र थे। संवत् १८२२ पौष शुक्ला ६ का आपका जन्म हुआ और संवत् १८४४ के विजयादशमी को राजगद्दी प्राप्त हुई थी। आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने बीकानेर राज्य के इतिहास में इस प्रकार लिखा है :—

"महाराजा सूरतसिंह का राज्यकाल अंग्रेजों के अभ्युत्थान का समय कहा जा सकता है। जैसे पहले मुगलों के प्रबल प्रवाह के सामने हिन्दू राजाओं को झुकना पड़ता था वैसेही अब अंग्रेजों की प्रबल शक्ति के आगे हिन्दू-मुसलमान सब अवनत होते जा रहे थे। उनका अमल हांसी हिसार तक हो चुका था और उनके प्रभुत्व की धाक अधिकांश भारत में जम चुकी थी इधर बीकानेर राज्य की भी आंतरिक दशा बिगड़ रही थी। आये दिन राज्य के सरदार विद्रोही हो जाते थे, जिनका दमन करने में ही महाराजा को सारी शक्ति लगा देनी पड़ती थी। टामस की दो बार की चढ़ाइयां तथा जोधपुर के साथ की लड़ाइयों से भी बीकानेर का कम नुकसान न हुआ था। ऐसी परिस्थिति में उसने अंग्रेजों से मेल कर लेनाही उचित समझा और इस महत्त्वपूर्ण कार्य को उत्तमता से पूरा करने के लिये ओझा काशीनाथ दिल्ली भेजा गया, जिसने मिस्टर चार्ल्स

पिपासु रहा करते थे। साह सुलतानमल के द्वारा मौखिक तथा पत्र व्यवहारके द्वारा राजनैतिक, धार्मिक तथा अर्थनैतिक बातों का समाधान होता। अनेक बार महाराजा स्वयं आते और श्रीमद् की सेवामें घण्टों व्यतीत करते। महाराजाके लिखे हुए २२ खास रुक्के हमारे अवलोकनमें आये हैं जिनमेंसे १८ हमारे संग्रहमें तथा ४ यतिमुक्तचन्द

मेटकाफ से मिलकर सन्धि की शर्तें तय कीं। यह घटना बीकानेर राज्य के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखती है क्योंकि अंग्रेजों के साथ सन्धि स्थापित हो जाने पर उनकी सहायता से विद्रोही सरदारों का पूरी तरह से दमन होकर राज्य में सुख और शान्ति की स्थापना हुई। जो सम्बन्ध महाराजा सूरतसिंह ने अंग्रेजों से स्थापित किया उसका अब तक निर्वाह होता है और अंग्रेज सरकार तथा बीकानेर के बीच अब भी सुदृढ़ मैत्री विद्यमान है।

"महाराजा सूरतसिंह बड़ा वीर नीतिवेत्ता और न्यायप्रिय था। वह केवल तलवार लेकर लड़ना ही नहीं जानता था वरन् मेल के महत्त्व को भी खूब समझता था। जहां उसे मेल करने में लाभ दिखाई देता वहां वह बिना अधिक सोच विचार किये ही ऐसा कर लेता। वह अन्याय हुआ नहीं देख सकता था। जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के पुत्र धौकलसिंह का हक मानसिंह द्वारा छिनता हुआ देखकर वह यह अन्याय सहन न कर सका और जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ उसका सहायक बन गया। वह शत्रु पर दगा से वार करने का विरोधी था प्राणरक्षा का वचन पाकर सन्धि की शर्तें तय करने के लिये आये हुए जोधपुर के सरदारों को उसने अपने आदमियों की सलाह के अनुसार मारा नहीं, वरन सन्धि की शर्तें स्वीकार न होने पर भी उन्हें सिरोपाव आदि देकर सम्मान पूर्वक वापस भेजा।

"जहां महाराजा में इतने गुण थे, वहां एक दुर्गुण भी था। वह कान का कच्चा था जिस सुराणा अमरचन्द ने अपनी वीरता से अनेक बार विद्रोही

जी के शिष्य श्री जयचरणजी के पास हैं। इन तमाम पत्रों को देखने से श्रीमद् के प्रति महाराजा का विनय, पूज्य भाव, अटल श्रद्धा, अविचल भक्ति, तत्सपर्शी हार्दिक भाव तथा अनेक ऐतिहासिक रहस्यों की स्पष्ट जानकारी होती है।

उन दिनों बीकानेर राज्यकी व्यवस्था अत्यन्त कमजोर थी, राजकीय खजाने में द्रव्यका इतना अभाव था कि सुरक्षाके लिये सैन्यव्यय भी दुष्कर था। राजा स्वयं ऋणसे दबे हुए थे। महाराजा सूरतसिंह के पत्रोंका अक्षर अक्षर यही भाव ध्वनित करता है। हमें प्राप्त पत्रोंमें सर्वप्रथम पत्र सं० १८७० मिती भाद्रवा वदि १४ का है अतः इससे पूर्व पत्र व्यवहार एवं आवागमन घनिष्ठता पूर्वक चालू हो गया मालूम देता है। इस वर्षके ८ पत्र मिले हैं जिनका अंतर देखने मालूम होता है कि सप्ताहमें २ वार तो पत्र व्यवहार अवश्यही होता था। महाराजा युद्धमें या दौरेमें जहां कहीं होते बाबाजी महाराज श्री ज्ञानसारजी

सरदारों का दमन किया और जिसे स्वय उस (महाराजा) ने 'राव' का खिताब देकर सम्मानित किया था उसे कई सरदारों के बहकावे में आकर और उनकी झूठी शिकायतों पर विश्वास कर महाराजा ने बाद में मरवा डाला पीछे से इस *अपकृत्य का महाराजा को पछतावा भी रहा।* महाराजा ने अपने राज्यकाल में सूरतगढ़ बनवाया था।"

बीकानेर राज्यके उत्कर्षमें हमारे चरित नायक का बड़ा हाथ था, यतिराज जी की आज्ञानुसार आपकी सलाह से ही अंग्रेजों से सन्धि, तथा उपरिलिखित पड़ौसी राज्यों के प्रति न्याय व नीति की रुख आदि समस्त कार्य कलापों द्वारा बीकानेर राज्य की अवस्था काफी सुधर गयी और भविष्य में यह प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण उन्नत रियासतों की गणना में आने लगा।

श्रीमद् ज्ञानसारजी के प्रति बीकानेर नरेश सूरतसिंह
का खास रुक्का

(नारायणजी) की सम्मति आज्ञा या आशीर्वाद के बिना किसी काममें हाथ नहीं डालते थे। पत्र व्यवहार पर सरसरी नजर डालने से मालूम होता है कि सूरतसिंहजीके अर्थाभाव, बागी सरदारों व यवनोंके कारण अराजकता, आदि अनेक समस्याओं का समाधान चरित्रनायक की सम्मति से हुआ था। पत्रोंकी कई अधूरी बातें कर्जदारी, खर्चेकी कमी माहूकारोंपर जबरन वसूली, रैयत पर कष्ट, शहर की गंदगी, पकड़ा-पकड़ी, विदेशी कर्मचारियों की विदाई, आदि अनेक विषयके भ्रष्टाचार व अराजकता को दूर करानेपर प्रकाश डालती हैं। श्रीमद्के द्वारा यक्षराज (श्री चिन्तामणि यक्ष) से नाना प्रकार के प्रश्न कराये जाते थे जिनमें अपने पूर्व-भव, धनके खजाने, इंग्रेजोंके राज्य व सन्धि से अपने सुख, सिद्धमंत्र, जाप आदि मुख्य थे। अपनी कूच तथा जोधपुर के धोंकलसिंहजी सम्बन्धी, एवं टालपुर सिंघ वालोंके साथ महाराजा मानसिंहके कजिये की जय-पराजय आदि नाना प्रश्न पूछे गये हैं। इसी प्रकार सं० १८७१ में दिये हुऐ ५ तथा सं० १८७२ के ५ खास रुक्के हैं। इतने दीर्घ समयमें सैंकड़ों ही पत्रों का आदान प्रदान हुआ होगा पर वे अब प्राप्य नहीं हैं। श्रीमद् के दिये हुऐ एक पत्र की प्रतिलिपि भी उनके स्वयं लिखी हुई प्राप्त हुई है। साह मुलतानमल के बाद नाहटा मदजी इनकी सेवामें रहे थे जिनका कार्य केवल महाराजा के सन्देश श्रीमद् तक पहुँचाने का था। महाराजा उन्हें १५) मासिक वेतन देते थे ये बड़े सन्तोषवृत्ति के थे। मदजी को १५) से १७) मासिक लेना भी स्वीकार नहीं था ऐसा एक पत्रमें महाराजा ने सूचित किया है। इनके अतिरिक्त साह-धरमा, अभाणी जेठा व अचारज छोगाके द्वारा भी संवाद-अर्जी निवेदन की जाती थी। अंतिम पत्रमें सदासुख

जी को समाचार फरमाने का लिखा है ये श्रीमद्के शिष्य श्री महाराज जी मालूम देते हैं। इनका भी राजदरबार में प्रभाव बहुत बड़ा चढ़ा था।

गौड़ी पार्श्व जिनालयमें नवपद मंडल का प्रारम्भ :—

बीकानेरके गोगा दरवाजाके बाहर जहां आप रहा करते थे, श्री गौडी पार्श्वनाथजी का छोटासा मंदिर था। आपश्रीके विराजनेसे इस मन्दिर की बहुत उन्नति हुई। आपके स्तवनोंसे मालूम होता है कि आपकी श्रीगौडी पार्श्वनाथ प्रभु पर अत्यन्त भक्ति थी। श्रीचिन्तामणि यक्ष आपके प्रत्यक्ष थे अतः इस मन्दिरमें श्री क्षमाकल्याणोपाध्याय जी द्वारा सं० १८७१ में यक्षराजजी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। इसी जिनालय में महाराजा की ओर से नवपद मण्डल रचना प्रारम्भ हुई जिसके लिये तबसे लगाकर आजतक राजकीय खजाने से अर्थव्यय किया जाता है। इसी मन्दिरके विशाल अहाते में कई और मन्दिर-देहरियों का निर्माण हुआ। श्री सम्मेतशिखर तीर्थ पट वाले मन्दिर का निर्माण सं० १८८६ में श्रीअमीचन्दजी सेठियाने करवाया, जिसकी दीवाल पर श्रीमद्का चित्र बना हुआ है, सामने अमीचन्दजी सेठिया हाथ जोडे खडे हैं। सं० १८७१ भादवा वदि १३ के दिन आपने नवपद पूजा की रचना की जो इसी पुस्तकमें प्रकाशित है।

---

१ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, ये नवपद हैं। इनके वृत्ताकार यंत्र को सिद्धचक्र या नवपदयन्त्र कहते हैं। चैत्र और आश्विन के अन्तिम ९ दिनों में आंबिल तप के साथ नवपद ओली का आराधन किया जाता है। ९ बार (८१ आंबिल) करने पर इस तप की पूर्णाहुति होती है उसके उपलक्षमें नवपदमण्डल की रचना की जाती है।

बीकानेर में साहित्य निर्माण :-

आपश्री उस जमानेमें जैनागमोंके प्रकाण्ड विद्वान थे स्थानीय श्रावक व साधु समुदाय तो आपके ज्ञानसे लाभ उठाते ही थे पर बाहर से भी प्रश्नोत्तर आदि के रूपमें पत्र आते रहते थे। विहार (जिसे श्रीमद् ने वैशाली लिखा है) निवासी किसी जिज्ञासु श्रावकने आपको एक विस्तृत प्रश्न पत्र भेजा जिसके उत्तरमें आपने जो पत्र दिया वह एक ग्रन्थ ही हो गया है जो सं० १८७४ चैत शुक्ला ७ को पूर्ण हुआ था। यहा रहते साहित्य निर्माण की धारा सतत् प्रवाहित थी। स० १८७५ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चौबीसी स्तवन, स० १८७६ फाल्गुन शुक्ला ९ को मालापिंगल (छंदशास्त्र), स० १८७७ चैत्र कृष्ण २ को चंद चौपाई समालोचना, सं० १८७८ कार्तिक शुक्ला १ को विहरमान बीशी स० १८८० आषाढ़ शुक्ला १३ को अध्यात्मगीता बालावबोध, स० १८८० आश्विन में प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, और स० १८८१ मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को गूढावावनी की रचना की। इनमें से मालापिङ्गल व चन्द-चौपाई समालोचना के अतिरिक्त सभी रचनाएं इस ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

बीकानेर के बड़े ज्ञानभंडार के एक पत्र से मालूम होता है कि स० १८७४ आश्विन शुक्ल ५ को श्री सिद्धचक्रजी की महती महिमा हुई और इसी वर्ष मिती मिगसर सुदि १२ को श्रीमद् ने गोठ की।

दशहरे की बलिप्रथा बन्द :-

बीकानेर में दशहरे के दिन राज्य की ओर से देवी के बलि स्वरूप भैंसा मारने की प्रथा प्राचीन काल से चली आती थी। कहा जाता है

कि एक बार दरबार का भैंसा छूट कर दौड़ता हुआ श्रीमद् के शरणमें आगया। पीछे पीछे राज के सिपाही आये पर बाबाजी महाराज के पास भैंसा मांगने की हिम्मत न हुई। अन्त में श्रीमद् के उपदेश से महाराजाधिराज ने सदा के लिए भैंसे का बलिदान बन्द करवा दिया।

यतियों का राजसंकट निवारण :-

कहा जाता है कि मुर्शिदाबाद के जगतसेठजी + ने पार्श्वचन्द्र गच्छीय श्रीपूज्यजी को एक पन्ने का वहरखा भेंट किया था वह इस प्रकार का बहुमूल्य था कि राजा-रजवाड़ों में भी उसकी जोड़का खोजे नहीं मिलता।' महाराजाने उसे श्रीपूज्यजी से देखनेके लिए मंगवाया। बहुमूल्य पद्मराग मणियों ने महाराजा को लोभ में डाल दिया और बहरखा लौटाने से अस्वीकार कर गये। यतियों की विशेष मांग होने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जब श्रीमद् को यह घटना मालूम हुई तो वे तत्काल दरबार मे पधारे। महाराजा ने श्रीमद् का पधारना सुना तो वे स्वागत के लिये सामने आए उस समय आप श्री ने महाराजा से फरमाया कि :—

+ मुर्शिदाबाद के जगतसेठजी का वंश अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रहा है। आपके पास अगणित धनराशि थी, नबाबी अत्याचारों का अन्त करने के लिये भारत में अंग्रेजी राज्य का सूत्रपात इसी वंश से हुआ। इनके पूर्व देशके जैन तीर्थों का उद्धार तथा अन्य अनेक प्रकार के कार्यकलाप प्रसिद्ध हैं। विशेष जानने के लिये पारसनाथसिंह की "जगतसेठ" नामक पुस्तक देखना चाहिये।

अब फाटो आकाश, कहि कारी कैसी करां
प्रकट भिखारी पास, नरपति जाचै नारणा ‡ ?

महाराजा ने अपनी भूल के लिए माफी मांगते हुए वहरखा लौटा दिया एवं यतियों को दो दो रुपये व मिठाई भेंट कर उपाश्रय पहुंचाया।

नगरसेठ के प्रश्नोंका उत्तर :--

कहींके (संभवत जयपुरके) नगरसेठ महोदय जो आपके परमभक्त थे, अपने पत्रोंमें प्रश्न पूछा करते थे इनके उत्तरमें दिया हुआ (२) विविध प्रश्नोत्तर ग्रन्थ इसी ग्रन्थके पृ० ४०८ से ४२२ तक छपा है। इसका समय स० १८८० के पश्चात् का अनुमान किया जाता है क्योंकि सं० १८८० में रचित आध्यात्मगीता बालावबोधका इसमें उल्लेख पाया जाता है।

गौड़ी जिनालय का उद्धार और आशातना-निवारण :–

पूर्व कहा जा चुका है कि श्रीमद् जहां स्मशानोंके निकट निवास करते थे, पास ही में श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी का मंदिर था। श्रीसंघ ने स० १८८६ में १२०००) व्यय करके इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। प्रतिदिन श्रावक लोग नगरके बाहर होने पर भी दर्शन पूजनके लिय यहा आते थे। स्वयं महाराजा सूरतसिंहजी व रत्नसिंहजी श्रीमद् के पास जब कभी आया करते तो इस मन्दिरमें अवश्य पधारते। कहा जाता है कि अन्त पुरसे महारानियां भी समय समय पर आती थीं। यहां प्रतिदिन पूजा करने के लिए आने वालोंमें सुराणोंके घरकी एक

---

‡ यह सबोध अष्टोत्तरी के ५६ वें दोहे में है। इसके सम्बन्ध में अन्य प्रकार की किम्वदन्ती भी सुनने में आती है।

महिमा भी थी जिसे श्रीमद्‌ने यह भी दिया कि तरुण स्त्रियोंको मूलनायकजी की प्रतिदिन पूजा नहीं करनी चाहिये + पर उसने भक्तिके आवेशमें कोई ध्यान नहीं दिया। एकबार वह पूजा करती हुई रजस्वला हो गई। इस महान अपवित्र आशातनाके होने से श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी की प्रतिमा पर व्रण ही व्रण हो गये। श्राविका दौड़ी हुई श्रीमद्‌के चरणोंमें आई और भयभीत होकर कहने लगी कि महाराज! मैं तो मर गई! इस प्रकार की महान आशातना मेरे द्वारा हो गयी, क्षमा कीजिये। आपके उपदेश पर मैंने ध्यान नहीं दिया, अब उपाय आपही के हाथ है। श्रीमद्‌ने उसी रात को यक्षराजजी से इस विषय में उपाय पूछा। यक्षराजजीने कहा—ऐसी आशातना होनेपर अधिष्ठाता देव तत्काल ही वहांसे चले जाते हैं पर मैं तो आपके लिहाजसे सेवामें उपस्थित हूं। श्रीमद्‌ने तीर्थजल और औषधि यक्षराजजीके द्वारा मंगाकर 'अष्टोत्तरी स्नात्र' करवाया जिससे सब आशातना दूर हो गयी। आज भी ध्यानपूर्वक देखने से श्रीगौडीपार्श्वनाथजी के बिम्ब पर थोड़े थोड़े व्रण के चिह्न दृग्गोचर होते हैं।

+ पूर्वाचार्यों ने अशुचि आशातनादि कारणों से ही नारियों के लिये प्रतिदिन मूलनायक भगवान की अंगपूजा का निषेध किया है।

१ तीर्थंकर प्रतिमा का १०८ घड़ों से विशेष अनुष्ठान पूर्वक अभिषेक कराने को 'अष्टोत्तरी स्नात्र' कहते हैं। तप, उद्यापन, विघ्न निवारणादि विशेष प्रसंगों पर यह विधान किया जाता है। सं०१६५० में युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से जयसोम उपाध्याय ने लाहौर में 'अष्टोत्तरी स्नात्र विधि' बनाई जिसकी प्रति बीकानेर के ज्ञानभंडार में है।

गुदड़ी में शीत ज्वरारोप :—

कहा जाता है कि एक वार महाराजाधिराज आपके दर्शनार्थ पधारे; आप को उस दिन सियाद्रा शीत ज्वर आया हुआ था। आप ओढ़ी हुई गुदड़ी से निकल कर आ विराजे और प्रसन्न रूप से वार्तालाप करने लगे। महाराजा की नजर गुदड़ी की ओर गई तो देखा कि वह शीतज्वर प्रकोप से कांप रही थी। महाराजा ने निवेदन किया महाराज आप जैसे महापुरुषों के पास भी ज्वर आता है? आप आने ही क्यों देते हैं? श्रीमद् ने कहा राजन अपने संचित कर्मों का भोक्ता आत्मा स्वयं है अतः भोगने से ही छुटकारा होता है।

कोठारीजी पर कृपा :--

बीकानेर निवासी गिरधर कोठारी की मां आपश्री की परम भक्त थी। गिरधर के पिता नाहटों (संभवतः मदजी नाहटा) के यहां नौकरी करते थे। एक वार उन्होंने डांट फटकार बता कर कोठारीजी को नौकरी से अलग कर दिया। श्रीमद् जब आहार पानी के लिये गये यह वृतांत ज्ञात कर मदजी को समझाया पर उनके न मानने पर कहा जाता है कि श्रीमद् ने उन्हें महाराजा सूरतसिंह के पास धर्मलाभ संवाद प्रेषणार्थ नियुक्त कर दिया। हमेशा राज दरवार में जाने के कारण कोठारीजी की अवस्था अच्छी हो गई। मदजी नाहटा को किसी ने कहा:—

> "मदिया मत कर गीरबो, दुरजनिये नै देख।
> ऐ नारायन वे नाथजी, बांरा मगरां मेख॥"

बीकानेर में श्रीमद् की स्मृतियां :--

बीकानेर में आप श्री के कई कार्य कलाप विद्यमान हैं। बीकानेर के बड़े उपाश्रय का तख्त, देवछंदा, दीवानखाना आदि आपके समय के हैं। नाहटों की गुवाड़ के आदिनाथ जिनालय के दरवाजे को उपदेश देकर सामने से खुलवाया क्योंकि सामने दरवाजा नहीं रहने से भगवान की दृष्टि बंद थी, अब राह चलते व्यक्ति को शत्रुञ्जयावतार श्रीऋषभदेव (सं० १६६२ चै० ब० ७ में यु० जिनचंद्रसूरि प्रतिष्ठित) प्रभु के दर्शन हो ही जाते हैं। सं० १५६१ में प्रतिष्ठित श्री चिन्तामणिजी (बीकानेर का सर्व प्राचीन जिनालय) के मंदिर द्वार के दोनों ओर लगे हुए हाथियों को आपने ही यहां रखवाये थे। कहा जाता है कि पहले ये श्री नमिनाथ जिनालय में थे जो उस जमाने में शहर के किनारे और शूनसान जगह में अवस्थित था। अब बगीचा व उसमें से मन्दिर का नया दरवाजा हो जाने से इसकी शोभा बढ़ गई है। यह मन्दिर बच्छावत कर्मसी ने सं० १५ १ में बनाया था।

उदरामसर मेले का प्रारम्भ : -

बीकानेर से ४ कोश की दूरी पर स्थित उदरामसर के पास दादा साहब जिनदत्तसूरिजी का प्राचीन स्थान है। बालू के बड़े बड़े टीबों को पार करके वहां जाना होता है। श्रीमद् ने सं० १८८४ के मिती भाद्वा सुदि १५ के दिन वहां का "मेला" कायम किया। राज्य की ओर से रथ घोड़े सवार इत्यादि आने लगे तथा जनता भी सैकड़ों सवारिया लेकर वहां एकत्र होने लगी। आज तक यह मेला चालू है। दादासाहब

की पूजा व गोठ-जीमनवार, वगैरह हुआ करते हैं। उस समय का बनाया हुआ सेवग हंसजी का गीत मिला है जो इस प्रकार है :—

गीत साणोर

मुदै महीपति हुकुम सूं सिरै हुयो, मगरियो भादवा सुद पूनम भारी।
पीत सुं दादा जिनदत्तसूर रै पगां सको, जावो भाव सूं दुनी सारी ॥१॥
अधग अणपार साहुकार बहु आविया, तंबूड़ा तनातां पाल तणीया।
तेज घण एम दरबार सद्गुर तणै, बड़ा सूं हगामा थाट मणीया ॥२॥
हरख घण केसरां हुंत सेवा हुवै, राग रंग बधे सुचरंग रीतां।
सिरै गोठां थटां उमग है सवाया, कहीजै जगत में अखी कीर्तां ॥३॥
घमस घोड़ा रथां महां मानव घणां, भलो हुय हजारां खलक भेलो।
श्रीय गुरुदेव नाराण परताप सूं, मंडायो खूब सदासुख मेलो ॥४॥
इति गीत सेवक हंसजी रो कह्यो ॥

यति फतैचन्दजी और जीवराजजी से धर्मस्नेह :--

श्री कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा के यति फतैचन्दजी से आपका काफी स्नेह था नाल की दादावाड़ी में उन दिनों सभी शाखाओं के यति लोगों ने शालाएं बनाई थी। कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा की शाला (प्रतोली द्वार के पास वाला मकान) के निर्माण होने पर श्रीमद् ने निम्न पत्रिका द्वारा सूचना दी थी। इस पत्र का "पतित" शब्द श्रीमद् की लघुता का द्योतक है।

"पं० प्र० श्री १०८ श्री फतैचन्दजी साहियां सूं पतित पं० नारन री। सदा वंदना। साधु संबधित साल विवस्था वर्णनं यथा :— —

सवैया चौबीसा

"सात रसाल विसाल निहाल कै, दूरजनसाल कै साल सतीगी,
स्त्रैगी स्तांन दिनाननैं जव, कातिक मास पुनैं सिणगीगी;
जगिजैगो ताप संताप कयें न मिटै, मन वड़वा विन वड़वा सितगैगी,
सीतई फात नई मई साल पै, साजन तिन मन माहि जगैगी।"

इसी शाखा के वा० जयकीर्त्तिजी गणि (श्रीपालचरित्र कर्ता-जोरावरजी) तथा सांवतजी से श्रीमद् का अच्छा सम्बन्ध था। श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार में श्रीमद् के साथ इन दोनों का चित्र था जिसे हमने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ग्रन्थमें प्रकाशित किया है श्रीमद की रचनाएं सर्वाधिक इसी ज्ञानभंडार में पायी गयी थी। हमने यहीं की प्रतियों से नकलें की थीं। खेद है कि अब इस भंडार की प्रतियें यत्र तत्र बिखर गयी है।

सं० १८८५ ज्ञानपंचमी के दिन आपश्री के उपदेश से हाकिम कोठारी उमेदमलजी के पुत्र जीतमलजी ने पं० प्र० फतैचन्दजी को विशेषशतक (पत्र ४६) और निरयावलि सूत्र (पत्र ४६) की प्रतियां वहरायी थी जो श्रीजिनकृपाचन्दसूरि ज्ञानभंडार में विद्यमान थीं।

जैसलमेर नरेश का आमंत्रण व बीकानेर नरेश के अनुरोध से विहार स्थगित :—

आप को बीकानेर पधारे बहुत वर्ष हो गये थे। आप की इच्छा थी कि समाधिमरण बीकानेर में ही हो। फिर भी अन्यस्थानों

के नरेशों व श्रावकों के आग्रहवश कई बार विहार करने की तैयारी की तो महाराजा सूरतसिंह और उनके बाद महाराजा रतनसिंहजी [1] जो आपके परमभक्त थे, इस वृद्धावस्था में विहार करने से अत्यन्त अनुनय-विनय पूर्वक रोक लेते थे। जयपुर, किशनगढ़, जैसलमेर इत्यादि नगरस्थ श्रावकों एवं राजामहाराजाओं के पत्र आपश्री को बुलाने के लिये बराबर आते रहते थे। जैसलमेर के महारावलजी श्रीगजसिंहजी (राज्यकाल सं० १८७६—१६०२) एवं उनके दीवान बरढिया मुंहता साह श्री जोरावरसिंहजी मभूतसिंहजी के सुनहरे बेलबूटों वाले कई पत्र हमारे संग्रह में हैं जिनमें आपश्री से अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक जैसलमेर पधारने की प्रार्थना की गयी है। सं० १८८६ मिती माघ सुदि ११ का प्रथम पत्र मिला है जिससे मालूम होता है कि पत्र-व्यवहार पहले से चालू था। दूसरा पत्र सं० १८६१ मिगसर वदि ३ का एवं तीसरा पत्र माघ सुदि ४ का है जिसमें महाराजा ने स्वयं वंदना लिखी है, चौथा पत्र सं० १८६२ माघ सुदि ५ का है जिसके साथ खास रुक्का भी विद्यमान है। इन चार पत्रों के अतिरिक्त और कई पत्र नहीं मिले, जो नष्ट हो गये प्रतीत होते हैं। श्रीमद् के दिये हुए पत्रों में एक पत्र सं० १८६० मिति पौष वदि ११ का मिला है

---

1 इनका जन्म सं० १८४७ में हुआ। सं० १८८५ में अपने पिता महाराजा सूरतसिंह का स्वर्गवास होने पर राज्याधिकारी हुए। ये भी अपने पिता की तरह श्रीमद् के परम भक्त थे। खरतरगच्छ के बड़े उपाश्रय व श्रीपूज्यों के प्रति बड़ा आदर रखते थे इनका सं० १९०८में देहान्त हुआ।

जिससे मालूम होता है कि आपने इस वर्ष विहार करने का विचार किया था। जब महाराजा रतनसिंहजी ने सुना तो वे स्वयं श्रीमद् के चरणों में पधार कर विहार न करने की स्वीकृति ले गये जो आपही के शब्दों से पाठकों को मालूम होगा। पत्र का आवश्यक अंश यहां अक्षरशः उद्धृत किया जाता है :—

"राजाधिराज काती वदि १ रै दिन को। भीमराजजी हस्तू मनैं इसो फुरमायो। एक हूं तैं कनैं वस्तु मांगसुं, सो जरुर मनें देणी पड़सी। मैं आ कई मैं कांगै खन आप कांई मांगसी। पछै काती सुद १० रै दिन हजूर पधार्या। खड़ा रहि गया, विराजै नहीं, जद मैं अरज कीनी, महाराज विराजै क्यूं नहीं। जद फुरमायो हूं मांग् सो मनै दै तो बैसं्। जद मैं अरज करी, साहिब फुरमावो सो हाजर। जद फुरमायो, तं् अठै सु विहार रा परिणाम करै छै सो सर्वथा प्रकार विहार कोई करण देवं् नहीं। जद मैं अरज कीनी, हूं तो बीकानेर इण हीज कारण आयो छो। सो मनै बीस बरस उपरंत अठै हुय गया, म्हांरी चिठी आज तांई कोई नीकली नहीं। जिणं सूं माहरा विहार रा परिणाम हुवा छै। जद फुरमायो म्हांरो ई पुण्य छैं। सो एक बार फलोधी जासं्। सो मैं आठ वार अरज करी परं न मानी। उपरंत मैं कह्यो साहिबां री सीख विना जावं् नहीं ; जद विराज्या पछैं और बातां घड़ी च्यार तांई वतनाई। उठतां खड़ा रहि गया फेर फुरमायौ जो फेर बैठ जाऊं, जद मैं अरज कीनी, साहिबां री सीख विना कोई जावं् नहीं पछै आप पधारया। सो माहरौ दाणौ पांणी बलवान छै तो (पिण) एकबार तो इण वात नै फेर उथेलसं्, पछै जिसो दाणो पाणी। इति कलम्।"

महारावलजी की वाञ्छापूर्ति :—

जैसलमेर के महारावलजी के पुत्र की वांछा थी और इसके लिये श्रीमद् से बराबर प्रार्थना कराते थे। आपश्री ने चैत सुदि १४ को रात्रि को यक्षराजजी से इस विषय में पूछा। यक्षराजजी ने प्रतिपदा के दिन आकर खुलासा किया कि इनके दो पुत्र का योग है पर दम्पति के सचिक्कन वीर्य्य के अभाव में बाधा है। श्रीमद् ने औषधि प्रयोग बताते हुए अफीम, भांग एवं सुरापान आदि मादक द्रव्यों के त्याग का निर्देश किया था। इस पत्र की नकल श्रीमद् के हाथ की लिखी हुई हमारे संग्रह में है।

उदरामसर दादावाड़ी का जीर्णोद्धार :—

उदरामसर ग्राम के बाहर दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी [1] का प्राचीन स्थान है उसके आस-पास बालू की प्रचुरता होने के कारण मंदिर नीचे धस गया था एवं दादासाहब के चरण भी ऊंचे उठा कर प्रतिष्ठित करने की आवश्यता थी। सं० १८८४ के आसपास जैसलमेर के बाफणा पटवों [2] की बरात बीकानेर के सेठिया अमीचंद जी के यहां आई थी इस अवसर पर श्रीमद् के उपदेश से सेठियाजी ने गौड़ी पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में सम्मेतशिखरजी का मन्दिर निर्माण करवा कर तीर्थाधिराज सम्मेतशिखर का संगमरमर का विशाल पट प्रतिष्ठित करवाया तथा जैसलमेर वालों ने उदरामसर स्थित दादासाहब

---

१ देखें हमारा "युगप्रधान जिनदत्तसूरि" ग्रन्थ।

२ यह खानदान राजस्थान में बड़ा प्रसिद्ध रहा है देखें जैन लेख संग्रह भाग ३

के मन्दिर का जीर्णोद्धार सं० १८८३ आषाढ़ वदि १० को कराया। मन्दिर को ऊंचा, उठा कर स्तूप इत्यादि निर्माण कराये गये। श्रीमद् के कथन से चरणों को ऊंचा उठा कर स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया। कहा जाता है कि चरणों के नीचे पूर्व प्रतिष्ठा के समय जो वस्त्र रखा गया था वह बिलकुल नया निकला। जैसलमेर वालों ने संघ के ठहरने के लिये नौचौकिया एवं बीकानेर के संघ एवं यति लोगो ने अपने अपने स्थान बनवाये।

गच्छभेद :--

सं० १८९२ में श्रीपूज्य श्री जिनहर्षसूरिजी[1] के मण्डोवर में स्वर्गवासी हो जाने पर उनके पट्ट पर नवीन आचार्य अभिषिक्त करने के लिये यतिगण और श्रावक समुदाय मे काफी मतभेद हो गया इसका निर्णय होने के पूर्व ही श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी को आचार्य पद दे देने से बीकानेर वालों ने श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी को सूरिपद दिया। यति समुदाय में भी कई इधर और कई उधर हो गये। श्रावकों मे भी ऐसा ही हुआ। जैसलमेर वाले पटवा श्रीजिनमहेन्द्र

---

१ आप बालेवा गाव के मीठड़िया बोहरा तिलोकचन्द की पत्नी तारा देवी के पुत्र थे। आपकी दीक्षा स० १८४१ में और आचार्य पद स० १८५६ सूरत में हुआ था। सं० १८६६ में आपके नेतृत्व में राजाराम गिड़िया व तिलोकचन्द लूणिया ने शत्रुंजय का एक बड़ा सघ निकाला। बीकानेर का सीमन्धर जिनालय, सम्मेदशिखर पट्ट तथा कलकत्ता के बड़े मन्दिर की आपने प्रतिष्ठा की थी। सम्मेतशिखर, अंतरीक्ष, मक्सीजी, धुलेवा आदि तीर्थों की यात्राकी। स० १८९२ मंडोवर में आपका स्वर्गवास हो गया। आप के पट्टधर श्रीजिनसौभाग्यसूरि हुए।

सूरिजी[२] के पक्ष में थे और बीकानेर के महाराजा रतनसिंहजी बीकानेर वालों के पक्ष में। कई वर्षों तक इस विषय में खींचतान और सिफारिसें चलती रही। इस विषय के कितने ही विवरण पत्र, चिट्ठियाँ और राज्यादेश पत्र दोनों गद्दियों के श्रीपूज्यों के पास व ज्ञान-भंडारों में विद्यमान है। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने इस मन्थी को सुलझाने का पर्याप्त प्रयत्न भी किया होगा पर गच्छभेद तो हो गया सो हो ही गया इससे खरतर गच्छ की संगठित शक्ति बिखर गई। स० १८९७ श्रावण वदि २ को जयपुर से संवेगी पं० मंगल ने श्रीमद् को पत्र दिया था जिसमें केवल इस विषय के ही समाचार हैं यह पत्र हरिसागरसूरि जी के संग्रह में हैं। इससे मालूम होता है कि यह विवाद वर्षों तक चला था।

स्वर्गवास :--

इस प्रकार ग्रन्थरचना, शासनसेवा तथा आध्यात्म-धारा में अपने जीवन का साफल्य करते हुए आप ९८ वर्ष की दीर्घायु में स्वर्गवासी हुए। अपनी अंतिम रचना श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन में श्रीमद् स्वयं फरमाते हैं कि—

---

२ आप अलाय के सावसुखा रुपजी की पत्नी सुन्दरी के पुत्र थे आप का जन्म स० १८६७ दीक्षा स० १८८५ आचार्य पद सं० १८९२ में हुआ। आप बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। अनेक स्थानों में आपने प्रतिष्ठाएं की थी जिनमें शत्रुंजयस्थ मोतीशाह सेठ की टूक उल्लेखनीय है। सं० १८९१ में जैसलमेर के पटवों ने आपके उपदेश से शत्रुंजय का विशाल संघ निकाला। इस संघ में तेईस लाख रुपये व्यय हुए, उदयपुर, जैसलमेर, कोटा, जोधपुर आदि नरेशों की सेनाएं साथ थी, जिनमें ४००० सैनिक थे। सं० १९१४ में इनका स्वर्गवास हुआ।

साठी बुध नाठी या सन कहि है, असीय रासि लोकोक्ति यही।
हूं तो अठाणुं में भूलुं, मो में स्मृति मति केथ रही ॥३॥
गोड़ीराय वहो यही घेर मई।

सं० १८६८ में वृद्धावस्था के कारण आपका शरीर अस्वस्थ रहने लग गया था एवं स्मरणशक्ति के ह्रास की बात आप स्वयं उपर्युक्त स्तवन में प्रभु से निवेदन करते हैं। अंतिम अवस्था में समाधिपूर्वक मरण पाने के लिये अनसन, आराधना एवं ८४ लक्ष जीवायोनि क्षमापनादि की पद्धति जैन समाज में प्रचलित है। यति-समाज में प्रचलित पद्धति के अनुसार सं० १८६८ मिति आश्विन कृष्णा २ को जीवराशि टिप्पणिका की गयी, जो हमारे संग्रह में है। इसके बाद प्रथम आश्विन कृष्णा १३ को बीकानेर से उ० लक्ष्मीरंगजी ने अजीमगंज स्थित श्रीपूज्य श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी को पत्र दिया था जिसमें श्रीमद् के शरीर की अस्वस्थता के समाचार दिये थे, इसके उत्तर में दिया हुआ श्रीपूज्यजी का पत्र हमारे संग्रह में है जिसका आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"थांहरो कागद १ प्र। आसोज बद १३ को लिख्यो आयो समाचार लिख्या सो जाण्या अनकै कागद यड़ी देर से आया. सो कागद मास में २ जरूर दीया करज्यो और पं। प्र। श्री ज्ञानसार गणि रै शरीर की व्यवस्था लिखी सो जाणी, शरीर की यतन करावज्यो, सुखशाता पूछज्यो। १ दफै अम्हारै मुलाखात करणें की दिल में बहुत लाग रही है सो कह देज्यो अम्हे देस आवे तिनरे तो यैठा रहज्यो और कोई वस्तु पास में है सो शिष्य पं। चतुरभुज मुनि सपूत है इण कुं देणा ठीक है और राजाधिराज से पिण अपणें कार्य आछी पकाईत करता रहेज्यो ×× सं १८६८ रा मिती द्वि० आसोज सुदि १"

यह पत्र बंगाल जैसे दूर देश से आया था उस समय पत्रों के पहुंचने में पर्याप्त समय लगता था। वास्तव में श्रीमद् का स्वर्गवास इस पत्र लेखन से लगभग १५ दिन पूर्व हो चुका था। लांदियां के यति सुगनसुन्दरजी के पास एक बहुत बड़ी संग्रह पोथी + है, जिसमें कितनी ही याददास्तें लिखी हुई हैं। जिनमें याददास्त के तौर पर पहले उ० श्री क्षमाकल्याणजी के स्वर्ग की नोंध करते हुए श्रीमद् के "सं १८६८ मिती द्वितीय आश्विन वदि ३ अदीतवार संवेगी बाबाजी नराणजी देवलोक हुआ" लिखा है।

इसके बाद मिगसर वदि १३ को आपके शिष्य क्षमानन्दन ने अपनी जीवराशि-टिप्पनिका की, जिसमें आपका नाम नहीं है क्योंकि इतः पूर्व आपका स्वर्गवास हो चुका था।

+ इस पोथी के अवलोकन की भी एक उल्लेखनीय कथा है। प्रस्तुत जीवन परिचय लिख कर प्रेस में देनेकी तैयारी थी पर आपकी स्वर्गतिथि अज्ञात रहने से बड़ा विचार होता था कि इतने बड़े प्रभावशाली व्यक्तिके स्वर्गतिथि का मात्र १०० वर्ष जितना कम समय होनेपर न लगा सके यह एक बड़ी कमी रहगई, पर निरुपाय थे। अकस्मात् फलौधी तीर्थ के पार्श्वनाथ विद्यालय की व्यवस्था सम्बन्धी मिटिंग में भाग लेने का निमन्त्रण मिला उधर विनयसागरजी भी वहीं पधारे हुए थे इनका भी विहार बीकानेर की ओर कराना था फलतः गत ज्येष्ठ कृष्णा में वहां जाना हुआ। बातचीत के सिलसिले में मुनि विनयसागर जी ने लांदियां के यति जो उस समय वहीं थे, के पास एक बड़े खरतर गच्छीय गुटके का पता चला। तत्काल मैंने उस देखने की उत्सुकता प्रगट की और मुनिश्री के साथ यतिजी के कमरे में जाकर उसे ले आया। इधर उधर के पत्र पलटते अचानक मुझे याददास्त शीर्षक के नीचे लिखी क्षमाकल्याणजी की स्वर्गतिथि के नीचे ही श्रीमद् के स्वर्गवास की याददास्त देखने को मिली जिसे पढ़ते ही अपार आनन्द हुआ।

समाधि मरण की प्रतीक्षा मे आप चिरकाल से उत्कंठित थे * थे, सहज आत्मस्वभाव में लीन होकर अपने भौतिक देह का त्याग किया। राजभवन एवं जैन और जैनतर समाज मे शोक छा गया। राजा और प्रजा ने अपना निस्पृह उपकारी शिरोछत्र खो दिया।

समाधि मन्दिर :—

आप का अग्निसंस्कार भी आपकी प्रिय साधना भूमि—श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ जी के मन्दिर के निकट किया गया था वर्त्तमान श्री सेठ जी के बनाये हुए श्री सखेश्वर पार्श्वनाथ मन्दिर के अहाते मे पीछे दाहिनी ओर आपका समाधि मन्दिर बना हुआ है जिसमे सामने आले मे आपश्री की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित हैं, जिनपर निम्नोक्त लेख उत्कीर्णित हैं :—स० १६०१ वर्षे मापसुदि ६ प० प० ज्ञानसारजी पादु

---

* अन्त्य समाधिमरण शुद्ध देज्यो, ज्ञानसार वीनति मानेज्यो।

† महाराजा रतनसिहजी को दिए हुए श्रीपूज्य श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी के पत्र से —

"तथा श्री हजूर से अरजी मालम रहै तथा श्रीज्ञानसार गणि इस वखत में बहोत अच्छया योग्य साधु था। बड़े उपाश्रै के पूठियादार वगैरे समस्त साधु समुदाय के बहोत सहायकता था। जो साधु आपणौ दु'ख आय कें कहतौ थो तिण कौ दुख श्रीहजुर से मालूम करकै निवर्तन कराय देते थे। श्रीहजूर पिण उणारी मोकली ही मुलायजौ राखता था। तिण सें बहोत लोकां रौ उपगार करता था, सो उणारी तौ आयु स्थिति पूरण हुय गई है, सो हिवै श्री हजूर मालक है। मि० फागुण वद ३ स० १८९८ रा।

शिष्य-परिवार :—

आपके हरसुख (हितविजय), खूबचन्द (क्षमानन्दन), सदा

सुख (सुखसागर) [१] आदि कई शिष्य थे। जिनमें से हरसुख (हित-विजय) दीक्षा सं० १८३५ फा० व० ११ और खूबचन्द (क्षमानंदन) की दीक्षा सं० १८४५ में श्री जिनचंद्रसूरि के करकमलों से हो चुकी थी। सदासुखजी सं० १८६१ मि० सु० २ जालोयाणा में जिनहर्षसूरि के पास दीक्षित हुए सं० १८६७ चैत्र शुक्ल ११ को खूबचन्दजी और सदासुखजी ने किशनगढ़ से जयपुर के श्रावक ताराचन्दजी को पत्र दिया था।

एकबार खूबचन्दजी की मरणांत व्याधिग्रस्त अवस्था में श्री गौड़ीपार्श्वनाथ भगवान की कृपा से शान्ति हुई थी जिसका विशद उल्लेख श्रीमद् ने स्वयं श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ स्तवन में किया है जो इस ग्रन्थ के पृ० १२४ में मुद्रित है, आवश्यक अंश उद्धृत किया जाता है :—

> करी मोहि सहाय गोड़ीराय, करीय सहाय।
> खूबचंद की मंद थिरियां खबर लीनी आय। गौ० ॥१॥
> भ्रम प्रलाप अलाप मंडी, ठौर नाहीं जस ठाय।
> आंख कीकी चढ़ी ऊंची, घूमरी वलिखाय। गौ० ॥२॥
> नींद संग उमंग नांही, मन न अपने भाय।
> उछलत मिस नसा दसदिस, झाला दें जमराय। गौ० ॥३॥
> सकिम कारज करयौ सांमी, लाज राखी ताय।
> मो पतित की धवल धींगे, विपद दीध धकाय। गौ० ॥४॥

१ इन्होंने सं० १८८६ में उदरामसर दादाजी में शाला बनाई थी जिसका लेख इस प्रकार है :—

"ज० भ० श्रीजिनलाभसूरि प्रशीष्येण पं०। सुखसागरेण श्याला कारिता सं० १८८६ वर्षे वैशाख सुदि ५।

सं० १८६४—६८ के बीकानेर चतुर्मास विवरण में ज्ञानसारजी को ठा० ७ लिखा है अतः उस समय आपके शिष्य प्रशिष्यादि विद्यमान होंगे। पत्रों में चि० किरपा, पं० चतुरभुज पं० मेर जी, चिरं लछमण[1] नाम भी पाये जाते हैं। श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी के पत्र में शिष्य पं० चतुरभुज मुनि सपूत हैं लिखा है, इनके शिष्य जोरजी थे जो सं० १६५५ में स्वर्गवासी हुए थे।

सं० १८६८ ज्येष्ठ सुदि १३ को श्रीपूज्यजी ने अजीमगंज से बीकानेर पं० क्षमानन्दन, सुखसागर को पत्र दिया था। मिती मिगसर बदि १३ को क्षमानन्दन ने जीवराशि टिप्पणिका की, अतः इस समय तक ये दोनों विद्यमान सिद्ध होते हैं।

---

१ लछमण जी का उपाश्रय वेगाणियों की पोल में था, इनके कोई शिष्य नहीं रहने से श्रीमद् की शिष्य सनति विच्छेद हो गयी।

श्रीपूज्यजीके दफ्तर की दीक्षा नन्दी सूची से प्रधान शिष्य-त्रयों के अतिरिक्त निम्नोक्त शिष्य प्रशिष्यों का दीक्षा समय इसप्रकार है :—

१ चतुरो (चन्द्रविशाल) सं० १८६९ मा० शु० १० बीकानेर में जिनहर्षसूरिके दीक्षित

२ भैरा (भक्तिसिंह) सं० १८७६ मा० सु० १२ बु० ग्वालेर „ (ज्ञानसार पौत्र शि०)

३ लालो (लक्ष्मीसेखर) सं० १८७९ फा० व० ९ बीकानेर „ (ज्ञानसार शि०)

४ इंदरो (अमरप्रिय) सं० १८९० चै० व० ८ मृ० „ „ (क्षमानन्दन शि०)

५ नंदो (नीतिप्रिय) „ „ (सुखसागर शि०)

नरेशों पर प्रभाव :—

श्रीमद् बड़े सामर्थ्यशाली विद्वान्, निस्पृह, सर्वतोमुखीमतिभासंपन्न आत्मानुभवी योगीश्वर थे अतः इनका प्रभाव जैन व जैनेतर समाज में सर्वत्र व्याप्त था। जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी व माधवसिंहजी उदयपुर के महाराणा ज्वानसिंह जी के दरबार में आपका अच्छा सम्मान था। जैसलमेर के रावल गजसिंह जी व बीकानेर नरेश सूरतसिंह जी व रतनसिंह जी आपके परमभक्त थे। जिनके खास रुक्के व पत्रादि का कुछ उल्लेख पिछले पृष्ठों में आ चुका है। ये उभय महाराजा घण्टों तक आपकी सेवा में रहते थे। पाठकों की जानकारी के लिये महाराजा सूरतसिंहजी के पत्रों के कुछ अवतरण यहां दिये जाते हैं :—"स्वस्ति श्री सरब उपमा बिराजमान श्रीवैजी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री नारायण देव जी सुं सेवग सूरतसिंह री कोड एक दंडोत नमोनारायण वंदणा मालुम हुवै अप्रंच क्रिपापत्र आपरो आयो वांचीयां सु बड़ी खुसवखती हुई आपरै पाये लागां दरसण कीयां रो सो आनंद हुवो आपरी आज्ञा माफक मनसा वाचा क्रमणा कर कही बात में कसर न पड़सी आपरी दया माफक सारी बात रो आनंद खुसी छै नारायण री आज्ञा में फेर सनेर करसो तो बाबाजी उतो नारायण रे घर रो चोर हरामखोर हुसी जै रो अठे छठे दोयां लोकां बुरो हुसी वैने पछे त्रिलोकी में ठौड़ न छै। आपरो सेवग जाण सदा क्रिपा महरबानी फुरमावै छै जै सुं विशेष फुरमावण रो हुकम हुसी, दूजो अरज सारी धरमैं सु कही छै सो मालुम करसो सं० १८७० मिती मिगसर सुदि ३"

"आपरो दरसण करसुं पाए लागसुं उ दिन परम आनंद रो नारायण करसी आप इतरे पैला पटेइ पधारसो नहीं था अरज छै दुजो तरे तो मारा गाजम छै सेवग टावर री तो सरम नाराय(ण) नु वा आपनु छै हुनो आप थकां निचित छुं।"

"आपरो उबारियो हमें उबरसुं।"

"आपरी मगन में निहचे में तो ओ सरीर रहसी इनरै मनसा वाचा कर कसर न पड़सी और म्हांने तो परमेसवर संतां बिना दूजो चवदै भवन न दीसे छै कोई दूजो दीसे तो परमेसर थां संतां नै छोड़ वैने झालं, सो दूजो कोई ही छै नहीं"

"नारायण रो ही सागी सरूप आप छो हमें नारायण नु का वांरा आप परमभगत छो संत छो का चींतामण जी नारायण रो सरूप छै आपरी अरज सुं वां साहियां नैं सरम छै आपरै दरसन करण री मन में घड़ी अभिलाषा रहै छै सो आप कृपा फुरमायर दरसण दीजसी जरे हुसी आपसुं जोर तो न छै। मनै तो आपरो टाबर निजसेवक जनम जनम रो जाणसी सेवग जाण सदा क्रिपा महरवानी फुरमावो छो जैसुं विशेष फुरमावण में आसी"

जैसलमेर के मुंहता जोरावरमल मभूता ने महारावलजी की तरफ से लिखा है कि—

"आजरे समें में इसा सतपुरुष थोरा हुसी वड़ा उपकारी है"

"आप सारी वात जाणो छो आपसुं वैद्यक दुजी छानी न छै"

पार्श्व यक्ष प्रत्यक्ष : —

आपकी असाधारण योगशक्ति के प्रभाव से नर और नरेश्वरों

की तो बात ही क्या पर देव भी आपकी सेवा मे सर्वदा नतमस्तक रहा करते थे। सं० १८८४ मे कवि कृपाराम ने आपकी स्तुति मे लिखा है कि—

"काला गोरा सब बीर कह्या मे, पूरण परचा यु देवै
चौसठ योगिनि सदा गुरां रे, अष्ट पहर हाजर रैवै।

★ ★ ★

यक्षराज की महर हुई है कमी न रेवै अनकांई ।३।
चिन्तामण स्वामी सचराचर, पूरण परचा यूं देवै
महाराज की कृपा मोटी, हिल मिल के वातां केवै ।।४।।"

भगवान श्रीगौडी पार्श्वनाथ स्वामी पर आप की पूर्ण भक्ति थी अत श्री चिन्तामणि पार्श्वयक्ष आप से बड़े प्रसन्न रहते थे व प्रायः रात्रि के समय उपस्थित होकर आपसे वार्तालाप किया करते थे। बीकानेर महाराज सूरतसिंहजी के खास रुक्कों में अनेकवार यक्षराज जी की आज्ञा व प्रश्न—समाधानादिका जिक्र आया है। इसी प्रकार जैसलमेर के महारावल गजसिंहजी के पुत्र नहीं था और उन्होंने अपने खास रुक्कों मे इसके लिये यक्षराज जी से अर्ज करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की जिसके उत्तर में श्रीमद् ने जो लिखा उसकी नकल का आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"चैत्र सुदि १४ पाछली पुहर दोड रात्र रह्यां श्री पंचोई यक्षराजजी पधार्या भैरुंजी आपरै हाथ सूं वणां री आज्ञा प्रमाणै पूजापो धर्यो छो सो लीयो, उणरात्र फुरमायो-पूनम री

राव आवस्यां जद इण वात रो जवाब देस्यां मांहरी तरफ री मैं अरजकरी आ लज्या आपरै हाथ रासणी हैं। आज सूधी आप लज्या राखो पिण आ लज्या राख्यां सुं सर्व सही छै नहीं तो पाछली राखी सोई निकमी छै। इतरी मैं माहरी उण रात्र अरज करी। पूनिम रो फुरमाय गया था आवणरो सो पूनिम रै दिन तो आया कोई नहीं। एकम रै दिन पाछली घड़ी छः रात्र रह्यां पधार्यो जद मे अरज कीनी रावलजी महा राजां रै पुत्र री वांछा छै सो अरज करां छै, जद फुरमायो पुत्र दोय रो इणां रे जोग छै..." इत्यादि।

आयुर्वेद ज्ञान :—

गत दो-ढाई सौ वर्षों में यति समाज मे वैद्यक ज्योतिषादि ज्ञानका अच्छा प्रचार रहा है फलत एतद् विषयक अनेको ग्रन्थ आज भी जैन यतियों द्वारा निर्मित उपलब्ध हैं। अपनी प्रौढ़ा वस्था मे श्रीमद् वैद्यक विद्या में प्रसिद्ध हो गये थे। पूर्व देश यात्रा के समय मुर्शिदाबाद में कवि जीवराज ने आपकी स्तुति मे लिखा है कि :—

"वैद गुरुचेल हेत जाणै नव नाड़ी कौ
करत इलाज ताकौ होत कल्याण जी
कहै कवि जीवराज बड़ी ठौर मानि तांकी
जस को प्रकाश तासों जाणत सुजाण जी
रायचन्द्र जी के सिखि आवै मकसुदाबाद
सुणियो उदार में यतीश्वर नराण जी

★ ★ ★

वैद्यक निधान मांहि धनंतरि सो पान जस गच्छ चौरासी मांक ओपे सरताज है।

अजमेर में कवि नवलराय ने भी आपके प्रसशात्मक कवित्त में वैद्यक, ज्योतिष, मंत्रतंत्र, कवित व राजनीति आदि में आपको विशारद बतलाया है। जयपुर नरेश के पट्टहस्ति की चिकित्सा का प्रवाद आगे लिखा जा चुका है। जैसलमेर नरेश तथा कितने ही दूसरों के पत्र आप के आयुर्वेद विशारद होना सूचित करते हैं। इस प्रकार आप एक कुशल वैद्य थे जो द्रव्य और भावरोग (रागादि दोषों) को विनष्ट करने में समर्थ थे।

कला नैपुण्य :—

आपश्री बडे से लगाकर छोटे सभी कार्यों मे सिद्धहस्त थे। हस्तलिपि आपकी बड़ी सुन्दर थी। ज्ञानोपकरणों का निर्माण आप बडी मजबूती से करते थे। आपके हाथ से बने पूठे, फाटिया, पटड़ी आदि आज भी "नारायणसाही" नाम से विख्यात हैं जो बडे मजबूत व कलापूर्ण है। आपने स्वयं अपने विहरमान बीसी के १२ वें स्तवन मे लिखा है कि :—

"हुन्नर केता हाथे कीधा, ते पिण उदय उपायें सीधा,
जस उपजायो जस उदयें थी, मद लोभ ते मदोदयथी॥ ॥

कवि नवलराय ने आपके कवित्त में लिखा है कि :—

"कर्मे विश्वकर्मा सो, हुन्नर हजार जाके,
वैद्यक में जान सब, ज्योतिष यंत्रतंत्र को"

आपके प्रत्येक कार्य में कला का दर्शन होता है। साधारण

से साधारण बातों में भी कुछ नवीनता और आपकी अपनी छाप रहती थी। आपकी रचनाओं में सम्यक् सूचक शब्दादि प्रचलित परंपरा से भिन्न जैन पारिभाषिक पाये जाते हैं जैसे— प्रवचन माता[६], सिद्ध[१], नय[२], समिति[३], सत्ता[१], निश्चयनय[१]।

बाह्य मुद्रा :--

आप साधुवेष में रहा करते थे व अपने स्वल्प उपकरणों को अपने स्कन्धों पर धारण कर पैदल विचरते थे। श्री सिद्धाचल आदि जिन स्तवन में स्वयं—"वृद्ध वयै पग पथ संघौ पगरणवही, कंटक पीडा पगतल घाम्यै दु:सही"—लिखते हैं। आपके कतिपय चित्र भी उपलब्ध हैं तथा हमारे संग्रह का एक पत्र इस विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है. जिसका आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है —

'॥ ॐ नत्वा श्री बाबाजी साहिब सा वंदना १०८ वार रिखडे की, आपके गुणग्राम याद करता हूं, हूं किसी लाय (क) हू नहीं, कृतकृत्य क्योंकर हूंगा मरण तो आया इहां कुछ नहीं हूं कमाया, एक आपके दर्शन तो पाया बाकी जनम रे गमाया। अब वह मुनि-मुद्रा, कान पर चसमा, ओघा कंधे पर, हस्त में तमाखू डब्बी, ठुमक ठुमक चाल, मुखसे वचनामृत भरतादिक अनेक आनंदकारी मात्रमयी माधुरी सूरत कब देखूंगा धाया अब कहां दरसन पाऊंगा, जो है पाया इस जनम में और तो कछु नहीं मैं कमाया एक यही दर्शन अपूर्व पाया इस स्थान से जनम जनम का पाप गमाया इतना तो

खूबही पूण्य कमाया, आप ध्यान में मुझे निर्बुद्धि को रखोगे तो मैं धन्य धन्य कहाया सिवाय इसके और कुछ है नहीं।"

"पत्र बाबाजी श्री १०८ ज्ञानसार जी महाराज जी के चरणों में"

लघु आनन्दघन :—

आपने अपने दीर्घजीवन का अधिकतर भाग आध्यात्म-ज्ञान-दिवाकर श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के स्तवनों तथा पदों के मनन, अध्ययन, परिशीलन व आलोचन में बिताया था अतः आपके जीवन मे आनन्दघनजी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था आपश्री के पद व स्तवनादि में वह स्पष्टतः दृगोचर होता है। आपने अपने साहित्य, चौवीसी बालावबोध आदि सभी टीकाओं व प्रश्नोत्तर ग्रन्थों मे पचासों जगह आनन्दघनजी के पद व स्तवनों के अवतरण उद्धृत किये हैं, उनके आत्मानुभव व रहस्यमय वाक्यो को जितना आपने समझा था, दूसरे किसीने नहीं। आप उनके साहित्य परिशीलन द्वारा स्वयं आनन्दघनमय हो गये थे अतः स्वर्गीय श्रीजयसागरसूरिजी के लिखे अनुसार यदि आपको 'लघु आनन्दघन' नाम दें तो सार्थक और सर्वथा संगत ही मालूम देता है। आनन्दघन चौवीसी के चिरकाल मनन की कथा श्रीमद् स्वयं सुविधिनाथ स्तवन की प्रस्ताविका मे भी इसप्रकार लिखते हैं :—

"मै ज्ञानसारे मारो बुद्धि अनुसारे सं० १८२६ थी विचारते विचारते सं० १८६६ श्री कृष्णगढ़ मध्ये टव्बो लिख्यो पर्ण ऐं इतरा बरसां विचारतांही सी सिद्ध थई—"

आपके पदादि मे भी आनन्दघनजी का प्रभाव स्पष्ट हैं।

आत्म परिचय :—

श्रीमद् ने अपनी कृतियों में अपना परिचय और दिनचर्या के सम्बन्ध में जो लिखा है उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया जाता है :—

"वंश उपेश लिंग जिन दरसण, रूप रंग बल भासा
प्रगट पंच इन्द्री नर हुन्नर, पूरण आयु प्रकासा ॥ २ ॥

(बहुत्तरी पद १६ वां)

बहुत्तरी के ४२ वें पद में श्रीमद् ने अपनी चर्या का अच्छा वर्णन लिखा है पाठकों को इस ग्रन्थ के पृ० ६४ में देखना चाहिये आनन्दघन चौवीसी बालावबोध में—"हिवै पं० ज्ञानसार प्रथम भट्टारक खरतर गच्छ संप्रदाई वृद्ध वयोन्मुखियै, सर्व गृच्छ परं- परा सम्बन्धी हठवाद स्वेच्छायें मूकी एकाकी विहारियैं, कृष्ण- गढ़ें सं० १८६६ बावीसी नूं अर्थ तिमज बे स्तवन करी तेहनो आशय आगला पोतेंज लिखै।"

लघुता :—

मानव को ऊंचा उठाने में लघुता बड़ी सहायक है। "लघुता से प्रभुता मिले" वाक्य की सार्थकता आपमें पूर्णतः सन्निहित थी। इतने बड़े विद्वान, गीतार्थ, वृद्ध, उत्कृष्ट कवि और सर्वमान्य होते हुए भी अपने को इन्होंने सर्वदा लघु ही माना और लिखा। जो राजा, महाराजा, साधुसंघ या श्रावकवर्ग इन्हें परमात्मा के अवतार रूप मानते थे, श्रीमद् उन्हें पत्रादि देते समय उनके लिए सम्मान सूचक शब्द लिखते हुए अपने लिये "तूं" जैसा लघु शब्द लिखा है। आपकी कृतियों से लघुता के कुछ अवतरण यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

"बाह्य कष्ट देखाड़ी मुझ सरिखा घणा,
वंचे मुगध नैं दे उपदेश सुहामणा"

(शत्रुंजय स्तवन पृ० १३७)

ज्ञानसार नाम पायो ज्ञान नहिं गेहरा।

(आदिजिन स्तवन पृ० ११४)

"हूं महा मंदबुद्धि, शास्त्र नुं परिज्ञान किमपि नहीं। तेहथी छोटे मुंहे मोटाओनी वात किम लिखाय"

(अध्यात्म गीता बाला० पृ० ३१२)

"हूं महा मूर्ख शेखर, कर्त्ता महापंडितराज"

(वही पृ० ३०८)

हमसे मैंसे भेषधर, कीच कीयौ इक मेक,

(पृ० १७६ मति प्रबोध छत्तीसी)

"मुझ जेहवा वंचकी बाह्य क्रिया कलाप दिखावी नैं मुग्ध लोकोने स्वमत आदरवा कारणैं"

(पृ० ३६० विविध प्रश्नोत्तर)

"मुझ जेहवा भ्रष्टाचारियो.नी संगते शान्ति स्वरुप न पामें।"

(आनन्दघन चौबीसी शान्ति स्त० बाला०)

निस्पृहता :—

कहा जाता है कि एक बार आप उदयपुर पधारे। आपके सद्गुण एवं सिद्धियों की प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी। जब मेवाड़ पति महाराणा की दुहागिन (कृपारहित) राणी ने सुना तो वह

देखिये प्रश्नोत्तर पत्र पृष्ट ४०८।

भी प्रतिदिन श्रीमद् के चरणों में आकर निवेदन करने लगी कि गुरुदेव कोई ऐसा यन्त्र दीजिये, जिससे महाराणाजी की अप्रसन्नता दूर हो और मैं उनकी प्रियपात्र हो जाऊं ! श्रीमद् ने बहुत समझाया, पर राणी किसी तरह न मानी और यंत्र देने के लिए विशेष हठ करने लगी। तब श्रीमद् ने एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर दे दिया। राणी की श्रद्धा और श्रीमद् की वचनसिद्धि से ऐसा संयोग बना कि महाराणाजी की उस राणी पर पूर्ववत् कृपा हो गयी। श्रीनाराणजी बाबा के यत्र वशीकरण की बात महाराणाजी तक पहुंची और उन्होंने यंत्र के सम्बन्ध मे इनसे पूछताछ की। श्रीमद् ने कहा "राजन् ! हमें इन सब कार्यों से क्या प्रयोजन।" जांच करने के लिये यत्र खोलकर देखा गया तो उसमें "राजा राणी सु राजी हुवे तो नराणे ने कंइ, राजा राणी सुं रूसे तो नराणे नें कंई" लिखा मिला। इसे देखकर महाराणाजी आपकी निस्पृहता और वचनसिद्धि पर बड़े ही प्रभावित हुए। इसके बाद महाराणा भी आपके अनन्य भक्त हो गये थे। श्रीमद् की कृतियों में महाराणा ज्ञानसिंह आशीर्वाद नामक कवित्त तथा उसकी वचनिका उपलब्ध है जिससे भी आपका महाराणाजी के वंश से अच्छा सम्बन्ध मालूम होता है। इस कवित एवं वचनिका में रचयिता का नाम तो नहीं है पर यदि श्रीमद् ने उनकी रचना की होगी तो बीकानेर मे रहते ही, क्योंकि महाराणा ज्ञानसिंहजी का राज्य-काल उदयपुर के इतिहास के अनुसार सं० १८८५ से १८९५ तक का है उस समय श्रीमद् बीकानेर ही थे।

अपने पिछले जीवन मे समस्त प्रवृत्तियों मे भाग लेते हुए भी आप सर्वथा निर्लेप रहते थे। अध्यात्म और योग की गहरी अनुभूति में योगी के जलकमलवत् निर्लेप रहने का उल्लेख मिलता है, आप उस अवस्था को प्राप्त कर चुके थे फलत व्यवहारिक क्रियाओं को सम्पादन करते हुए भी आप उससे निर्लेप रहते थे। नामकी वाञ्छा से आप सर्वदा दूर रहे। बीकानेर के गौडीपार्श्व-जिनालय, दादाबाडी, उपाश्रय आदि में जीर्णोद्धार तथा अप नाना प्रवृत्तियां आपके उपदेशों के फलस्वरूप हुई थीं पर आपने शिलालेखादि में कहीं अपना नाम नहीं आने दिया।

आप उच्च कोटिके टीकाकार और समालोचक थे। श्रीमद् आनदघनजी, देवचंदजी,[1] यशोविजयजी आदि के ग्रंथों पर विवेचन लिखते समय आपने सच्चे समालोचक का कर्त्तव्य पालन करने के नाते श्रीमद् देवचद्रजी ज्ञानविमलसूरिजी तथा मोहनविजयजी आदि विद्वानों की बडी ही मार्मिक, स्पष्ट और निर्भयतापूर्वक समालोचना की है। इन टीकाओं तथा आलोचनाओं से आपके प्रखर पाण्डित्य और अप्रतिम प्रतिभा का सहज पता मिलता है। इन में विशेषता

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी का आध्यात्म अनुभव और द्रव्यानुयोग का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। आपकी रचनाओं में जैन तत्त्वज्ञान जैनाचार का रहस्य और भक्ति कूट कूट के भरी है। आपके अनुभव वचन की छाप पाठक को आपकी छोटी से छोटी रचना में भी मिले बिना नहीं रहेगी। श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ने आपकी रचनाओं पर मुग्ध होकर छोटी-बडी समस्त रचनाओं का सग्रह बडे प्रयत्नपूर्वक किया और आध्यात्म ज्ञानप्रचारक मडल की ओर से

यह है कि आगोन्य महापुरुषों की गुरुता व अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए विनयपूर्वक अपने उद्गार लिखे गये हैं। यहां पाठकों के परिज्ञानार्थ, श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत आध्यात्मगीता बालावबोध से कुछ अवतरण दिये जाते हैं।

"फिरी चउदमी गाथा ना त्रीजा पद "पर करतार" कह्युं। पनरमी गाथा ना बीजा पद मां "करे कर्म बुद्धि" एहवुं कह्युं। ते परकरतार मां, करे कर्म बुद्धि मां रहस्यार्थ अभिन्न पणो ज सम्भवे छे। नें आनुपूर्वी पणें फिरी अक्षर घटनायें तो भिन्न दिसे छे पर महाकविराजे एतलुं न विचार्युं हस्ये परं प्रत्यक्ष विरुद्ध जाणी ने आटलं जणाव्युं छे। फिरी हुं महामन्दबुद्धि छुं। तेथी ए स्थाने सुज्ञ पुरुषे विशेस्यापणे ए रहस्यार्थ प्रज्ञागोचर करवुं। परं एउनी चोवीसी (मां) पिण रहस्यार्थ पुनरुक्ति दूषणे दूषित छे। ते लिखवाने पत्र मा स्थानक नथी।"

श्रीमद् देवचन्द्र भाग १—२ नामक विशालग्रन्थों में उन्हें प्रकाशित करवाया है। श्वे० जैनसमाज में श्रीमद् आनन्दघनजी के पश्चात् आध्यात्म तत्त्ववेत्ता के रूप में आपका ही नाम लिया जाता है। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने जो आपको एक पूर्व का ज्ञान होने का लिखा है वह आपके असाधारण पाण्डित्य का परिचायक है। आपका जन्म बीकानेर के समीपवर्ती गांव में लूणिया तुलसीदास की पत्नी, धन बाई की कुक्षि से स० १७४६ में हुआ था। स० १७५६ में आपकी दीक्षा हुई प्रारंभिक विहार राजस्थान व सिन्ध में, फिर गुजरात सौराष्ट्र में अधिक रूप से हुआ। युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की शिष्यपरंपरा में वा० दीपचन्दजी के आप शिष्य थे स० १८१२ में आपको वाचकपद मिला और उसी वर्ष अहमदाबाद में आपका स्वर्गवास हुआ।

"ए वर्त्तमान २०० विस्से वरसो ना काल मां एहवा कविराजान अन्य थोड़ा गिणाय तेहवा थया, नैं जाणपणों पण अति विशेष हतूं । नैं हुं महामन्दबुद्धि शास्त्र नुं परिज्ञान किमपि नहीं तेहथी छोटै मुंहें मोटाओ'नी वात किम लिखाय। परं श्रावक नैं अति आग्रहै मैं एव्वो करवा मांड्यौ। तिहां जिम योजना मां सम विसम होय तिम लिख्युं जोइये तेहथी लिखूं । "सद्गुरु संग" वली आगल कह्युं । "करै गुरुरंग" । पुनरपि "शुद्ध गुरुयोग थी" । एम वे गाथा मां त्रण ठिकाणे गुरु शब्द गुंथ्यु ते पुनरोक्ति दूषणें दूषित कविता छै। आधुनिक सहिजना कवि ते पिण ए दूषण तौ टालै जौ एहवै मोटै कवे ए मोटुं दूषण कां न टाल्युं ए विचारवुं"

"स्वगुण द्रव्यपर्याय नें अभावै कर्त्ता कारण कार्यनी एकता न संभवैं न निराबाध पणुं संभवै तेथी "स्वगुण आयुध थकी कर्म चूरै" ए भाव प्रथम गुंथवुं योग्य प्रगट जणाय छै तेनै अभावैं चारकचक्र स्वभावी सम्पूर्ण साधन किम साधी सके पिण हूं महा मूर्खशेखर कर्त्ता महापण्डितराज परं विबुधैर्विचारणीयं।"

"पोताना आत्मानै चिंतवन करनै ध्यावै, इहां धर्म ध्यान सूत्रकारैं, गुंथ्यौ तेतौ नीचले गुणठाणैं रह्यौ। नै एज गाथा ना चौथा पद में नरमोहीं नै विकल्प जाय, इस्यौ गुंथ्यौ ते तो एता तो क्षीणमोह बारमै गुणठाणैं नी वात छै परं मनै तो गुंथ्या प्रमाणैं अर्थ करणौं।"

"अड्त्रीसमीगाथा नां अंतिम पद मां अबाह पद गुंथ्यौ आंई ३९ गाथा में निराबाध पद गुंथ्यौ तिहां अबाह निराबाध ए वे शब्द ए अर्थे एक छै परं मुज्नै अक्षर प्रमाणे अर्थ करवुं, परं पुनरुक्ति छै।"

"इहां कर्त्ता नें युत शब्द गूंथणो न हुंतो किम युत नो संयुक्त अर्थ होय ते इहां सिद्ध मां संयोगजनित फांइयो नथी। तिहां तो जे समवाय संबंध छै फिरी युत आगन रति शब्द गूंथ्यूं। ते वीतराग थई सिद्ध विराजमान ने राग नो अभाव परं मुक्त ने अक्षरनुं अर्थ करवुं।"

श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत साधु समाय टयार्थ से आलोचनात्मक अवतरण यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

"ए वे पदों में विरोधाभास छै ते किंचित् लिखुं पर हुं महा निर्बुद्धि वचठार छुं जैन रो जिदो छुं, महारो माजनो अतिमंद छै सिमाय कर्त्ता नो मोटो माजनो छै, परं सिद्धान्त वाक्यार्थ विरोधाभास कथन लक्ष लक्षण जैन विरुद्ध जाण्या पछी न लिखवुं ते अनंत जिनं नुं चोर थावुं छे तेथी लिखुं"

"एहवुं जे कह्युं ए क्षायिक भावे कथन ते विरोध इति सटंक हिवै आगल सिमायनी गाथाओ मां स्यो वर्णन करस्यो परं ए कविराज नी योजना नो एज सुभाव छै तेज वात ने गटरपटर आगे नी पाछे, पाछे नी आगे हांकतो चाल्यो जाय ते तमे पोते विचार लेज्यो। सम्बन्ध विरुद्ध अंगोपांगभंग कविता, वारवार एक पद गुंथाणो ते पुनरुक्ति दूषण कविता ते एहीज सिमाय में तमेही जोई लेज्यो, एक "निज पद" दस जागा गूंथ्यो छै ते गिण लेज्यो इकलो मुझने दूषण मत देज्यो बीजुं एहनो टूटक लिखत सप्तनयाश्रयी सप्तभंग्याश्रयी चुस्त छै स्वरूप ना कथन नी योजना तेमां तो गटरपटर छै ए विना बीजी सहिज टूटक योजना सटक छै। योजना करवी ए पण विद्या न्यारी छै, कौमुदी कर्त्तायें शिष्य थी आद्य श्लोक करायो, आप थी न थयो।

चलो ए वात खुली न लिखूं तो ए लिखत वांचण वालो मूर्ख शेखरजाणै एकारणे लिखूं। गुजरात मां ए कहिवत छे—आनंदघन टंकशाली जिनराजसूरि ' श्रामा तो श्रवग्ध्यवचनी, उ० यशो

१ आप अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रशिष्य और श्रीजिनसिंहसूरिजी के शिष्य थे। स० १६४७ वै० सु० ७ बीकानेर में बोथरा धर्मसी धारलदेवी के यहां आपका जन्म हुआ स० १६५६ मि० शु० १३ दीक्षा और सं० १६७४ में आचार्य पदारूढ़ हुए। आप उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावशाली आचार्य थे। आपने मेड़ता, शत्रुंजय, माणवड़, लौद्रवा आदि स्थानों मे जिन बिम्बादि की प्रतिष्ठाएं कीं। आपकी नैषध काव्य वृत्ति, शालिभद्र रास, गजसुकुमाल रास तथा चौवीसी, वीसी आदि अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं। आपकी शालिभद्र चौपाई नामक कृति का खूब प्रचार हुआ फलतः इसकी सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियां तथा कई सचित्र प्रतियां भी पायी जाती है। हमारे संग्रह में भी इसकी दो सचित्र प्रतियां हैं। कलकत्ता निवासी स्वर्गीय बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी के संग्रह में इसकी तत्कालीन सुन्दर सचित्र और अद्वितीय प्रति है जो शाही चित्रकार शालिवाहन के द्वारा चित्रित है। आप उच्चकोटि के कवि थे आपकी उपलब्ध छोटी छोटी कृतियों का हमने संग्रह किया है। स० १६९९ में आपका स्वर्गवास हुआ। विशेष जानने के लिये हमारा "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" देखना चाहिए। इसमें इनकी जीवनी पर श्रीसार कृत रास व चित्र प्रकाशित है शाही चित्रकार शालिवाहन चित्रित पुस्तक में आपका असली चित्र है। आपके सम्बन्धी एक अन्य रास का सार हमने जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित किया था। आपके आज्ञानुवर्ती आचार्य श्रीजिनसागरसूरिजी से स० १६८६ में आचार्य शाखा तथा आपके पट्टपर सं० १७०० में श्रीजिनरत्नसूरिजी से रंगविजय (लखनऊ) शाखा अलग हुई, मूल पट्टपर श्रीजिनरत्नसूरि हुए जिनकी पट्टपरंपरा में बीकानेर के बड़े उपाश्रय के श्रीपूज्य श्रीजिनविजयेन्द्रसूरिजी विद्यमान हैं।

विजय * टानटुनरिया पोतें थाप्यो सेज उथाप्यो, प० देवचन्द जी ने पूर्ण तु ज्ञान एक हतुं तेथी गटरपटरिया, मोहनविजय * पन्यास ने

२ महोपाध्याय यशोविजयजी जैन साहित्याकाश के उज्वल नक्षत्र थे। इन्होंने काशी में तीनवर्ष रहकर विद्याध्ययन किया। न्यायविशारद न्यायाचार्य आपकी उपाधि थी, आपने संस्कृत, गुजराती और हिन्दी में सैकड़ों रचनाएं कीं। कहा जाता है कि हरिभद्रसूरिजी के पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ऐसे गम्भीर दार्शनिक विद्वान आपही हुए हैं। केवल न्याय पर ही आपने सौ ग्रन्थ बनाने का कहा जाता है, खेद है कि थोड़े वर्षों में ही समुचित प्रचार के अभाव में आपकी २५—३० कृतियाँ उपलब्ध नहीं रहीं। आपका जीवन-चरित्र "सुयशवेलि" नामक समकालीन रचना में पाया जाता है। आपकी भाषाकृतियाँ गूर्जर साहित्यसंग्रह भाग १-२ में प्रकाशित हैं। सुप्रसिद्ध विनयविजयोपाध्याय आपके सहपाठी थे, उनकी अन्तिम अपूर्ण रचना श्रीपाल रास की पूर्ति आपही ने की थी जिसकी कई ढालें आजकल नवपदपूजा में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। सं० १७४५ में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके तत्त्वार्थगीत पर श्रीमद् ज्ञानसारजी ने बालावबोध लिखा जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है। आपके एक अन्य पद (जब लग आवै नहीं मन ठाम) का ज्ञानसारजी ने आनन्दघनजी के कथित बतलाया है पर उसके अन्तमें "चिदानन्दघन सुजस विलासी" छाप होने से ये रचना यशोविजयजी की निश्चित है।

३ पन्यास मोहनविजय तपागच्छीय रूपविजय गणि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७५४ से सं० १७८३ तक कई रास चौपाई आदि भाषा कृतियें निर्माण कीं। इनकी रचना सरल, मधुर और रोचक होने से खूब प्रसिद्ध हैं। सं० १७८३ में रचे हुए चन्द रास की श्रीमद् ने हिन्दी दोहों में समालोचना लिखी है।

लडकाला, मुझ नेआगन अर्थ लिखवु छे ते अक्षर प्रमाणे अर्थ लिखीस, किहां सरीखो अर्थ दीसे ते म्हारो दूषण न काढस्यो, अक्षर विरुद्ध अर्थ मारो दूषण सही" "आगे नवमी गाथा रे पहले पद में मायक्षये आर्जव नी पूर्णता रे इसो पद गूथ्यो ए पद नो सम्बन्ध बारमे गुणठाणे बिना मिले नहीं पण कर्त्ताए गूंथ्यो तेथी मने पद रो अर्थ करणो ते लिखूं · · · विण सिझाय कर्त्ताए आगेव पद गूथ्यो तेथी पुनरुक्ति अर्थ लिख्यो" ।

ज्ञानविमलसूरिजी की आलोचना :-

श्रीमद् आनन्दघन जी महाराज की चौवीसी पर श्रीज्ञानसारजी महाराज का अध्ययन बहुत गम्भीर था। आनन्दघनजी के तत्त्वज्ञान और आत्मानुभवमय गूढ स्तवनों पर विवेचन होना बहुत आवश्यक था, यद्यपि श्री ज्ञानविमलसूरिजी [१] ने उसपर टब्बा

१ आप भिन्नमालके ओसवाल वासव की पत्नी कनकावती के पुत्र थे। आपका जन्म स० १६९४ दीक्षा स० १७०२, स० १७२७ में पन्यास पद, स० १६४८ में सूरिपद प्राप्त हुए। स० १७७० में आपके उपदेश से शत्रुंजय का एक संघ निकला। आपने संस्कृत और भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की जिनके सम्बन्ध में जैन गूर्जर कविओ भाग २/३ में देखना चाहिये। आपके रचित स्तवनादि सैकडों की सख्या में उपलब्ध हैं जिनके संग्रह रूप २ भाग प्रकाशित हुए हैं। स० १७७७ पाटण में आपका श्रीमद् देवचन्द्र जी से मिलना हुआ था। उनके सहस्रकूट जिनों की नामावली बताने पर आप बहुत प्रभावित हुए थे। स० १७८२ में खंभात में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपकी स० १७२८ से सं० १७७५ तक रचनाए उपलब्ध हैं। तपागच्छीय धीरविमल गणि के आप शिष्य थे।

लिया था। पर श्रीमद् के लिए अध्ययन की कसौटी पर वह विचारपूर्ण और खरा नहीं उतरा। अनेक स्थानों में अर्थ स्खलित और अविचारपूर्ण लिखे गये। फलतः श्री ज्ञानविमलसूरिजी का रचित बालावबोध, अनायास ही श्रीमद् के आलोचना का विषय हो गया और उसपर आपको कड़ी और मार्मिक आलोचना करनी पड़ी। यद्यपि आपका यह बालावबोध प्रकाशित हो चुका है फिर भी प्रकाशकों ने उन आलोचना के अंशों को छोड़कर मनमाना संस्करण प्रकाशित किया है अतः पाठकों की जानकारी के लिये बालावबोध के समालोचनात्मक अंशों को यहां उद्धृत किया जाता है :—

"ज्ञानविमलसूरि कृत टव्वा में थी जोइये धारी नै लिखिये दिसनै टव्वानै जोयु ते किहां एकनो अर्थ लिखनै अत्यन्त थोड़ूं विचार्यू तेटला लिखवा थी जणाय छै ने कोई पूछै किहां ते जणाऊं, ए अभिनन्दन ना पद मा 'अभिनन्दन जिनदर्शन तरसियै, एहनो अर्थ अभिनन्दन परमेश्वर ना मुख नु देखवु तेनै तरसियै छै एतलै कोई रीते मिलै ते वाछियै एहवू लिखनै एतलू नथी विचार्यु दर्शन शब्दे जैन दर्शन नु कथन छै किम एज गाथा मे बीजे पदे "मत २ भेदे रे जो जइ पूछियै" ते परमेश्वर ना मुख देखवा मा मत मत भेदे स्यु पूछस्यै नै तेज अर्थ हुवै तो आगल पद मा 'सहु थापै अहमेव' ते परमेश्वर ना मुख दर्शन मा सर्व मत भेदी अहं एवू स्यु थापे पर अंत ताइ इमज लिख्यै गयु"

ज्ञानविमल करतै अरथ, कर्यौ न किमपि विचार।
तेथी ए तवना तणौ, लेश लिख्यौ अविचार ॥१॥

"कोईकहिसी विना विचार्यौ स्यु लिख्यौ ते, पहिली गाथा मा

'मत मत भेदे जो जइ पूछियै सहु थापै अहमेव' ए पद मां परमेश्वर ना मुख दर्शन नो स्यौ विशेषण फिरी दर्शन शब्दें सम्यक्त्व अर्थ लिख्यु' तिहां इम न विचार्यु' अभिनन्दन जिन दर्शन, जैन दर्शन ते विना मत मत भेदे पूछतै अहंएव स्यूं थापै फिरी अति दुर्गम नयवाद, आगमवादे गुरुगम को नहीं, धीठाई करी मारग संचरु', एउ मां मुख नो सम्यक्त्व नों स्यो विशेषण मुख्य विचार्यो ज थोड़ो"

(अभिनन्दन स्त० बाला०)

"इहां चन्द्रप्रभुजी नी स्तवना मां प्रथम ज्ञानविमलसूरि इम लिख्यु' हिवै शुद्ध चेतना अशुद्ध चेतना प्रतें कहै छै। अनादि आतमायें उपाधि भावै आदर्यो माटै सपत्नी भावै सखि कही पिण शुद्ध चेतना नै सखी सुमति श्रद्धादि सम्भवै जिम ★ ★ ★ ए स्वपक्षी वचन सूत्रकर्तायेज कह्यौ ते सूत्रकर्ता तौ भद्रक न हुतो पर' अर्थकर्त्ता इम लिख्यु', ते ते जाणै।"

(चन्द्रप्रभ स्त० बाला०)

"ज्ञानविमलसूरि महा पण्डित हुता, तेउए उपयोग तीक्ष्ण प्रयुंज्यो हु'त तौ समर्थ अर्थ करी सकता। तेउए तौ अर्थ करतैं विचारणा अत्यत न्यूनज करी, नें मैं ज्ञानसारें मारी बुद्धि अनुसारैं सम्वत १८२९ थी विचारतै विचारतै सम्बत १८६६ श्रीकृष्णगढ़ मध्ये टबौ लिख्यौ पर मैं इतरा बरसां विचार विचारतां ही सी सिद्धि थई ऐहवौ मोटौ पडित विचार विचार लिखतौ तौ सम्पूर्ण अर्थ थातौ पर' ज्ञानविमलसूरिजी ये तौ असमझ व्यापारी ज्यु' सौदो वेच्यो करै नफो तोटो न समझै तिम ज्ञानविमलसूरिजीयें पिण लिखतां लेखण न अटकावणी एज पंडिताई नो लक्षण निर्द्धार कीनौ, अर्थ

व्यर्थ अर्थ मनमधिन नी गिणत न गिणी।"(सुविधिजिन स्तवन बाला०)

सूत्रकर्तायें शीतल जिन नी स्तवना मां "शक्ति व्यक्ति त्रिभुवन प्रभुता निग्रंथता संयोगे रे" ए गाथा मां पांच द्विक संयोगी त्रिभंगी बतावी छे ने अर्थकरता ज्ञानविमलसूरें एहवुं लिख्युं-"शक्ति पामी ने करुणा तीक्षणता कर्म हणवाने विसे व्यक्त छे त्रिभुवन प्रभुता पामी ने उदासीनता ए त्रण गुण निग्रंथना ने संयोगे अथवा शक्ति व्यक्ति ! त्रिभुवन प्रभुता अने निग्रंथना ३ ए त्रिभंगी तुम्ह मांहि सामटी छे ए लिखत तिहां थी ज लिख्यो छे। आंई उपयोग प्रयुंजना थोड़ी प्रयूंजी, फिरी "इत्यादिक बहु भंग त्रिभंगी" तिहां बहु भंग त्रिभंगी ने स्थाने ए त्रिभंगी लिखता ही थोडुं विचायुं वां उत्पति १ नास २ परमेश्वर मां नथी संभवता सत् १ असत् २ सद् सत् ३ ए त्रिभंगी नो संभव न छे "(शीतल जिनस्त० बाला०)

"अर्थ करते ज्ञानविमलसूरें "श्री श्रेयांस जिन अतरजामी" एहनुं अर्थ लिख्युं यथा-श्रीश्रेयांसजिन अतरजामी मारा मन मां वस्या छो, ते मारी विचारणाये इम न जोइये, किम एतो सुमति सहित आनन्दघन नो वचन परमेश्वर थी छे यथा"—इत्यादि

"अर्थ करतायें अर्थ करते थते आंई प्रमाद वशे ना भ्रांति वशे लिख्यो जणाय छे। ★ ★ ★ एक अनेक रुप नयवादे एहनूं अर्थ इम लिख्युं छे शुद्ध निश्चै नये करी नयवादी अनेक रुपी छे ए वर्ण लिख्या छे ए वर्णों नो रहस्यार्थ लिखवा वाले ने मास्यो हुस्ये थीजूं ए लिखत असंबद्ध प्रलाप मासे छे।"

(श्रेयांस जिनस्तवन बाला०)

"अर्थ कर्त्ता ज्ञानविमलसूरै ए गाथा नो अर्थ करतां, हूं छु' तो महामूर्खशेखर पर' आंई तो मामूर थोड्'ज विचार्य' जणाय छै यथा— ★ ★ ★ स्युं संभव परं रागंगी नु' वाय सखूं ही मलार"

(विमल जिन स्तवन वाला०)

"ए स्तवन नो अर्थ करतां अर्थकर्त्तायें मूल थीज न विचार्यु'— धार तरवार नी तो सोहिली परं १४ जिन नी चरणकमल सेवा मां विविध किरिया स्यूं सेठैं, फिरी चरणसेवा मां गच्छ ना भेद तत्त्व नी बात_उदर भरण निज काज करवानों स्यों सम्बन्ध ? फिरी चरणसेवा मां निरपेक्ष सापेक्ष वचन, भूठा साचा नो स्यो सम्बन्ध ? फिरी देवगुरु धर्म नी शुद्ध श्रद्धा नी शुद्धता, उत्सूत्र सूत्र मासवा नो, पाप पुण्य नो सम्बन्ध स्यौ ? परं चरण सेवा—चारित्र सेवा ए अर्थ न पाम्यु' चरणसेवा पदसेवा भास्यु' तेह थी एज अर्थ ने सिधश्री थी मिती पर्यंत अंधोधुन्ध परं धकावता ज चाल्या गया।"

(अनतजिन स्तवन वाला०)

अर्थकर्त्तायें अर्थ करतां "देखै परम निधान" आंई निधान शब्दै धर्म निधान एहवो लिख्यो नै आंई "निधान" शब्दै स्वरुप प्राप्ति रूप निधान देखें ए अर्थ छै। धर्म प्राप्ति रूप निधान अर्थ नथी संभवतु' ★ ★ ★ एहनौ पिण अर्थ वलित छै परं लिखवानो स्थानक नथी" (धर्म जिनस्तवन वाला०)

ए स्तवन मां अर्थकारके 'कहो मन किम परखाय' ए पद नो अर्थ करते मन प्रसन्नवंत थई ने कह्यो एहव' परमेश्वर थी कह्यु' नें ए वचन विरुद्ध छै। परमेश्वर ने मननु' मनन न संभवै"

(शान्ति जिन स्त० वाला०)

ए तवन मां अर्थकर्त्तायें 'नांगें अन्ते पासे' ए पद नु अर्थ इम लिख्युं जे दिनये पांइ अतारे बांधूं करे ते ए पद नूं तो अक्षरार्थ, अन्ते सहिजे, पास पद नुं अर्थ जाति मां नांगें, शब्द नूं अक्षरार्थ जोइये तो इम, परं मोटा विबुध, भाषा ने सहिज जाणी ने अर्थ नों कर्त्ता अर्थ करतां विचारणा थोड़ी राखें परं रहवी भासा नो तो अर्थ, अर्थकरता ने जरूर विचारी ने अर्थ लिख्यूं जोइये किम "सितंपद एकं मा लिख." एहवूं कह्यूं छे ते माटे फिरी आगम पिण लिखनो थोड़ं विचार्युं यथा—सूत्रकर्त्तागें प्रथम गाथा ना अंत पद मां ए पाठ कह्यु तिम तिम अलगुं माजें ए पद नु अर्थ कर्त्तायें लिख्यू तिम तिम अलगु अवलु मुक्ति मार्ग थी विपरीत माजे छे एहव टब्बा में लिख्यूं पर अलगु शब्द नु अवलुं किम थाय तेथी अर्थकर्त्तायें आंई तो अर्थ करते मूल थी थोड़ी विचारणा कीनी फिरी ते "समझे न मारो सालो" एहनु अर्थ लिख्युं माह रोसालो ते रीस घणी मन मां इर्ष्यावत इम लिख्यु ने मन मां रोस विना काम क्रोधादि मन मां स्यूं नथी समवता तेथी माहरोसालो तो न संभवें फिरी तेहनुं पर्यायार्थ करी ने लिख्यूं छे सालो ते देश विशेषे धणियाणी ना भाई नैं कहै छै ते देश विशेषे नो जइये लिख्युं जोइये जो सर्व देश विशेषे धणियाणी ना भाई नैं सालो न कहिता हुवे कोई देशे कहिता हुवे तो पर सर्वदेशो मां धणियाणी ना भाई सालोज कहै छै तइये ते देश विशेषे धणियाणी ना भाई ने सालो कहै ए लिखवानु स्यूं कारण" (श्रीकुंथु जिनस्तवन बाला०)

"ए तवना नो अर्थ करते अर्थकारके "परवड़े छांहड़ी जिह पड़े" एह पद नु अर्थ पर कहितां पुद्गल नी वड़ाई नी छाया तथा स्व

इच्छा जिहां पडे ते हिज पर समय नो निवास एतले जे इच्छाचारी अशुद्ध अनुमत तेहिज परसमय कहिये। ए अक्षर लिख्यां पिण पर नो तो पुद्गलार्थ थाय परं वड़ शद नु वडाई अर्थ किम सभवै नै वडाई सी वृक्ष छै जेहनी छाया संभवै परं अर्थकर्त्तायें अर्थ करतें कांई थोडु विचार्ग जणाय छै फिरी एक पखी लगि प्रीत नी तुम साथे जगनाथ 'हे जगनाथ तुम साथे एक पखी प्रीत लागे गने नरमी छे। सरागी ते लाख गमें शुद्ध व्यवहारें तुम साथे प्रीत बांधनार छै प्रथम तोए अक्षरार्थ मांहि कोई रहस्यार्थ नथी भासतु फिरी गाथा ना उत्तरदल मां विरोधाभास भासे छै पूर्व दल मां॰ तो परपक्ष सम्बन्धी अर्थ लिख्यु, उत्तर दलें कृपा करी ने तुम्हारा चरण तले हाथे ग्रही ने मुम्ने राखज्यो ए स्व पक्ष स्यु"

(अरनाथ स्त० बाला०)

"अर्थकारके पांचमी गाथा ने बीजे पदे पामर करसाली पामर करसाओ नी अलि पक्ति ते बे पदो नो एक पद करी ने भूंछ एकज अर्थ कयु फिरी दशमी गाथा ने अते त्रीजे पदे दोप निरूपण तिहां एक वार तो दोप नु निरूपण कहिवु ए अर्थ कयु फिरी वा लिखी ने दोप नु निरूपण निर्दूषण थया एहवु अर्थ करी दीधु फिरी आठवीं गाथा ने त्रीजे पदे जगविघन निवारक पद नु जगत ने विघनकारी ते निवारी ने एहवु अर्थ करी दीधु तेनु अर्थ मारी बुद्धि प्रमाणे लिख्यु ते जोज्यो आनंदघन नु आशय आनदघन साथे गयु"

(श्री मल्लि जिन स्त० बाला०)

"अर्थकर्तायें 'जड़ चेतन ए आतम एकज' ए तीजी गाथा नु अर्थ विरुद्ध परं विरुद्धपण न कहाय ए एकज गाथा मां त्रण ठिकाणै

निरपेक्षक वचन लिखी गयुं प्रथम जड़ चेतनेति ★ ★ ★
ए ऊपर लिखवानुं स्युं कार्य ए एक स्थानके लिख्युं परं अन्य
स्थानके लिख्युं तेहनु येतलुंक निगूं पर मोटा"

(मुनिसुव्रत जिन स्त० बाला०)

अर्थकर्त्तायें जे जे स्थानके जे जे विरुद्ध लिख्यु ते ते मारे
लघु मुखे मोटाओना अर्थ नो अपमान येतलोक लिखूं परं अर्थ-
धारके अर्थ करतें अल्प ही विचार्यु नहीं। अर्थकार मां
विचारणा अल्प जणाय छै यथा—सदा सिद्धचक्राय श्रीपाल
राजा—सूत्रकर्त्तायें तो आतम सत्ता विवरण करता इम गूंथ्यो ने
अर्थकारकें अर्थ करता लिख्युं आत्मा नी सत्ता नै कर्त्ता नो
विवरण आत्मा मां तिष्टमान छै ए स्यूं लिख्यूं इहाँ तो आत्म सत्ता
नै विवरण करता एहवु रहस्य कहयु तेथी सांख्य योग बेहुँ आत्म
सत्ता ना विवरण कारक कह्या फिरी एहथी आगल पदमां "लहौ
दुग अंग" तेहनु अर्थकारकें लहो नो लघुसामान्य अर्थ कर्यां
सूत्रकार नो रहस्य लहौ दुग अग ताम ए बे अग लहौ-तामो नाम
पामो फिरी एथी आगल त्रीजी गाथा मां त्रीजो पद लोकालोक
अवलम्बन भजिये एहवु अर्थ लिख्यु लोक ते पंचास्तिकायात्मक
अलोक ते आकाशास्तिकायात्मक वा लोक ते रूपी द्रव्य अने अलोक
ते अरूपी द्रव्य इम लिख्यु ते भेद सौगत मीमांसक कह्या तेमा
पचास्तिकायात्मक लोक मां स्यु भेद अलोक आकाशास्तिकायात्मक
मां स्यु अभेद फिरी वा लिखने लोक अलोक नु अरूपी द्रव्य अर्थ
लिख्युं ते सौगत मीमांसक मां पचास्तिकायात्मक वा रूपी अरूपी
द्रव्य एक तेऊ मा स्यु सम्भव पर लिख्या चल्या गया लिखर्ता

लेखण अटकावणी नहीं एज रहस्य विचार्यु जणाय छै फिरी आगल पिण घणै ठिकाणै इमज लिख्यु छै ने तमे ए टब्बामा अर्थ अने ते टब्बा नो अर्थ जोइ नै विचारस्यो तइये प्रकट जणावस्यैं एमा मैं निर्बद्धिये मारी मूढ मतें लिख्यु छै पर कर्ता नो गमीराशय कर्त्ता समझै" (नमिनाथ स्तवन बाला०)

"अर्थ कारैं अर्थ लिखतें" जिण जोणी तुम ने जोऊ तिण जोणी जोवो राज एक बार मुझनै जोवो. ए पदो ने होय स्थानकै जोवो राज मुझने जोवो राज नो अर्थ लिख्यो तुमे जोवो हे राजन् मुझ नै जोवा नो अर्थ लिख्यौ, जौ पोताना दास भाव मुझ ने जोवो निरखो, आंइ एतलो तो विचारवो हतो ए कविराज राजन् तो अर्थ भिन्न विना पुनरुक्ति दूषण दूषित पद योजना करता थी रह्यो। तेथी मला आंइ तो कांइ विचार्यु हतुं पर बेइ वार जोवो जोवो अर्थ करी ने बेगला थई गया। "फिरी एक गुम्भ घटतु नथी" तिहां गुम्भ ए ठहिरावयो कै परणवा आव्या पिण पाछा फिरी गया ए स्थानो गुम्भ सर्व लोक थी प्रगट माटे फिरी कारण रुपी नो अर्थ लिख्यो प्रभूजीये पोत्ता नो उपादान शुद्ध थावा ने ए प्रभू निमित्त रुप मल्यो सु प्रभू ए मल्यो एवो वचन राजीमती नो छे पर धकाव्ये गयो। (श्री नेमि जिन स्त० बाला०)

चन्द राजा राम की समालोचना :—

अठारहवीं शती मे कवि मोहनविजय एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनकी कतिपय रास—चौपाई स्तवनादि की भाषा कृतियाँ उपलब्ध हैं। गत तीन शताब्दियों (१७ वीं से १९ वीं) में रासों का खूब प्रचार हुआ है। और हजारों की सँख्या मे भाषाकृतियां निर्मित हुई।

व्याख्यान में -प्रातः एवं मध्याह्न अथवा रात्रि के समय श्रोता लोगों के समक्ष रास गाकर कथा विवेचन करने की प्रणाली यति समाज में प्रचलित + थी। सतरहवीं शताब्दी के नैषध काव्य इत्यादि के निर्माता विद्वान आचार्य श्रीजिनराजसूरिका 'अवन्य वचनी' के रूप में देवचन्द्रजी कृत साधु सझाय के टब्बे के अवतरणों में नाम आ चुका है। आपकी शालिभद्र चौपाई जैन समाज में खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। इसकी सचित्र प्रतियां भी पर्याप्त सख्या में उपलब्ध हैं। श्रीमद् ज्ञानसारजी के लिखे अनुसार मोहन-विजय जी ने शालिभद्र चौपाई के प्रतियोगियता में हीन दिखाने के लिए * कल्पित कथा चन्द्र राजा के रास[1] की स० १७८३ में रचना की थी। श्रीमद् ने उस कृति की समालोचना बड़ी ही विद्वतापूर्ण और अपूर्व ढग से लिखी है। इस कृति के छन्द-दोष, सम-विसम में मात्राओं का हीनाधिक्य, असमद्धता, अलकार दोष, उपमेयोपम व स्वपक्ष परपक्ष वचन असबद्धता का निरसन करते हुए हिन्दी के ४१३ दोहों में (जिनमें भी सवैये कुण्डलिये भी हैं) मार्मिक आलोचना की है उन दोहों की पढ़ना प्रारम्भ करने पर छोड़ने की इच्छा नहीं होती,

+ तेरापंथी सम्प्रदाय में आज भी चातुर्मास में रात्रि के समय रास रास गाया जाता है।

* फलतः यह लोक कथा प्रचीन होती है व्रज में भी इस पर काव्य मिलता है देखो व्रज भारती का वर्ष ४ अं० १०।

१ व्यर्थ करन कारण करी, मोहन चंद चरित्र
साल चरित्र रचना भई, साण चडायो शस्त्र। ३।

शालभद्र नी चौपाई रचना हीन दिखावण कारण ए चौपाई रची पर रचनो मां अंतर रवि काच तेज जेतलो छै।

इसमें केवल दोषों का उद्घाटन ही नहीं है अपितु उक्त प्रासंगिक हेतु युक्ति और उपमाओं से युक्त दोहों को यथास्थान डाल कर आलोच्य रास की शोभा में चौगुनी अभिवृद्धि की है। अपने ढंग की यह एक ही रचना है और समालोचना का आदर्श उपस्थित करती है पाठकों की जानकारी के लिए यहां उसके थोड़े से अवतरण दिये जाते हैं।

ढाल २ गाथा १३ वीं तृतीय पाद में—नृप जालिका थई ऊतर्यो नृप्यो पर जालिये राजा किम समावै छिद्र छोटा तेथी बारी गृधवो योग्य हुती पर कवि की योजना मात्र रूढ़क वृत्ति नी छै।

स्वपक्ष पर पक्ष को, न कर सकै कवि यत्न,
सो दूषण अलकार को, कैसे करे प्रयत्न

★ ★ ★

इह दूषण अलकार के, निवरण करे न जाय
इक दो चौ पट दस कहै, कौलों अधिक कहाय

★ ★ ★

जिह तिह चन्द्र चरित्र को, नाम लेत कविराय
चोरी प्रगटै चोर कै, तो हू सौगन खाय

★ ★ ★

इह कवि ऐसे जान है, मेरे जैसी बुद्धि।
होय तबे को ज्यान है, याको शुद्धाशुद्धि
अपनी बुद्धि प्रमान वर, कवि कविता कर ज्ञेत।
देखत कवि छंदादि सब, दूषण भूषन हेत।२।

धर्म वाच वाचक अरथ, उपमा उर उपमेय
स्वपर पक्ष देसांदिमय, वर कवि नर लख लेय। २।
किण में जाऐ फूकड़ो, किण में जाएँ चन्द
को गज घोरा को लरै, घोरा कौन गयन्द
कहां असंभव नो, संभव करै छै।
तूटो दोरो तेह
नौ वरसां नट संग रहे, आमा रहि अवशेष
सोल वरस दोरो निमै, अचरज यही विशेष ? ॥

इस ग्रन्थ में सुभाषित व लोकोक्तियों का भी समावेश करने के साथ साथ उपमाओं को सूचित करने में अपूर्व रचनाकौशल्य व पाण्डित्य का परिचय दिया है।

कविवर बनारसीदास जी के समयसार में आई हुई कतिपय एकान्तवाद व निश्चय नय सम्बन्धी मान्यताओं की आलोचना आपने भाव षट्त्रिंशिका तथा जिनमताश्रित आत्मप्रबोध छत्तीसी मे सृजन सौष्ठव व प्रासाद गुण युक्त कविताओं में की है। जिन्हें पाठकों को इसी ग्रन्थ में पढ़कर स्वयं ज्ञात कर लेना चाहिये।

विद्वत्ता :—

आपश्री अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान और गीतार्थ थे। आपश्री की कृतियों में आगमज्ञान, अनुभवज्ञान व छन्द-अलंकार काव्यादि प्रत्येक विषय का पाण्डित्य झलकता है। यों तो आपकी कृतियां सभी विषय की हैं परन्तु आध्यात्मिक कृतियां मुमुक्षुओं को सन्मार्ग आरूढ़ करने के लिये बड़ी ही उपयोगी है। अपनी रचनाओं

मे आपश्री ने पचासों जगह उदाहरण और अवतरण देकर विषय को स्पष्ट किया है। इन अवतरणों मे जीवविचार, कर्मग्रंथ, चैत्यवंदनभाष्य, समयसार, आवश्यक निर्युक्ति, पुष्पमालाप्रकरण, विशेषावश्यक, आचारांग स्थानांग, भगवतीसूत्र, उत्तराध्ययन, अनुयोगद्वार, प्रश्नव्याकरण, हेमकोश, अभयदेवसूरि कृत महावीर स्तोत्र, सारस्वत व्याकरण, तत्वार्थसूत्र आदि आगम प्रकरणों तथा श्री आनन्दघन जी, देवचन्द्र जी, यशोविजय जी, रूपचन्द्र पाठक, मोहनविजयजी, जिनराजसूरिजी आदि की कृतियों तथा वेदवाक्य, पाणिनी, कालिदास, कबीर, भर्तृहरि इत्यादि के वाक्यों का भी स्थान स्थान पर नामोल्लेखपूर्वक निर्देश किया है। आपने अपनी कृतियों के अवतरण तो पचासों स्थानों पर दिये हैं जिनमें कतिपय उद्धरण तो आपकी कृतियों में प्राप्त हैं, अवशिष्ट "मदुक्तिर्य" या तो प्रासंगिक हैं या वे जिन ग्रन्थों की हैं वे ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इस ग्रन्थ में आये हुए अवतरणों को परिशिष्ट मे देखना चाहिए। आपने स्वयं प्रसंगवश सन्मतितर्क,[१] वास्तुराज[२] प्रभृति ग्रन्थों के परिशीलन का उल्लेख विविध प्रश्नोत्तरादि ग्रन्थों मे किया है।

---

१ सुप्रसिद्धसिद्ध सेन दिवाकर रचित जैन न्यायका यह प्राथमिक ग्रन्थ है। इसपर वादि पंचानन श्री अभयदेवसूरि की महत्वपूर्ण विशिष्ट टीका प्रकाशित हो चुकी है। श्रीमद् ने साधु सज्झाय के टब्बे में इस ग्रन्थ के ५५००० श्लोकों में से ४०० श्लोक स्वय पढ़ने का उल्लेख किया है।

२ भारतीय वास्तुविद्या सम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है। इस

भाषा—

आपका जन्म राजस्थान (रियासत बीकानेर) में होने के कारण आपकी मातृभाषा राजस्थानी थी। आपने अपनी कृतियोंमें राजस्थानी तथा गुजराती मिश्रित राजस्थानी व हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है। जैन कवियों ने अपने ग्रन्थों में गुजराती भाषा का प्रयोग इसीलिए किया है कि गुजरात-मारवाड़ आदि सर्व देशीय श्रावकों व संघको वे रचनाएँ समान रूपसे उपयोगी हो सकें। पूर्वकाल में गुजराती और राजस्थानी में आजकी भांति अधिक अन्तर भी नहीं था फिर भी जैनाचार्यों के लालित्यपूर्ण गुजराती भाषा को प्रमाणभूत मानने का श्रीमद् ने आध्यात्म-गीता के बालावबोध में लिखा है :—

"बालबोध रचना रचुं, गूर्जरधर नी वाण।
पूर्वाचार्ये अति ललित, जाणी करी प्रमाण।"

आपका राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी भाषा पर तो पूरा अधिकार था ही पर व्रज, ग्वालेरी, सिन्धु आदि भाषाओं की भी आपकी अच्छी अभिज्ञता थी। पूरव देश वर्णन छंद में बंगला भाषा के शब्दों का भी निर्देश किया है। अब आपकी कृतियों का भाषाओं की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाता है :—

विषय के छोटे-बड़े लगभग २०० ग्रन्थ पाये जाते हैं। श्रीमद् ने प्रश्नोत्तर ग्रन्थ पृ० ४०५ में वास्तुराज नामक ग्रन्थ के २००० श्लोक स्वयं पढ़ने का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में गृहनिर्माण के १६ प्रकारों का वर्णन है। यह ग्रन्थ किसके रचित व कहाँ प्राप्य है, अन्वेषणीय है।

हिन्दी— छत्तीसी ४, पूरब देश वर्णन छंद, चंद चौपाई समालोचना, प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, कामोद्दीपन, मालापिङ्गल, निहालबावनी, प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य, चौबीसी, ज्ञानसिंह आशीर्वाद, बहुत्तरी।

राजस्थानी—संबोध-अष्टोत्तरी, आत्मनिन्दा, नवपदपूजा, बासठ मार्गणा, हेमदण्डक, आत्मनिन्दा, ज्ञानसिंह आशीर्वाद वचनिका, प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका, विविध प्रश्नोत्तर नं० १-२, पंचसमवायविचार, विहरमानवीसी।

गुजराती—आध्यात्म गीता बालावबोध, साधुसज्झाय बाला०, आनंदघन चौबीसीबाला०, प्रश्नोत्तर ग्रन्थ नं० १ (हिन्दीके प्रश्नोंके उत्तर); आनन्दघन पद बाला० आदि ग्रंथोंमें राजस्थानी मिश्रित हैं, कहीं-कहीं तो शुद्ध राजस्थानी भाषा ही लिखी है।

मुहावरे—आपकी भाषा बड़ी मुहावरेदार थी जिसका यहां थोड़ा नमूना उपस्थित किया जाता है :—

"थे नगर सेठ छौ काई डाढ़ में कांकरौं राख कै लिख्यौ छै। परभव भय सुं निडर थका केई मुम्फ सरीखा इसौ ही कहिता हुसी। बिना सुण्यां जाणीजै छै थे लिखी न हुसी………" "थें आध्यात्म गीता रा बालावबोधमें थोड़ौ लिख्यौ सो ऊपर लिखियौ जिणरो सारौ उत्तर दरावसी। हुंतो परभाव रो रागी हुऔ हूवूं छुं आपरी कृपासुं आछौ हुसी, इसो लिख्यो सो हुं तौ आछौ होयलूं

पछै थानै आछा कर लेस्यूँ पहिलां आपरी दाढ़ी बुमायां पछै शतरया जी री बुमै छै इण रो उत्तर थो छै"। (विविध प्रश्नोत्तर नं २)

"जद फुरमायो तूं अठे सुं विहार रा परिणाम करै छै सो सर्वथाप्रकार विहार कोई करण देवूं नही जद मैं अरज कीनो हूं तो बीकानेर इणहीज कारण आयो छो सो मनै बीस बरस उपरंत अठे हुय गया सो म्हारो चिठो आज तांई कोई नीकलो नहीं, जिणसूं विहार रा परिणाम हुआ छै (जेसलमेर को दिये पत्र से)

रे चेतन तूं थारी उत्पत्ति तो देख! कोई वार मां पणै केई वार पुत्र पणै केई वार पुत्री पणो केई वार स्त्री पणो ऐ थारा नाच तो देख। ठगरी बेटी कह्यो थो हे माताजी हे पिताजी हूं इतरा पाप करूं छुं सो कुण भोगवसी, बेटी करसी सो भोगवसी, तो धिक्कार पडो इण संसार नै × × रे चेतन। तूं कहे हूं, रे तूं कुग ? विष्टा माहिली लट तूं हीज हुवै। (आत्मनिन्दा)

जद मैं कह्यो म्हारै तो मैग रो नाक छै हूं तो 'नमुकार विण व्रत नहीं' इसो पाठ कर देसूं। (भावषट्त्रिंशिका टिप्पण)

यद्यपि आप संस्कृत प्राकृतादि भाषाओं के भी प्रकाण्ड विद्वान थे पर जानतिक उपकार की दृष्टि से आपने सारे ग्रन्थ देश्य भाषाओं में ही लिखे। संस्कृत मे रचित केवल दादासाहब की दो पूजाएँ तथा माघवसिंह आशीर्वादाष्टक उपलब्ध हैं।

भक्ति व कवित्व—

श्रीमद् का हृदय बाल्यकाल से ही जिनेश्वर भगवान के प्रति भक्ति से ओतप्रोत था। चौबीसी, बीसी तथा स्तवनादि पदों

मे आपने बड़े ही मार्मिक रूप मे भक्ति-उद्गार प्रगट किये हैं। कहीं दार्शनिक विचार तो कहीं तत्वज्ञान और कहीं उत्प्रेक्षाएं व भावावेश मे वक्रोक्ति तथा उपालम्भ तो कहीं आत्मानुभव तथा शान्त, वैराग्य और करुण रस की भागीरथी बहायी है। बहुत्तरी व विहरमान बीसी मे कहीं मतवाद स्थिति, कहीं आत्मदशा, कहीं रहस्यानुभव, तो कहीं सरल प्रभुभक्ति तो कहीं उपमाओ की छटा का निदर्शन किया है। उदाहरण कहांतक दिये जाय, पाठकों से अनुरोध है कि इसी ग्रन्थ मे प्रकाशित कृतियों को आत्मसात कर सैद्धान्तिक व आत्मानुभव द्वारा निकाले हुए नवनीत का रसास्वादन करें।

विचारधरा—

श्रीमद् को अपने दीर्घजीवन में ज्ञानानुभव द्वारा जो अनुभूति मिली, आपकी जीवनचर्या एक विशेष प्रकारसे खिल उठी। आपने जो कुछ लिखा वह परिष्कृत मस्तिष्क और मजे हुए ठोस विचारो का परिणाम था। वाद-विवाद, क्रिया कलाप और नाना प्रवृत्तियों के विषय मे विचार करने से आपकी आत्मदशा बहुत ही उच्च श्रेणी की विदित होती है। वर्तमानकाल मे शुद्ध चरित्र को अपेक्षाकृत दुष्प्राप्य मानते हुए भी आप क्रियाओं को एक आवश्यक अङ्ग मानते थे। अन्ध-क्रिया और पङ्गुज्ञान के समन्वय से मोक्षमार्ग की सुलभता, निश्चय व्यवहार मार्ग, मथानीकी डोरके सदृश खींचने व ढीला छोडनेमे मक्खन प्राप्ति, क्रिया त्याग मे आकाश मे रहते हुए पतंग की डोर तोड़ने सदृश, वंचक

चारित्र का परिहार, भावविशुद्धि इत्यादि विषयों पर छत्तीसीयां पद और बालावबोधादि आपकी सभी कृतियां प्रेक्षणीय हैं।

लोकोक्तियों का प्रयोग

श्रीमद् ने विषय का स्पष्ट समझाने व हेतु युक्ति व प्रमाणादि से प्रत्यक्षीकरण के लिये अपने ग्रंथों में लोकोक्तियों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। संबोध अष्टोत्तरी तथा प्रस्ताविक अष्टोत्तरी इस विषय के ज्वलन्त उदाहरण हैं। पाठकों को स्वयं इन ग्रंथों का रसास्वादन करना चाहिये। चंद चौपाई समालोचना भी इस विषय की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है। आनन्दघन चौवीसी तथा दूसरे ग्रन्थों से कुछ लोकोक्तियां उद्धृत की जाती हैं :—

१ फिरे ते चरै, बाध्यो भूख्यां मरै, २ प्राणे प्रीत-न थाय, ३ एकण हत्थ न वज्जइ, दो हत्थां ताली, ४ आस करियै तेनो आसंगो स्यो, ५ घरना छइया घरटी चाटै, पाडोसन नै पेडा। ६ पाछल वाही पीठे लागे, ७ रागनी नुं वाय सरखुं ही मलार।

यवनोक्ति —रीता भर भर्या दुलकाव, अनभरिया नुं फेर भरै।
खुदाके हुकुम बिगर दरखतका पत्ता भी हिलने न पावै।
दरखत का पत्ता भी तावे हुकम के है क्या मकदूर विगर हुकम हिलै।

सिन्धु देशीय—"दिल अंदर दरियाव, संघी लग्गो छयों फिरै
डुब्बी मार मंझाहि, मंझाही माणक लहै। १।
डुब्बी मारण दां खडी सत्रां लक्खां करन्न
ज्यांरो हीर न हिब्भगो डुब्बी से मारन्न। २।"

यत्नोक्ति—हैवाने नातर् मनुष्य हैवाने मुवलक् पसू लाजमत्

बिहरमान बीसी मे भी इसी प्रकार कहावतों का प्रयोग किया है। जैसे—

१ "आसंगो किम कीजिये रे, करियै जेहनी आस" (युगमंधर स्तवन)

२ "जिम गहिली नो पहिरणो हो" (सुजातजिन स्तवन)

३ "दूर दियंती गायनी, लात सहू सहै" (चन्द्रबाहु स्तवन)

४ जिम भोजै कामली रे, तिम तिम भारी होय (अजितवीर्य स्तवन)

५ ज्ञानसार चे वार चढै नहीं काठ की रे (नेमजिन स्तवन)

चंद चौपाई समालोचना के भी थोड़े से उदाहरण देखिये.—

१ "काला छा सो उडि गया, धवला बैठा आय।
तुळसीदास गढ पालटै, जरा पहुंनो आय।" १।

२ "कनक कचोले बिन कछु, सिंहनी पय न रहाय"

३ "पतंग वाला विणया"

४ बच्चों का खेल :—सूरज देवता तावडियोइ काढ रे
तावड़ियोइ काढ, थारा बालकिया ठंढा मरै

५ छोटा दूल्हा परणतै, लग्नो होत सुहाग।"

६ 'को सुख को दुख देत है, पवन देत झकझोर
चलमै सुलमै आपही, धजा पवन के जोर। १।

बीकानेर के भण्डाण परगने के तरबूजे—मतीरे अद्वितीय स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार किया है :—

७ "को जाणे अंहाण के, मीठे होत मतीर।
जो मलयाचल वसत सो, जाणत सुरभि समीर।"
पशुओं की बोली जानने के विषय में प्रचलित लोक कथा:—

८ "तरु छींका चूंहा जले, खग पट मास पियंत
जन्मत सिसु घूंटी दियै, विहग थाण सममंत"
संबोधअष्टोत्तरी आदि कृतिया तो राजिया के दोहों की भांति स्वयं ही सुभाषित रूप हैं।

रचनायें

श्रीमद् ने बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक अपना जीवन गुरुकुलवास में विताया था। इनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुपरंपरा-गत विद्वानों के सत्वावधान में हुई थी। स्वकीय प्रतिभा और तत्त्वरुचि मिल जाने से सोने में सुगंध जैसा संयोग हो गया। आपने सभी विषय के ग्रन्थों व शास्त्रों का अवगाहन किया था। अतः आप एक सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान तैयार हो गये। आपने जिस विषय को लिया अधिकार पूर्वक लेखनी चलायी। आपके ग्रन्थों के परिशीलन से आपके गहरे शास्त्रज्ञान, काव्य, कोश, छंद, अलंकार, व्याकरण, दर्शन, न्याय आदि सभी विषयों के सफलवेत्ता और पारगामी होने का सहज परिचय मिलता है। अब आपकी कृतियों का संक्षेप में परिचय कराया जाता है।

भक्ति काव्य

कृति	रचनाकाल		प्रकाशित पृष्ठ
(१) चौवीसी—	सं० १८७५ मार्गशीर्ष सुदि १५	वीकानेर	१-१२
(२) विहरमानवीसी—	सं०१८७८ कार्त्तिक शुक्ला १	वीकानेर	१३-३०
(३) स्तवनादि भक्ति पद—	संख्या ३०		११३-१३३
(४) शत्रुंजय स्तवन—	सं०१८६६ फाल्गुन वदि १४		१३५-१३६
(५) दादासाहब के ७ स्तवन—			१३४
(६) पार्श्वनाथ—महावीर स्तवन (आनन्दघन चौवीसी) वालाववोध	सं० १८६६		

शास्त्रीयविचार गर्भित

(१) जीवविचार स्तवन सं० १८६१ माघ जयपुर अभयरत्नसार[1]

(२) नवतत्त्व स्तवन सं० १८६१ माघ वदि १३ चन्द्रवार जयपुर „

(३) दण्डक स्तवन सं० १८६१ पौष शुक्ला ७ जयपुर „

(४) हेमदण्डक सं० १८६२ मार्गशीर्ष कृष्णा १४

(५) वासठ मार्गणा यन्त्र रचना स्तवन सं० १८६२ चैत्र शुक्ला ८ गाथा ११२

(६) ४७ वोलगर्भित चौवीसी सं० १८५८ दीपावली (११५१ स्तवन रत्न मञ्जूषा)

---

[1] यह ग्रन्थ हमारी ओर से सं० १९८३ में प्रकाशित हुआ था।

दार्शनिक

(१) षट दर्शन समुच्चय भाषा:—यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है. एक खरड़े में—जिसमें ४० योगर्भित चौबीसी के स्तवन व पद भी हैं—निम्नोक्त अंतिम काव्य मिले हैं :—

चन्द्रायणो —बुद्ध नयाइक सांख्य जैन दरसन छहै,
जैमनीय वैशेष मिलै ते षट लहै
इन षट हू की भिन्न भिन्न वरनन करै
गिरवानी ते ज्ञानसार भाषा धरै ॥ १ ॥

दोहा :— गिरवानी भाषानतें, बड़ी बीच तें बीच।
पून्युं अम्मावस कहां, उजल जल अरु(किंह) कीच ।२।
कोय कहैगो वावरो, कोय कहैगो मूढ़। *
इसे विसम सिद्धंत को तूं क्या जाणै गूढ़ ॥ ३ ॥
बुद्ध सुतीक्षन सारते, सुगुर छेद कर दीन
दोरा परज्यों मैं गतिकरी, कौन नवाई कीन ॥ ४ ॥
नयमग सांध विचारियै, अति भीसम नयवाद
आगम की गुरुगम नहीं, अति मोटो विषवाद ॥५॥
तरक विचार विचारियै, वाद विवाद अभिवाद
अनुभव तै रस पीजियै, षट हू को इक स्वाद ॥६॥

प्रस्ताविक

१ संबोध अष्टोत्तरी सं०१८५८ ज्येष्ठ सुदी ३ दोहा १०८ पृ० १९६३
२ प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सं० १८८० बीकानेर „ ११२ पृ० २०५

३ गूढ़ बावनी सं० १८८१ ,, ५४ पृ० २६३

इसका दूसरा नाम निहालबावनी है। पं० वीरचंद के शिष्य निहालचंद को उद्देश्य कर इसकी रचना हुई है। इसमें गूढ़ार्थ प्रहेलिकाएं गुंफित की गई हैं जिनका उत्तर फुटनोट में लिख दिया गया है। ये पहेलिकाएं बौद्धिक विकास और मनोरञ्जन का उपयोगी साधन है।

छत्तीसी, बहुत्तरी आदि

१ आत्म-प्रबोध छत्तीसी पद्य ३६ पृ० १५५
२ मति-प्रबोध छत्तीसी गाथा ३७ पृ० १७२
३ भाव षट्त्रिंशिका सं० १८६५ का० सु० १
किशनगढ़ गाथा ३६ पृ० १४०
४ चारित्र छत्तीसी गाथा ३६ पृ० १६५
५ बहुत्तरी पद ७४ पृ० ३१ से ७६
६ आध्यात्मिक पद संग्रह पद ३७ पृ० ६५ से ११२

गद्य रचनाएं

१ आनन्दघन चौबीसी बालावबोध
२ आध्यात्म गीता बालावबोध सं० १८८० बीकानेर पृ० २८१से३५६
३ साधुसमाय (देवचन्द्रजी कृत) बालावबोध प्रकाशित
श्रीमद् देवचन्द्र भाग १
४ यशोविजय कृत तत्त्वार्थ गीत बालावबोध पृ० १८०
५ जिनमत व्यवस्था गीत बालावबोध पृ० ८० से ६४

पूजा साहित्य

छंद विज्ञान

मालापिङ्गल—पिङ्गल के छंद विज्ञान पर उदाहरण सहित १५४ पद्योंमें यह ग्रन्थ रचकर सं० १८७६ फाल्गुन कृष्ण ६ को बीकानेरमें पूर्ण किया। इसकी रचना रूपदीप, वृत्तरत्नाकर, चिन्तामणि आदि छन्द ग्रन्थों के आधार से हुई है। नवकरवाली (माला) के १०८ मणकों और मेरु के मिलाकर कुल ११० छन्दों की रचना होने से इस ग्रन्थ का नाम भी 'मालापिङ्गल' रखा गया है।

आदि-दोहा—श्री अरिहंत सुसिद्ध पद, आचारज उवझाय।
सरव लोक के साधु कुं, प्रणमुं श्री गुरु पाय ॥१॥
प्राकृत तें भाषा करुं, मालापिंगल नाम।
सुखै बोध बालक लहै, परसम को नहिं काम ॥२॥

असंख्यात सागर सबे, उपमा केसैं होय ।
श्रुत पूरव चवदे सकल, है अन्त इह लोय ॥३॥
जो विद्या सब जगत की, इनमें रही मिलाय ।
नदीनाथ के पेट में, ज्यों सब नदी समाय ॥४॥
पिंगल विद्या सब प्रगट, नागराय ने कीन ।
लोग बहिर बुद्धे कहै, पुन विचार अति खीन ॥५॥
सेषनाग वाणी रहित, फुनि विवेक तें हीन ।
लघु दीरघ गण अगण की, संकलना किम कीन ॥६॥
उरपर दुजिहा जात में सेषनाग है मुख्य ।
छंद शास्त्र रचना रचै, सो नहिं निपुण मनुष्य ॥७॥
ए सब कल्पित बात हैं, विद्या चवद निधान ।
पूरव है उनतें भयो, षट भाषा को ज्ञान ॥८॥

अंत—आदि मध्य मंगल करण, संपूरण के हेत ।
अंतिम मंगल हर्ष कौं, कारण कवि संकेत ॥ १४४ ॥
जो दधि मंथन की क्रिया, ताको तोलूं खेद ।
माखन निकसें मथन को, उद्यम खेद निषेध ॥ १४५ ॥
परि समाप्ति ग्रंथे भई, इष्ट कृपा आयास ।
नौका बिन दधि तिरनको, को करि सकै प्रयास ॥ १४७ ॥
जंबूद्वीपे मेर सम, अवरन को उतुंग ।
त्युं शरीरमें गच्छ सकल, खरतर गच्छ उतमंग ॥ १४७ ॥
गीर्वाणवाणी सारदा, मुख ते भई प्रगट्ट ।
याते खरतर गच्छ में, विद्या को आमंट्ट ॥ १४८ ॥

ताके शिक्षा समान विभु, श्रीजिनलाभसूरीश ।
ज्ञानसार भाषा रची रत्नराज गनि सीस ॥ १४६ ॥
चौपाई—संवत कायँ फिर भय देय, प्रवचन मायँ सिद्धसिलेय ।
फागुन नवमी ऊजल पक्ष, कीनौ लक्षण लक्ष विपक्ष॥१५०॥
रूपदीपते वावन किये, वृत्तरत्न ते केते लिए ।
चिंतामणि तें वेद देख, रचना कीनी कवि मति पेख ॥१५१॥
नहिं प्रस्तारन कर उद्दिष्ट, मेरु मर्कटिन कियो नष्ट ।
आधुन कालीन पंडित लोक, ग्रंथ कठिन लखि देहैं धोक॥१५२॥
दोहा—इक सौ आठ दो मेरके, वृत्त किए मति मंद ।
यातें याकुं भाषियौ, नामै माला छंद ॥ १५३ ॥
॥ इति मालापिंगल छंद संपूर्णम् ॥

समालोचना :—

चंद चौपाई समालोचना—कवि मोहनविजय की चन्द राजा चौपाई पर विशद आलोचना लिखकर श्रीमद् ने हिन्दी साहित्य की बड़ी भारी सेवा की है । हिन्दी में संभवतः इस दिशा में यह पहला प्रयत्न था। सं० १८७७ मिती चैत्र कृष्णा २ को बीकानेर में ४१३ पद्यों में इसकी रचना हुई । इसका कुछ विवरण 'समालोचक' रूप में श्रीमद् का परिचय कराते समय दिया जा चुका है। यहां ग्रन्थ के आदि और अन्तिम भाग उद्धृत किये जाते हैं ।

आदि—ए निश्चै निच्चै करौ, लखि रचना कौ मांभ ।
छंद अलंकारै निपुण, नहिं मोहन कविराज ॥ १ ॥

दोहा छंदै विसम पद, कही तीन दस मात।
सम में ग्यारै हू धरै, छंद गिरंथै क्षात ॥ २ ॥
सो तौ पहिलै ही पढै, मात रची दो बार।
अलंकार दूषण लिखूं, लिखत चढ़त विस्तार ॥ ३ ॥
प्राकृत विद्या में निपुण, नहिं याको यह हेत।
प्रथम शब्द दो थानकै, एक पढम कर देत ॥ ४ ॥
ऐसैं वेते थानके, मात्रा अधिकी देख।
एक थानकै लिख दियौ, कौलौं लिखूं अशेष ॥ ५ ॥

अन्त—घट विनघटनी घटतता, घटता विना घटत्त।
अन्योन्यें असंबद्धता, त्यौंही चंद चरित्त ॥ १ ॥
यामें तीनूं, मधुरता, रचना वचन संबन्ध।
मुगध लोक याते कहै, सबतें मिष्ट प्रवन्ध ॥ २ ॥
कविता कविता शास्त्र के, सम्मत भूपण देख।
अलंकार दूसण लखै, सबते अयं विशेप ॥ ३ ॥
हीनाधिक मात्रा पढें, लिखत लेख को दोष।
अंतै गुरु मात्रा बधै, सो शास्त्रे निरदोप ॥ १ ॥
पद आदें अंतै गुरु, तैसे ही लघु होय।
हीनाधिक मात्रा वहै, लहु गुरु मानो सोय ॥१॥ इत्यादिपाठः
नर कवि कृत कविता बहुत, नई करन को हेत।
परभय पढुंता जोजना, बुद्ध परीक्षा देत ॥ १ ॥
दूषण सब कवितानि के, भूसन विवुध लहंत।
करवर बदनें मुद्रत तउ, नयनहीन न लखंत ॥ २ ॥

नां कवि को निंदा करो, ना कछु राखो कान ।
कवि कृत कविता शास्त्र के, सम्मत लिखो सर्वांन ॥ २ ॥
दोहात्रिक दश च्यार से, प्रस्तावोक नवीन ।
खरतर भट्टारक गच्छे, ग्यानसार लिख दीन ॥ ३ ॥
भय भय पवयण माय सिध, थान वाम लिख दोय ।
चैत किसन तृतीया दिनें, संपूरण रस पोय ॥ ४ ॥

इति श्रीचंद चरित्रं संपूर्णं । संवन्नवलब्धि कान्यष्टादश शवानि गमिते मासोत्तम मासे चैत्र कृष्णैकादश्यांतिथौ मार्त्तण्डवारे श्रीमद्बृहत्खरतर गच्छे पं० आणंदविनय मुनिस्तच्छिष्य पं० लक्ष्मी-धीर मुनिस्तस्य पठनार्थं मिदंलि । श्री । श्री लूणकरणसर मध्ये ॥

इस प्रति की पत्र संख्या ८७ और भीनासर के यति उ० श्री सुमेरमलजी के संग्रह में है । अक्षर सुन्दर व सुवाच्य हैं । ढालों के किनारे पर उस राग की अन्यान्य ढालों के उदाहरण हैं । अनेक स्थानों में कठिन शब्दों पर टिप्पणी भी लिखी हुई हैं । ज्ञानसारजी के दोहे आदि मूल के चारों ओर=संकेतों के साथ लिखे हुए हैं तथा पंक्ति व गाथा का भी निर्देश किया हुआ है ।

अलंकारिक वर्णन व वचनिकाएँ

प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका—यह कृति जयपुर नरेश प्रतापसिंह के वर्णन में ३२ दोहों में चित्रकाव्य रूप में रचा है । अन्त में चन्द्रायणा छंद दिये हैं । इसी की वचनिका बालावबोध टीका बड़ी मधुर राजस्थानी भाषा में लिखी है ।

कामोद्दीपन—यह ग्रन्थ वि० सं० १८५६ मिती चैत्र शुक्ला ३ को जयपुर नरेश प्रतापसिंह की प्रशंसा में बनाया गया था। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है, उपमालङ्कारों की छटा और कवि की प्रतिभा पद-पद पर झलकती है। कामदेव के साथ महाराज की तुलना करते हुए श्रीमद् ने इसका नाम भी कामोद्दीपन रखा है। इसमें दोहा व सवैयादि कुल मिला कर १७७ पद्य हैं।

आदि—तारिन में चन्द जैसे ग्रहगन दिनंद तैसे,
मणिनि में मणिंद त्यों गिरिन गिरिंदयू।
सुर में सुरिन्द महाराज राज वृन्द हू में,
माधवेश नन्द सुख सुरतरु सुकन्द यू।
अरि करि करिंद भूम भार कौं फणिन्द मनौ
जगत को वन्द सूर तेज तें न मन्द यू।
आशय समंद इन्दु सौं भुंद ज्याकौ
मदन कर गोविन्द प्रतपै प्रताप नर इन्द यू॥१॥

अन्तः—संवत् सम्बन्धी दोहा :—

रस सर अरु गज इन्दु फुनि, माधव मास उदार।
सुकल तीज तिथ तीज दिन, जयपुर नगर मझार॥७२॥
बड़ खरतर जिनलाभ के, शिष्य रत्न गणि राज।
ज्ञानसार मुनि मन्दमति, आमद प्रेरण काज॥७३॥
ग्रन्थ करौ पट रस भरौ, बरनन मदन अखंड।

जसु माधुरिता तें जगति, खंड खंड भई खण्ड ।७४।
सुघरनि अन मन रस दिये, रस भोगनि सहकार ।
मदन उद्दीपन ग्रन्थ यह, रच्यौ रूच्यौ श्रीकार ।७५।
जग करता करतार है, यह कवि वचन विलास ।
पै या मति यो खण्ड हैं, हैं हग ताके दास ।७६।

इति श्रीमद् बृहत्खरतर गच्छे पं । प्र । श्री ज्ञानसार जिद्विरचितं कामोद्दीपन ग्रन्थ सम्पूर्णम् । संवत् १८८० वै० सु० ३ श्री बीकानेरे लि० । पं० । लक्ष्मीविलास ।

पूरब देश वर्णन छन्द—यह ग्रन्थ १३३ पद्यों में है। डेढ़सौ वर्ष पूर्व बंगाल का, विशेष कर मुर्शिदाबाद जिले का वर्णन फिल्म की तरह इस कृति में दिखाकर कवि ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा और वर्णन शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। इसका साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्त्व जानने के लिए पाठकोंको प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमें प्रकाशित इस कृति का स्वयं पठन करना चाहिए।

प्रकाशित कृतियां

श्रीमद् की कृतियों में इस ग्रन्थके अतिरिक्त कतिपय रचनाएँ अन्यत्र प्रकाशित हैं। जिनमें १ जीवविचार स्त० २ नवतत्त्व स्त० ३ दण्डक स्तवन हमारी ओरसे प्रकाशित अभयरत्नसार में, ४ देवचन्द्रजी कृत साधु सज्झाय टबा 'श्रीमद् देवचन्द्र भाग २ में

तथा ५ आत्मनिन्दा, पंचप्रतिक्रमण की पुस्तकोंमें मूल तथा इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हैं। दादासाहब की पूजा, श्री जिनदत्तसूरि चरित्र (उत्तरार्द्ध) व जिन-पूजा-महोदधि में प्रकाशित है। श्रीआनन्दघनजी कृत चौवीसी के बालावबोध के कई संस्करण भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं।

आनन्दघन चौबीसी बालावबोध को श्रावक भीमसी माणेक ने प्रकाशित तो किया है पर वह संस्करण सर्वथा भ्रष्ट और परिवर्तित रूप से प्रकाशित हुआ है। श्रीमद् ने बालावबोध की भाषा राजस्थानी मिश्रित लिखने के साथ साथ इसमें श्री आनंदघन जी आदि के पदों के अवतरण, प्रसंगानुसार भावों के स्पष्टीकरणके हेतु स्वनिर्मित दोहोंको "मदुक्ति" की संज्ञा से संयुक्त देकर कृति को विशिष्ट चमत्कार पूर्ण बना दिया है। इसमें श्रीमद्ने आनन्दघनजी, जिनराजसूरि, यशोविजयजी, मोहनविजयजी, देवचन्द्रजी, कालिदास और कबीर की उक्तियों के अवतरण उद्धृत किये हैं जिससे साहित्यकी दृष्टिसे भी इसके महत्वमें अभिवृद्धि हुई है पर प्रकाशक महाशय ने उन सुमधुर उक्तियों को निकाल कर कृति का प्राण हरण कर लिया है तथा भाषा को भी वर्त्तमान गुजराती का रूप दे दिया है। जिससे तत्कालीन भाषा, लेखनपद्धति और आत्मानुभव तथा तलस्पर्शी वचनों के आस्वादन से पाठकगण वञ्चित रह गये हैं। श्रीमद्ने जहाँ भी ज्ञानविमलसूरिजी के बालावबोध की मार्मिक समालोचना की है, प्रकाशक महोदय ने उन वाक्यों को सर्वथा निकाल

देने में ही अपनी सफलता समझते हैं। इससे श्रीमद् की समालोचन पद्धति और यथार्थ स्पष्टवादिता अन्धकारमें अन्तर्हित हो जाती है। प्रकरण रत्नाकर भाग १ की प्रस्तावना में प्रकाशक महोदय लिखते हैं कि :—

"चौथो ग्रन्थ श्री आनन्दघन जी महाराज कृत चोवीसी नो छे अने ते बालावबोध सहित छे। अध्यात्म ज्ञान ना शिखर ऊपर विराजमान थएला श्री आनन्दघनजी महाराज अने तेमनी चौवीसी जगप्रसिद्ध छे। तेमना अध्यात्म ज्ञान विषे अत्रे विशेष लखवानी काईपण आवश्यकता नथी। वली साक्षर पुरुषो ज्यारे तेमनी चौवीसी वांचे छे तथा तेनु अध्ययन करे छे त्यारे वरत तेमना अन्तःकरण मा अध्यात्म ज्ञान नो विलास प्रगट थाय छे चौवीसी ऊपर ने बालावबोध प्राचीन गुजराती भाषा मां लखायेलो होवा थी तेनो आधुनिक गुजराती भाषा मां सुधरावी अमे आ ग्रन्थ मा छापेलो छे। कारण के ते प्रमाणे करवानी सूचना अमने अनेक अभ्यासिओ तरफ थी थयेली हती। ते सूचना अमने वास्तविक लागवा थी उपकार नो हेतु जाणी तेम करेल छे अने ते प्रमाणे करता बालावबोध कर्ता बतावेलो आशय लेश मात्र पण दूर करवा मां आवेलो नथी जेथी अभ्यासिओ ने हवे ज्ञान नो उत्तम प्रकारे लाभ थवा संभव छे।

२२ स्तवनों के अर्थ पूर्ण करते हुए प्रकाशक लिखते हैं कि— इति श्रीआनन्दघनजी कृत बावीसी। आ बावीस स्तवन नो बालावबोध ज्ञानसारजीए कृष्णगढ़ मां रही संवत् १८६६ ना

भादरवा सुद १४ ना रोज सम्पूर्ण कर्यो ते प्रमाणे आशय लइ छापतां भूल थई होय ते वांचनारे सुधारी वांचवु'। वळी बीजी प्रत ऊपर आनन्दघनजी ना छेल्ला वे स्तवनो हता ते पोतानाज करेला हता अने तेनी ऊपर ज्ञानविमलसूरिए बालावबोध कर्यो छे ते हवी पछी छाप्या छे "ध्रुवपद रामी हो," "वीर जिणेसर चरणे लागुं" इत्यादि। अंत—इतिश्री महावीर जिन स्तवनः श्री ज्ञानविमलसूरि जी ए बालावबोध† चोवीसे स्तवनो ऊपर कर्यो छे। देवचन्द जी ए कर्यो नथी अहीं ज्ञानसारजी नो बालावबोध छाप्यो छे अने हवे पछी ना तेमनाज वे स्तवनो छापेला छे—पासजिन ताहरा रूप नुं, चरम जिनेसर।

प्रकाशक महोदय ने बालावबोध कर्ता की प्रशस्ति भी प्रकाशित नहीं की। सम्भव है ज्ञानविमलसूरिजी पर की हुई स्पष्ट आलोचना ने प्रकाशक और अभ्यासी महोदय को आलोचना का अंश निकाल देने को प्रेरित किया हो।

प्रकाशक महाशय ने जिन दो स्तवनों को आनन्दघन जी का सूचित किया है वे श्री ज्ञानसारजी के बालावबोध में लिखे अनुसार श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत प्रमाणित होते हैं—

† यह बालावबोध भी परिवर्त्तित रूप से प्रकाशित हुआ है। जैन धर्म प्रसारक सभा द्वारा "आनंदघनजी कृत चौबीसी अर्थयुक्त तथा बीस स्थानक तप विधि नामक पुस्तक में छपी है। इसमें ज्ञानविमलसूरिजी कृत चौबीसी बाला० लिखा है पर वास्तव में वह माणकचन्द घेला भाई कृत ही है। सभा के प्रकाशकोंने ज्ञानविमलसूरि का नाम न मालूम कहां से लिख डाला है।

आनंदघन चौबीसी के २२ स्तवनों पर यशोविजयजी के बालावबोध रचने का उल्लेख मिलता है पर वह अलभ्य है।

"चवदमा गुणठाणा ना अंत थी सिद्ध नै विसै उजागर अथरया होय जिम देवचन्द सवेगिये, आनन्दघन नो चोवीसी महावीरजी री तवना में कह्यु" —"आनन्दघन प्रभु जागै"
(मल्लि जिन स्तवन बाला० मे)

"दोय तवन आनन्दघन नाम ना अहमदावाद ना भंडार मांहि थी, दोय ज्ञानविमलसूरि दोय स्तवन देवचन्द सवेगी कृत देखी ने मारी मति तवन रचना करवानें उल्लसी इति सटंक
[पार्श्वप्रभु स्त० बाला०]

"आनन्दघन प्रभु जागै" पद जो देवचन्द्रजी कृत ऊपर सूचित किया है वह ठीक आनन्दघन नामात्मक स्तवन मे प्राप्त होता है अत यह कृति श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत होनी चाहिए। श्रीआनन्दघनजी ने यथासम्भव २२ स्तवन ही रचे होंगे। व महावीर स्तवन जो जो पूर्ति स्वरूप रचे गये उपलब्ध है, उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

पार्श्वनाथ स्तवन

आदि पद प्रकाशक—

१ प्रणमु पदपकज पार्श्वना गा० ७ टवासह स० माणकचद घेलाभाई (आध्यात्मोपनिपद्) जैनयुग वर्ष २ मे भी

२ पासजिनताहरा रूपनु गा ७ ज्ञानसार टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग १

३ ध्रुवपद रामी हो स्वामी माहरा गा० ८ देवचंद्रजी टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग १ माणेकचद घेलाभाई

४ पास प्रभु प्रणमुं सिरनामी ज्ञानविमल टबासह प्र० जैनयुग वर्ष २ पृ०-१४६

स्तवन नं० ३ का टबा गा० ७ का छपा है पर हस्तलिखित प्रति में गा० ८ देखी गयी है।

महावीर स्तवन

१ वीर जिनेसर परमेसर जयो गा० ७ टबासह प्र० माणकचंद घेलाभाई टबासह प्र० जैन युग वर्ष २ कपूरविजयजी टबा०
२ चरम जिनेसर विगत स्वरूपनुं रे गा० ७ ज्ञानसार टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग-१
३ वीर जिन चरणे लागुं, देवचंद्र टबासह " "
४ करुणा कल्पलता श्रीमहावीर नो रे ज्ञानविमल टबासह जैन युग वर्ष २ पृ० १४६

श्रीमद् के बालावबोध को श्रा० फतेरभाई भगवानदास ने भी प्रकाशित किया है पर वह भी भीमसी माणक के अनुसार ही है। तथा नवतत्व स्तवन 'नवतत्व साहित्य संग्रह' में भी प्रकाशित हुआ है पर उसे भी गुजराती भाषा के साचे में ढाल दिया गया है। आपके कई पद कई संग्रह ग्रन्थों में प्रकाशित हैं।

भ्रान्तिपूर्ण कृतियें

श्रावक भीमसी माणक महाशय ने जसविलास, विनयविलास और ज्ञानविलास आदि का संग्रह ग्रंथ प्रकाशित किया है जिसकी प्रस्तावना में ज्ञानानन्दजी के रचित ज्ञानविलास को श्रीमद् ज्ञानसारजी कृत सूचित किया है।

इसी के आधार से हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास पृ० ७८ में श्रीमद्के विषयमें पं० नाथूरामजी प्रेमीने इस प्रकार लिखा है:—

८ ज्ञानसार या ज्ञानानन्द—"आप एक श्वेताम्बर साधु थे। संवत् १८६६ तक आप जीवित रहे हैं। आप अपने आप में मस्त रहते थे और लोगों से बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कहते हैं कि आप कभी कभी अहमदाबाद के एक श्मसान में पड़े रहते थे। सज्झायपद अने स्तवन संग्रह नाम के संग्रह में ज्ञानविलास और संयमतरंग नाम से दो हिन्दी पद संग्रह छपे हैं जिनमें क्रमसे ७५ और ३७ पद हैं, रचना अच्छी है। आपने आनन्दघन की चौवीसी पर एक उत्तम गुजराती टीका लिखी जो छप चुकी है। इससे आपके गहरे आत्मानुभव का पता लगता है।"

प्रेमीजी के उपर्युक्त कथन में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं, श्रीमद् के कभी भी अहमदाबाद के श्मसानों में रहने का प्रमाण नहीं देखा गया। हां, बीकानेर के श्मसानों के निकट रहना कहा जा सकता है। ज्ञानसार और ज्ञानानन्द दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे, किन्तु ज्ञानानन्दजी के पदों को ज्ञानसारजी कृत बताने की भ्रमणा के उत्पादक श्रावक भीमसी माणक हैं। प्रेमी जी ने तो उनका अनुकरण मात्र किया है। वस्तुतः ज्ञानविलास में ज्ञानसारजी का एक भी पद नहीं है। ज्ञानानन्दजी काशी वाले श्रीचुन्नीजी (चारित्रनंदि) महाराज के शिष्य और सुप्रसिद्ध श्री चिदानन्दजी महाराज के गुरुभ्राता थे। ज्ञानानन्दजी के सम्बन्ध में हमारा लेख 'जैन सत्य प्रकाश' में प्रकाशित हो चुका है।

आनदघन बहोत्तरी टवो—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी महाराज ने आनंदघन पद संग्रह भावार्थ के पृ० १५६ मे श्रीमद् ज्ञानसारजी की इस कृति का इस प्रकार उल्लेख किया है।

"श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी के जेमणे स० १८६६ ना भादरवा सुदि १४ ना दिवसे श्रीमद् आनदघनजी नी बहोतरी ऊपर टबो पूर्यो छे। तेमणे आनदघनजी साधु वेष धारण करता हता एम स्पष्ट टबा मा दर्शाव्यु छे। श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी पण बीकानेर ना श्मसान पासे झूपडी मा साधु ना वेषे रहता हता अने साधु ना वेषे पच महाव्रत नी आराधना करता हता।"

यह उल्लेख भी स्मृति दोषसे ही हुआ विदित होता है क्योकि उपर्युक्त संवत् आनन्दघन चौबीसी बालावबोध का है। बहुत्तरी के तो कुछ ही पदों पर श्रीमद् का बालावबोध उपलब्ध है जो इसी ग्रंथ के पृ० २२४ से २६२ मे मुद्रित है।

ज्ञानसारजी का व्यक्तित्व महान् था, सारी उन्नीसवीं शताब्दी उनकी जीवन प्रवृत्तियों से आन्दोलित थी। आपकी रचनाए बडी महत्त्वपूर्ण और विशाल है इसलिये आपके व्यक्तित्व एव रचनाओं पर स्वतन्त्र ग्रन्थ ही निर्माण हो सकता है पर रचनाओं के साथ जीवन परिचय के पृष्ठ सीमित ही हो सकते है, इसलिये हमने सक्षेप मे ज्ञातव्य सारी बातो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। अन्त मे आपके गुणवर्णन मे विभिन्न कवियो द्वारा रचित श्रद्धाञ्जलियो में से थोडी सी चुनकर यहा दी जा रही है जिनसे समकालीन व्यक्तियो का आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो मन्तव्य था स्पष्ट हो जायगा।

(१) श्रीमद् ज्ञानसार जी गुण वर्णन

उदैचंद सुत ऊपज्यो लियौ विधाता लोच।
देव नारायण दाखवुं को अजय गति अलोच ॥१॥
अढारै इकड़ोतरै, छाक मैंळ री छांड
मात जीवन दे जनमीया, सांड जात नर सांड ॥२॥
वास जंगळै वैंत सूं, दीवां जनम उदार।
चरस बार चौली गया, बारोतर री वार ॥ ३ ॥
श्रीजिनलाभसूरीसरू, भट्टारक भूपाल।
बीकानेर ज वंदियै, चढती गति चौसाल ॥ ४ ॥
सीस वड़ाला वडमती, वड भागी वड़ रीत।
रायचंद राजा ऋषि, प्रगट्यो पुण्य प्रवीत ॥ ५ ॥.
तिण पाटै इण कलि तपै, जाण्यौ थो निरहेज।
चावैं डंबर चीखरै, तरण पसारै तेज ॥ ६ ॥
प्रणमें सूरतसिंह पय, मिल्यो जनम रो मीत।
ज्ञानसार संसार मे, आखे लोक अदीत ॥ ७ ॥
सीस सदासुख साहरै चलि आवै चौ राज।
श्रवणे तो मैं सांभल्यो आगर दीठो आज ॥ ८ ॥
बावाजी वायक अखै, अखै राठोड़ौ राज।
खरतर गुर सगला अखै, रतन अखै महाराज ॥९॥

(२) सोरठीया दूहा

कायम जस कीधोह, लाहो लीधो लोक में।
परम अमृत पीधोह, नीको तै हीज नारणा ॥१॥

जणणी धन जायोह, नर तौ जेहडो नारणा।
भूपति मन भायोह, संतारे सिर सेहरो ॥२॥
रथ भट चाकर राज, पुण्य प्रमाणे पामीया।
जालम जोगीराज, छोडे बैठो छिनक में ॥३॥
तो जेहडो तूं हीज, करणी करडो तूं करे।
बाबा धरणी बीज, निहचै राखै नारणा ॥४॥
नारण कारण न्याय, गूढो तूं भरीयो गुणे।
थिर जस कीरत थाय, निरमल जगमें नारणा ॥५॥
मीत तणी मनुआर, मुनिवर मानै मौज सुं।
अवसर में उपगार, सदा करीजै सैण सुं ॥६॥
जाणै जाणणहार, मूरख भेद न जानही।
पांवण रै फुरकार, चित में समझै चतुर नर ॥७॥
इक धन लेत छिनाय कर, इक धन देत हसंत।
ससिर करत पतझार तर गेहरा करत वसंत ॥८॥

(३)

दूहा:—मैं वंदन निसदिन करूं, पल पल बारू प्रांन।
वडे दयाल नरांन जू सागर बुद्धि सुजांन ॥ १ ॥
-सवैयौ —सील संतोष समझकै सागर ज्ञान विवेक गुनन के भारे।
अर्थ धरम अरु मोख मुगत्तै जोगजुगत्त के जांननहारे ॥
काम किरोध कूंमार हटावत कूड कुबुद्ध कलंक तें न्यारे।
समून खेलल खेल निसंक जू हाथ खडग क्षमा उरधारे ॥१॥

क्षमा खंजर ज्ञान गुपती ध्यान बगतर धारियं।
तत्व तुरकी मत्त मंडप सत सक्काही सारियं॥
लिव तणी लंगाम ल्यावो प्रेमपाखर पारियं।
सेल सम रस ठेल छोडा पेल पांचू मारियं ॥१॥

दूहा :—पांच पचीसूं पेलकें खेले दसमें द्वार।
अनहद बाजे गगन में, जहा सबदरि रंकार ॥१॥

खंड ब्रह्मंड कूंजीतहै, सो कहीयै निज सूर।
ब्रह्म तेज ताकै बस, छाना रहै न नूर ॥२॥

नूर चंद ज्यूं भलहले, सहिस किरणजुं सूर।
मिट्यो अंधेरो भरम सब, गयो करम अघ दूर॥१॥
गिरवा गोरखनाथ ज्यूं, दत्त ज्यूं दरस दयाल।
ऐसे जती नरानयू, पूरन परम कृपाल ॥१॥
परमारथ स्वारथ सकल, दयावंत निजसंत।
सपत दीप सोभा करै, महिमा कोट अनंत। १।
लछ्या पै इं'''करो, तुम दाता में दीन।
मै तो महा मलीन हो, तुम हो बड़े प्रवीन। १।

(४)

ज्ञानी देख नरांयण गुरुजी, सकल लोक ने समभाया।
अद्भुतरूप अखंड तप आखै भूपति रे पिण मन भाया। ज्ञा० ।१।
देवन कै सी श्रृद्ध सिद्ध देखूं, मानव भव को पद पाया।
लख दिख्यौ जू पुण्यकी लतासुं, नर भव इम्रतफल लाया। ज्ञा० ।२।

देखन में तो जोगी जंगम, पीर पैकंबर सब आया।
सांमी सन्यासी मुसाफर घूता, पारनइ को नही पाया। ज्ञा० ।३।
गछ चउरासी मे गिरुया गिरुया गुण गौतम में गिर राया।
लवधि लवधि में नाम सनूँको, फरस्या अष्टापद पाया। ज्ञा० ।४।
पण अरै मे नांम नारायण, परतिख देवल पूरायां।
धन्य धन्य भाषा सब लोकन की, जपै दुति दुति २ काया। ज्ञा० ।४।

(सुकनजी संग्रह)

(५) लावणी

सकल बुध परवीन सरस है। जुग में शोभा है भारी।
इन कल्युग में करी तपस्या, पाय वंदत है नर-नारी।
काला गोरा सब वीर वह्या में, पूरण परचा यूँ देवै।
चोसठ योगिन सदा गुरारे, अष्ट पहर हाजर रैवे ॥१॥ स०
गुरु नराण अरू शिष्य सदासुख, सारी वातां सुभकारी।
राज रीत सबै जग नामी चार खूंट जाणै सारी ॥२॥ स०
ज्ञानी बडै बचन के साचै, सूरवीर है सरसाइ।
यक्षराज की महर हुइ है, कमी न रैवै अब कांइ ॥३॥ स०।
चिंतामण सामी सचराचर, पूरण परचा यूँ देवे।
महाराज की कृपा मोटी, हिल मिल के वाता कैवै ॥४॥ स०
दरसन देख्या सब सुख उपजै, कवियण यूँ उछरंग करै।
हाथी घोडा और पालखी, खरतर गच्छ तप तेज सीरै।
संवत अठारै वरस चोरासियै, फागुन सुदी चौदस दिनै।
खुशी होय बिकांणा मांहि, कृपाराम स्तुति गिणै ॥६॥ स०।

(६)

दोहा :—आरंभ थारा ईसवर, नर सुण हरै नराण।
गछ खरतर चढ़तै गुमर, भलहल हगो भाण ॥१॥
मिढ न आवे मीढरा, इढवियां गच्छ आज।
नर पुर सिरे नराणरा, लायक गछ भुज लाज ॥२॥
पूरब पछिम पेखीया, जती दीठा सहु जोय।
नारायण नर पुर सिरे, हुवो जिके घर होय ॥३॥
सतवादी जतीयां सिरा, जत मत गोरख जेम।
मुनिराजां नारायण मुगट, निहचल रेहिसी नेम ॥४॥
बायक ओपे वेहरा, वेद च्यारुं मुख वांण।
सतजुग नारण सांपरत, तारग वंस तुल ताण ॥५॥
नरायण नर पुर सिरे, जणणी बीजो न जायो।
सिध चेलो रायां सुतन, अवतारी अंश आयो॥६॥

(चतुरभुजजी संग्रह पत्र १ से)

(७)

दोहा :—जुग में नारायण जती, सुरवृक्ष तणोसरूप।
लाजा वृक्ष पट बीलीया, भृकुटी नमावै भूप
ओ मन वेग अपार वागां नहीं रागा विहंग।
ओ पुरत असवार, जग मे नारायण जती॥
ओ मन मरत अपार, हालै निज चाहयो हसत।
इण माथै असवार जडीया निज सांकल यती॥

आशा नदी अपार, नर वाहण लाघे नहीं
· ओ अंब खेवट असवार, जोय रे तट पैले जती ॥
दोहा :—परमभक्त,जिन राजके, ज्ञानसार परवीन ।
सत सीलहि पालै सदा, रहै तपस्या लीन ॥

(८)

कवित्त :—पंडित प्रवीण ज्ञान गहरो समुद्र जैसो,
काटे भवफंद अंध, दूर ही गयो रहे ।
पंचव्रत धारे साधु गुन ही अंग विचारे,
प्रसिद्ध नराण हिरदे क्षमा लीयो रहे ॥
विद्यमान देत हे वखान सब श्रावकक्कुं,
भाखै भगवंत सूत्र अरथ को दयो रहै ।
नहीचै विचार देखो ऐसो मुनिराजजूकूं,
जिनराज जु के पद पंकज गह्यो रहे ॥
दोहा :—साधु संवेगी भेटीया, भयो मनोरथ पूर ।
सुख संपत्ति आनन्द थयो, गयो दलिद्दर दूर ॥१॥
चतुरता की चूंप कुं, लखै न कोऊ टाक ।
जैसे मृग के सींग मे, सुधे ही में वांक ॥
नयन वयन अरु नासिका, है सबके इक्तौर ।
कहबो सुनवो अमलवो चतुरन को कछु ओर ॥
गिर सरवर यों सुकरमें, मार भीजवो नांहि ।
सुख दुख दोऊ होत है, ज्ञानी के घट मांहि ।
नयण वयण अमृत रसँ, रूप अनोपम सार ।
ज्ञानसार गुरु माहरा, सुगत तणा दातार ॥

(९)

सवैया :—गुला में गोपाळ कमल मे कमल नैन,
सेवता मे सीताराम वनमें वनवारी है ।

बेल में बाहारा चंपेली में चतुरभुज,
केवड़ा कनाया नारा पानी वारी है ॥
गुलदा वदा में दीनबंध जाफरा में जगन्नाथ,
मोतियन मदन व मेंदी में मुरारी है ।
रूप मंजरी में राधेकृष्ण केतकी में केसोराय,
देखो नाराण नाम फुली फुलवारी है ॥

(१०)

(कवित्त बाबाजी श्रीनराणजी को वह्यो सेवग नवलरायजी को अजमेर मध्ये)

सोभत गुण सागर, है बुद्धि को उजागर ।
गुनियन को आगर सो बड़ो जैनमती है ॥
सबही विध लायक, है अमृत से वायक ।
ये दीपे गच्छनायक, यों क्रान्त हद रही है ॥
रायचंदजू के शीश तेरे यशचिहुं दिश ।
स। सील संतोष बिष, ओपे अधिक सतो है ॥
कवि कहे नोलखाल जाको वाणो है विशाल ।
यों दाता गुरुदयाल, ऐसो नारायणजती है ॥
कविता में पुनित ऐसो रीति राजनीत हूं में ।
जीत के प्रबल काम, कीत जस कंत को ॥
करमें विश्वकरमा सो, हुनर हजार जाके ।
वैद्यक मे जान सब जोवक मन्त्रतंत्र को ॥
बोधि भव जीवनको गौतम सो ज्ञान वाके ।
मान दानराण जानै बान हित संत को ॥
जिनलाभसूर चंद राय शिख राजत यो ।
निहचै नरायण है भेप भगवंत को ॥
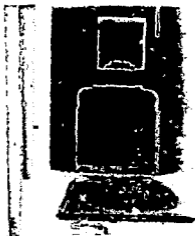
श्री ज्ञानसारजी की समाधि (स्वस्तिकांकित)
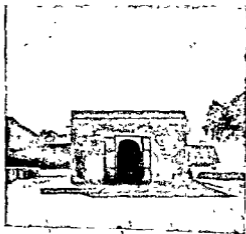
श्री ज्ञानसारजी के समाधि-मंदिर का प्रवेश द्वार

श्री ज्ञानसागरजी (नारायण जी)

रघुनाथजी, गुरुजी और महादेवजी को उपदेश करते हैं।
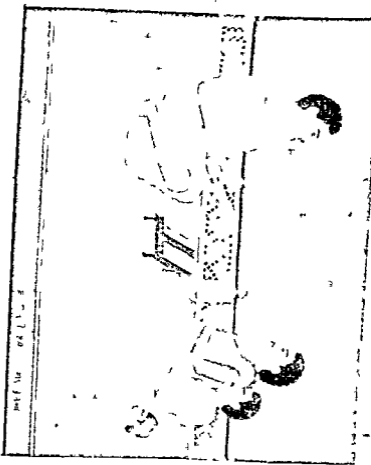
ज्ञानसार ग्रन्थावली-खण्ड १

ज्ञानसार पदावली

चौवीसी

१-श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

राग भैरव—(उठत प्रभात नाम जिनजी को गाईयै—एहनी)

ऋषभ जिणंदा, आणंदकंद कंदा,
याही तें चरण सेवैं, कोटि सुर इंदा ॥ ऋ० ॥ १ ॥
मरुदेवा नाभिनंद, अनुभौ चकोर चंदा,
आप रूप कौ सरूप, कोरि ज्युं दिणंदा ॥ ऋ० ॥ २ ॥
शिव शक्ति न चाहूं, चाहूं न गोविन्दा।
ज्ञानसार भक्ति चाहूं, मैं हूं तेरा बन्दा ॥ ऋ० ॥ ३ ॥

२-श्री अजित जिन स्तवनम्

राग भैरव—(जागे सो जिन भक्त कहावै, सोवे सो संसारी)

अजित जिनेसर काया केसर, तूं परमेसर मेरा।
सिद्ध बुद्ध सुविशुद्ध मुक्ति मग, प्रापक है पद केरा ॥अ०॥१॥
अकल अमूरतीक अविनासी, आतम रूप उजेरा।
अलख निरंजन अकल अकाई, असहाई पद तेरा ॥अ०॥२॥

अज अरुजी चिद्घन अनहारी, अभिधा शब्द घनेरा * ।
दीनबन्धु हे दीन दयानिधि ! ज्ञानसार तुहि चेरा ॥अ०॥३॥

३-श्री संभव जिन स्तवनम्

राग भैरव

(राम मंत्र भज ३ हरे २, हरे राम कहि २ नम नाम कहि हरे हरे)
संभव संभव संभव कहि कहि, संभु सभु मति कहे कहे ।
संभु सयंभू संभव नामा, यातैं मन मति भरम गहे ॥मं०॥१॥
संभव संभु सयंभू अभिन्ना, इह सभू मिथ्यात मए ।
शक्तिमंत जिन पद संज्ञा तैं, कनक धतूरै नांहि लहे ॥सं०॥२॥
राग दोष मिथ्या परणिति घट,मिटे भव भ्रमण सरूप वहे † ।
ज्ञानसार कहि उन सभू में, समव रूप न भिन्न कहे ॥सं०॥३॥

४-श्री अभिनंदन जिन स्तवनम्

राग बेलावल

अभिनंदन अवधारौ मेरी, मैं हूं पतित तिहारौ ॥अ०॥
पतित उधारन विरुद अनादी, वाकी ओर निहारौ ॥मेरी०॥१॥
केते पतित उधार विरुद लहि, मेरी वेर विसारौ ।
एक उधारी अपनै विरुदे, क्यूं नाही उजवारौ ॥मेरी०॥२॥

पाठान्तर— * घनेरा † दहे

थोरे कारज वडि बात सिद्ध ह्वै, क्युं न आलस टारौ।
अवसर समझी विनती करहुँ, ज्ञानसार निसतारौ ।।मे०।।३।।

५-श्री सुमति जिन स्तवनम्

राग भैरव (जागे सो जिन भक्त कहावे, सोवे सो संसारी)

सुमति जिणेसर चरण शरण गहि, कारण करण तिरण की ।।
बहिरातमता छोड आपना, अन्तर आतम भावैं।
थिरता जोगैं चरण शरण की, कारणता सदभावैं ।।सु०।।१।।
जिन सरूप संजोगैं आतम, समवाई गुण चीनैं।
समवाई गुण गुणि अभिन्नैं, आप सुभावैं लीनैं ।।सु०।।२।।
आतम सुभावैं आतम पदता, व्यापकता सरवंगैं।
ज्ञानसार कहि चरण शरण की, आतम अरपण रंगे ।।सु०।।३।।

६-श्री पदमप्रभु जिन स्तवनम्

राग वेलाल

पदम प्रभु जिन तूं मुंहि स्वामी, तूंहीं मेरा अतरयामी।
हूँ बहिरातम छूं अपरूपी, तूं परमातम सिद्ध सरूपी ।।प०।।१।।
हूँ संसारी गति थितकारा, तैं गत्यादिक दूर निवारी।
हूँ कामादिक कामी रागी, तूं निकामो परम विरागी ।।प०।।२।।
हूँ जड संगी जड भिचारो, तूं आतमता परणित धारी।
दीन हीन तैं करुणा कीजै, ज्ञानसार नै निज पद दीजै ।।प०।।३।।

७-श्री सुपार्श्व जिन स्तवनम्

राग वेलावल (मेरे एतौ चाहिये)

श्री सुपास जिन ताहरौं, सुध दरसण चाहूँ।
आधुनकी नी उक्ति नी, मन संका ल्याऊं ॥श्री॥१॥
शुद्धाशुद्ध नयं करी, पुन निश्चै मारूं।
विवहारी नय थापतां, अत ही उलझाऊं ॥श्री॥२॥
वस्तु गतो जिन दर्शनी, तसु सीस नमाऊं।
ज्ञानसार जिन पंथ नी, मैं भेद न पाऊं ॥श्री॥३॥

८-श्री चन्द्रप्रभु जिन स्तवनम्

राग रामगिरि (कुंथु जिन मनडौ किम ही न वाजै)

मनुओ समझायौं नहि समझै, समझायौं नहि समझै।
ज्युं ज्युं सठ हठ कर समझाऊं त्युं त्युं उलटौ उलझै ॥म०॥१॥
ध्यानारूढ थई जो धारूं, तौ मांमूरी मूंझै।
एहवौं कुण[1] समझावण[2] हारौं, जे समझी नैं सुलझै[3] ॥म०॥२॥
चन्द्रप्रभु जौ करैय सहाई, तौ क्यूंही पडिवूझै।
ज्ञानसार कहै मनुआ नैं, तौ क्यूंही आंख्यां सूझै ॥म०॥३॥

पाठान्तर—१ कोई २ सुलझावण ३ समुझै।

९–श्रीसुविधि जिन स्तवनम्

ढाल (रे जीव जिन धर्म कीजिये)

सुविधि जिनेसर ताहरो, मत तत जे जाणै ।
ते मिथ्या मति नवि ग्रसै, मत ममत न ताणै ।।सु०।।१।।
थापक उत्थापक मतो, ए सरव ममत्ती ।
तिह किण जिन मत देम नै, मति ममझौ सुमति ।।सु०। २।।
ज्ञानसार जिन मत रता, ते रहिम[१] पिछाणै ।
शुद्ध सुपरणित परणमी, अनुभव रस माणे ।।सु०।।३।।

१०–श्रीशीतल जिन स्तवनम्

राग—सोरठ

ऊजला राम माम मनाजी ।। ऊ० ।।
थांथुं लेखौ चोखौ राखूं, उलभ्यां उलभण ठाम ।।मना०।।१।।
थां मांहे छूं नहि तुम बाहिर, शीतल शीतल श्राम ।
रामयै मिथ्या ताप समावण, जिन गुण तरु आराम ।।म०।।ऊ०।।२।।
राखी जनम थकी मित्राई, सारचो हुँ शुभ काम ।
ज्ञानसार कहै मन माता, भाखौ दाखी नाम ।।म०।।ऊ०।।३।।

११–श्रीश्रेयांस जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(पदम प्रभु जिन ताहरौ, मुझ नाम सुहावे)

श्री श्रेयांस जिन साहिबा, सुण अरज हमारी ।
समरथ सामी तूं मिल्या, रहिया जनम भिखारी ।।श्री०।।१।।

पाठान्तर—१ रहस्य

दीनदयाल कृपाल नो, जो विरुद धरावै ।
अन्तर आतम रूप नी, ते सगति जगावै ॥श्री०॥२॥
शक्ति सहाई आप हु, तो निज पद लीजै ।
ज्ञानसार अरदास नी, आशा सफल करीजै ॥श्री०॥३॥

१२-श्रीवासुपूज्य जिन स्तवनम्

राग—वेलावल

वासुपूज्य जिनराज नो, मुहि दरसण भावै ।
मत-मत ना उनमादिया, यौंहि जनम गमावै ॥वा०॥१॥
मत-मद नी उनमत्त थी, तत्वातत्व न बूझै ।
राग दोष मति रोग थी, पर भव नहिं सूझै ॥वा०॥२॥
ज्ञानसार जिन धर्म नै, सग नय समवाई ।
अनुगामी नै संपजै, आतम ठकुराई ॥वा०॥३॥

१३-श्रीविमल जिन स्तवनम्

राग—कलिंगडा

माई मेरे विमल जिनेसर सामा ।
आतम रूप नौ अंतरयामी, परणामै परणामी ॥मा०॥१॥
अविरोधी गुण गणीय अभेदी, साधकता नी सिद्धैं ।
तेहिज सक्ते तूं मुहि तारक, चेतनता नी ऋद्धैं ॥मा०॥२॥
रूप अभेदैं शक्ती अभेदी, विमल विमलता भावै ।
आतमता परणमन प्रयोगे, ज्ञानसार पद पावै ॥मा०॥३॥

१४-श्री अनंत जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(पद्मप्रभु जिन ताहरी, मुहि नाम सुहावे)

तूं ही अनंत अनंत हूं, वलि चरण नौ चेरौ ।
मान मेल्ल साहिब करयो, तौ ही अवगुण हेरौ ॥तूं० ॥१॥
चूक भरयो चाकर सदा, ते सनमुख देखौ ।
तौ सेवक स्वामी तणौं, स्यौं गहिसी लेखौ ॥तूं० ॥२॥
सौ गुनहा बगसै जदै, स्वामी सलहीजै ।
ज्ञानसार नै साहिबा, निज पद सौंपीजै ॥तूं० ॥३॥

१५-श्री धर्म जिन स्तवनम्

राग पंचम—(माहरुं मन मोह्युं रे श्री०)

धर्म जिनेसर तुझ मुझ धर्म मां, भेद न होय[१] अभेद रे ।
सत्ता एकै धर्म अभिन्नता रे, तौ स्यौं एवड़ो भेद रे ॥ध० ॥१॥
राग दोष मिथ्या नी[२] परणितै रे, परणमियौ परिणाम रे ।
हूं संसारै तेह थी संसरूं रे, ताहरूं शिवपद धाम रे ॥ध० ॥२॥
तूं नीरागी तूं ही निरमदी रे, निरमोही निरमाय रे ।
अजर अमर तूं अक्षय अव्ययी रे, ज्ञानसार पद राय रे ॥ध० ॥३॥

पाठान्तर—१ नहीं य २ मिथ्यात्व

१६–श्री शांति जिन स्तवनम्

राग सारंग

जब सब जनम गयौ तब चेत्यौ
पाछल वूही पीठै लागे, चेत्यौ मो ही न चेत्यौ ॥ज० ॥१॥
शब्द रूप रस गंध फरस में, अजहू रहत अचेत्यौ ।
संवर करणी सुणतां सिरकै, आश्रव मांहि अगेत्यौ ॥ज० ॥२॥
संयम मार्ग प्रवर्त्तन समयै, आतम रहत पछैत्यौ ।
संत जिनेसर ज्ञानसार को, मन कबहूं नहिं जेत्यो ॥ज० ॥३॥

१७–श्री कुंथुनाथ जिन स्तवनम्

(कहा अज्ञानी जीव कू)

कुन्थू जिनेसर साहिबा, सुन अरज हमारी ।
हूं शरणागत ताहरौ, तूं शिव मग चारी ॥कुं० ॥१॥
शिव मग नै अवगाहतैं, तैं शिव गति साधी ।
आतम गुण परगट करी, आतमता लाधी ॥कुं० ॥२॥
दीन जाण करुणा करी, शुध मार्ग बतावै ।
ज्ञानसार जिनधर्म थी, शिव पदवी पावै ॥कुं० ॥३॥

१८–श्री अरि जिन स्तवनम्

(तूं आतम गुण जाण रे जाण)

अरि जिन अशुध श्रद्धान विधान,
सर्व क्रिया निष्फलता मान ॥अ० ॥१॥

तीन तत्व नी जे ओलखाण, तेहिज शुद्ध श्रद्धान तूं जाण।
वलि उत्सूत्र न भाषै जेह, बीजुं लक्षण एहनूं एह ॥अ०॥२।
तीजूं अवंचक करणी करै, ते निज रूप नै निहचै वरै।
ज्ञानसार शिव कारण अमूल, अर जिन भाख्यूं श्रद्धा मूल ॥अ०॥३॥

१६ श्री मल्लिजिन स्तवनम्

राग रामगिरी (आज महोछव रंग रली री)

मल्लि मनोहर तुम्फ ठकुराई ॥म०॥
सुता भयै तैं सूप वजाई, घंट सुघोषा देव घुराई ॥म०॥१॥
जय जय घोष न मायो जग में, अनमिष नारकिये सुख पाई।
सुर वनिता मिल गाई वधाई, सुरपुर में वांटंत वधाई ॥म०॥२॥
इंद्राणी घर आंगण नाचै, भर मुक्ताफल थाल वधाई।
ज्ञानसार जिन जनम जगत की, हरख हकीगत किन वरणाई ॥३॥

२०–श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवनम्

राग वेलावल–(श्री महाराज मनावौ)

मुनिसुव्रत जिन वंदौ¹, ग्रहसम अरूचिनिकंद आनंदौ ॥मु०॥
ह्वै सदबुद्धे चंदन रुचिता, उदयैं अनुभव चंदौ ॥मु०॥१॥
वस्तु गतैं निज तत्व प्रतीतैं, मिथ्यामति अति मंदौ।
कुशल विलास आतमता वृत्तैं, परचै परमाणंदौ ॥मु०॥२॥
कारण जोगै कारज सिद्धी, ह्वै जाणै मतिमंदौ।

पठान्तर—१ चंदो

ज्ञानसार की ज्ञानसारता, मम भासै जिण चंदौ ॥मु०॥३॥

२१ श्री नमि जिन स्तवनम्

राग आस्या—अब हम अमर भए न मरेंगे

अंबर देहो मुरारी, ए विण)

नमि जिनं हम कलि के संसारी, पुदगल के सहिचारी ॥न०॥

क्या वूझै हम वंदन पूजन, नमन मात्र शुध तारी ॥क०॥१॥

पुदगल खावै पुदगल पीवैं, पुदगल पथर पथारी ।

पुदगल संगै हमही सोवैं, पुदगल लगन सुप्यारी ॥न०॥२॥

वंदनादि नो आतम अर्पण, विन संबंध न वारी ।

ज्ञानसार नी ज्ञानसारता, नमि जिनवर सहिचारी ॥न०॥३॥

२२ श्रीनेमि जिनस्तवनम्

राग बसत ढाल—(परमगुरु जैन कहो क्युं होवे)

एसैं वसंत लखायौं, नेमि जिन एसैं वसंत लखायौ ।

धरम ध्यान सिघरी की तापै, मिथ्या शीत घटायो ।

किंचित शीत रह्यो भव थित कौ, यातैं मांगण आयौ ॥न०॥१॥

शुक्ल ध्यान गुदरी वगसैं विन, कैसे शीत न जावै ।

ठंड घर्ष्यां विन पाचूं इंद्री, मन गरमी नहिं पावै ॥न०॥२॥

विन गरमी विन हाथ पैर सूं, साधु क्रिया किम कीजै ।

साधु क्रिया विन ज्ञानसार गुन, शिव संपद किम लीजै ॥न०॥३॥

पठान्त —१ भारी

२३ श्रीपार्श्व जिन स्तवनम्

राग रामगिरी—(अंबर दैहो मुरारी)

पास जिन तूं है जग उपगारी, तूं है जग उपगारी ।
जग उपगारी विरुद धारकै, लीजै. खबर हमारी ॥पा०॥१॥
जगवासी में जो मोहि राखो, तो मोकूं ही तारौ ।
विरुदें धारौ जो नहि तारौ, मोहि करन' कौ सारौ ॥प०॥२॥
पतित उधारन विरुद तिहारौ, ताकूं क्यूं विसरीजै ।
ज्ञानसार की अरज सुणीजे, चरण शरण राखीजै ॥प०॥३॥

२४ वीर जिन स्तवनम्

राग भैरव—(जब लग आवे नहिं मन ठाम)

वीतराग किम कहि वधमान ॥वी०॥
राग विसमी विन समता राखै,
हीनाधिक नौ क्यौं अभिधान ॥वी०॥१॥
प्रतचै ऋद्धयादिक देखी, परिषद में आपै मनमान ।
अयमत्तौ जलक्रीडा करतौ, तारयो सीस विनीतौ मान ॥वी०॥२॥
गोशालै नै अविनीतौ लख, असख भवे दीधौ शिव थान।
ज्ञानसार नै हजियन आपै, दो दीठें देखै न समान ॥वी०॥३॥

पाठान्तर— १ करम

कलश-प्रशस्ति, राग—धनाश्री (भजगुण जिनके)

गौडेचाजी तैं सुहि, सुधि वुधि दीधो।
तुझ सहायें बुद्धि पंगुर थी, जिन गुण नग गति सीधी ॥गौ०॥१॥
अक्षर घटना स्वपद लाटनी, भाव वेध रस वीधी।
अंध वधिर आशय नहीं समझूं, सी श्रुत ऊंधीसीधी ॥गौ०॥२॥
काला-वाला सहु थी करि नैं, भक्ति वृत्ति रस पीधी।
सुमति समय तिम प्रवचन माता, सिद्ध धाम गति लीधी[१] ॥गौ०॥३॥
वर खरतर गच्छ रत्नराज गणि, ज्ञानसार गुण वेधी।
विक्रमपुर मिगसर सुदि पूनम, चौवीसं स्तुति कीधी ॥गौ०॥४॥

इति पदं

पं० प्रवर ज्ञानसारजिद्गणिः कृत चतुर्विंशितिका समाप्ता।

---

१ सुमति=५, समय=७, प्रवचन माता=८, सिद्ध=१ वि० सं० १८७५

॥ विहरमान वीसी ॥

श्री सीमंधर जिन स्तवनम्

राग—करेलड़ा घरदे रे

किम मिलियै किम परचियै, किम रहियै तुम पास।
किम रविये स्तवना करी, तेह थी चित्त उदास ॥१॥
सीमंधर प्रीतड़ी रे, करिये कौण[1] उपाय, भाखो कोई रीतड़ी रे।
ते देसैं जायूं नहीं, मिलवैं स्यौं सम्बन्ध।
वौ निजरै मिलवूं नहीं, सी परिचय प्रतिसंधि[४] ॥२॥ सी०॥
प्रथम प्रकृत नैं अभिलखी, पाछल करिये वात।
ए अनुक्रम जाणयां विना, परिचय नौ प्रतिघात ॥३॥ सी०॥
परिचय विण कोई सदा, न दियै वैसण पास।
पासै ही वैसण न दे, रहिवा नी सी आश ॥४॥ सी०॥
जौ रहियै पासै सदा, तौ अवसर अरदास।
करियै पिण मोटा कदे, न करै निपट निराश ॥५॥ सी०॥
को कालै तुझ चरण नी, सेवा करस्यूं साम।
इण कालै मुझ वन्दना, श्रीछेज्यो परिणाम ॥६॥ सी०॥
दूर थकां कमठी परै, महर नजर महाराज।
ज्ञानसार थी राखज्यो, सरस्यै तौ सहु काज ॥७॥ सी०॥

पठान्तर—१ केण ४ मिलाव

२ श्री जुगमंधर जिन स्तवनम्

(धीरा थांदला। ए देशी)

जुगमंधर जिनराज जी रे, तुमसूं निवड़ सनेह।
करवा वांछू वापजी रे, किम तुम दाखो छेहो रे ॥१॥
जुगमंधर जिन, सबल विमासण एहो रे।
साम विरागिया, राग विना नहीं नेहो रे ॥जु०॥ २॥
मूल विना नहीं तरुवरा रे, ग्राम विना नहीं सीम।
सास विना जीवित नहीं रे, राग नेह नी नीमो रे ॥जु०॥ ३॥
हूँ इण भरत नौ कीड़लो रे, तु शिव वासी सिद्ध।
सरिखा विण न हुवै कदै रे,प्रीत रीत नी सिद्धो रे ॥जु०॥ ४॥
आसंगो किम कीजियै रे, करियै जेह नी आस।
ज्ञानसार नै प्रीछज्यो रे, चरण कमल नौ दासो रे ॥जु०॥ ५॥

३ श्री बाहु जिन स्तवनम्

(भवसायर हूँती जो हेलै)

बाहु जिनेसर सेवा तारी, हूँ जाणूं विध सुविधैं सारी।
द्रव्य भाव पूजा बे भेदें, प्रथम अभय अद्वेप अखेदें ॥१॥
मन निश्चल तिम रुचि पूजा नी,अखेदी विण ए न हुवानी।
अंग अग्र द्रव्य पूजा जेह, तेहनी शुचिता वांछै एह ॥२॥

असंख्यात मन ना पर्याय, भाव पूजा ना भेद कहाय ।
उपशम क्षीण सयोगी ठाणैं, चौथो पड़वत्ति भेद वखाणैं ॥३॥
जे प्रवचन नौ वचन न छेदै, ए भाख्यौ जिन पंचम भेदै ।
किरिया करै समय[1] अनुसारै, वंचकता नौ लक्षण वारै ॥४॥
निमतौ[2] एकंत पक्ष न ताणै, ते जिन सत्तम भेद वखाणै ।
ज्ञानसार जिन पड़िमा जेह, जिन मम मानै अट्ठम एह ॥५॥

४-श्रीसुबाहु जिन स्तवनम्
(ललनां नी देशी)

श्री सुबाहु जिणंद नौ, परम धरम परमाण ॥ललना॥
कीधौ त्रिकरण शुद्ध थी, जिन आगमगम[3] जाण ॥ल०॥१॥श्री॥
इग विह सम सत्ता मई, दुविहैं दो नय धार ॥ललना॥
तीन तत्व त्रिविधै भण्यौ, चौ दानादिक च्यार ॥ल०॥२॥श्री॥
पण विह पंच महाव्रते, छव्विह जीव निकाय ॥ललना॥
सग विह सग भय निरमई, अड़ विह प्रवचन माय ॥ल०॥३॥श्री॥
इत्यादिक बहु भेद थी, धर्म कह्यो विवहार ॥ललना॥
निश्चय आतम रूप थी, तद्गत धर्म विचार ॥ल०॥४॥श्री॥
असंख भवै उदयै हुवै, ते विवहार सरूप ॥ललना॥
निश्चय अंतिम भव लहै, ज्ञानसार रस रूप ॥ल०॥५॥श्री॥

पाठान्तर—१ सिद्धांत । टिप्पणी—२ निर्मम हवौ ३ मार्ग ।

५-श्री सुजात जिन स्तवनम्

ढाल—(हियरे जगत गुरु)

मैं जाण्यो निश्चै करी हो जिनजी, जिन धर्म सम नहीं कोय ।
सकल नयामय[1] जाणनैं हो जिन, धर्म जगत ना जोय ॥१॥
सुण रे सुजात जिन, तुझ धरम समो बड़ को नहीं !
तिण इण भव हो मुझ शरणौ एह कैं, इण विन को जग
में मही ॥२॥सु०॥
जिम गहिली नौ पहिरणो हो जिन, तिम सहु धरम कथन्न ।
कर्म-रहित करता कहै हो जिन, इम किम मिलैय वचन्न ॥३॥सु०॥
ईश्वर प्रेर्यो स्वर्ग में हो जिन, नर्कै जावै जीव ।
भूत मई केई कहै हो जिन, यदृच्छायें सदीव ॥४॥सु०॥
मिथ्या मत मद मोहिया हो जिन, स्यूं जाणै नय वाद ।
ते विन कुण समझी सकै हो जिन, 'ज्ञानसार' सवाद ॥५॥सु०॥

६-श्री स्वयप्रभ जिन स्तवनम्

(महिर करो जिनजी)

श्री स्वयंप्रभु ताहरौ जिनजा, विरुद सुण्यौ में कानकै ।
परम पुरुष जिनजी ॥
सेवा सांची साचवै जिनजी, तेहनै द्यै शिव थानकैं ॥प०॥१॥

टिप्पणी—१ नय का आशय । पाठान्तर—२ न गमें ।

क्यु' करि पहुँचूं तुम कनै, तो किम सारूं सेव कै ॥प०॥जि०॥
अलगां थी ही ताहरी जि०, आण धरूं नितमेव कै ॥प०॥२॥
जौ निजरां सन्मुख रहूं जि०, तौ फल प्रापत होय कै ॥प०॥जि०॥
पंखी हो पहुँचै नहीं जि०, मुझ संभव नहीं कोय कै ॥प०॥३॥
इंहांथी ही अवधारज्यो जि०, वीनति वारंवार कै ॥प०॥जि०॥
तुझ सरिखौ समरथ धणी जि०, पाम्यौ परम उदार कै ॥प०॥४॥
तूं जगतारक हितकरू जि०, स्वयंप्रभु जिनराय कै ॥प०॥जि०॥
ज्ञानसारनै तारवा जि०, कीजै वेग उपाय कै ॥प०॥जि०॥५॥

७ श्री ऋषभानन जिन स्तवन ।

राग-(श्रेणिक मन अचरिज थयौ)

तुझ परणाम नै परणम्यै, हूं निजरूप नौ कर्ता रे ।
तूं मुहि साधक सिद्ध हूं, तूं हूं सम इग सत्ता रे ॥
ऋषभानन जिनरायजी ॥१॥
पूर्व रूप नै अभिलषी, जो निरखूं निज रूपो रे ।
पर परिणम नै परणम्यै, हूँ कारक भव कूपो रे ॥२॥ऋ०॥
मिथ्यात्वादिक हेतु नै, परिणामें परिणामी रे ।
हूं वांछूं अठ कर्म नै, कर्म फलौं नौ कामी रे ॥३॥ऋ०॥
संवेगादिक लच्चणे, चेतनता नौ रामी रे ।
हूं कर्ता निजरूप नौ, ज्ञानादिक गुण पामी रे ॥४॥ऋ०॥

ए गुण गुणिय अभेद हूँ, ''शिव अनर्ला निरवाधी रे।
अरुज अपुनरावर्त थी, ज्ञानसार गति माधी रे ॥५॥अ०॥

८ श्री अनतवीर्य जिन स्तवन।
राग-(सोमंधर करजो मया)

इग मींढ्यां हूं तुम कनै, दो मींढ्यां अति दूर।
तीनूं लक्षण मेलव्यां, चिदानन्द रम पूर ॥१॥
अनंतवीरज अवधारज्यो, गुपति रहिस नी ए वात।
मोटा मरम न दाखवैं, तेम पराई जे तात ॥२॥अ०॥
चौ मेल्यां थी सहु समों, अन्वय लक्षण धार।
व्यतिरेकी नैं मेलव्यां, पंचम गति दातार ॥३॥अ०॥
हूं तुम भेद न एकता, तौ किम इवड़ौ जी भेद।
जुंजन करणैं ताहरैं, पर परणित नौ ए खेद ॥४॥अ०॥
तुझ मुझ अंतर मेटवा, ज्ञानकरण गुण धार।
ज्ञानसार गुण एकता, चेतनता नौ व्यापार ॥५॥अ०॥

९ श्री विशाल जिन स्तवन।
राग-(कड़्या फल छै क्रोधना)

श्रीविशाल जिनराय नौ, परम धरम सुपवीतौ रे।
काम नाश नैं कारणौ, ए सम अवर न मीतौ रे ॥१॥
जय जय जिन धर्म जगत में ॥

पाठान्तर—१ सि।

शब्द अरथ नय एकता, वलि सापेक्ष वचनो रे।
भाख्यो अनंत भगवंत जे, तिम भाखै ते धन्नो रे ॥२॥जय०॥
पण इण दूसम काल ना, मत ममती उनमादी रे।
के तुझ थापै ऊथपै, तेह वितंडावादी रे ॥३॥जय०॥
थापकवादी इम कहै, जिन पूजा नैं काजो रे।
कलिय कतरची वींधवी, इम जंपै जिनराजो रे ॥४॥जय०॥
ऊथापकवादी कहै, पूजा नहीं आचरणा रे।
विण आरंभ पूजा नहीं, जिन धर्म नहीं विण जयणा रे ॥५॥जय०॥
फूल कली नैं कतरवै, जिन मुनि हिंसा दाखी रे।
साठ दया ना नाम में, जिन पूजा जिन भाखी रे ॥६॥जय०॥
मत वादी मत ताणतौ, धर्म तत्व स्यूं जाणै रे।
ज्ञानसार जिन मत रता, ते मत ममत न ताणै रे ॥७॥जय०॥

१० ॥ श्री सूरप्रभ जिन स्तवन ॥
राग—(धन २ संप्रति साचौ राजा)

जौ हूँ गायौ गाउं ताहरौ, तौ पिण जाणै न माहरौ रे।
मारग चलतां आरैं मारौ, तौ स्यौं दास नौ सारो रे ॥१॥
सूरप्रभु जिन तुम किम रीझै ॥
सैमुख सूं परपूठे कीधो, अधिकी सेवा जाणौ रे।

जौ कोई चूक करी ते बगसौ, पिण इवड़ी स्यूं तार्णो रे ।।२।।सु०।।
जे कोई दाम करेसी सेवा, अवसर अरज जणावै रे ।
जो बगसेवा नी नहीं मनसा, तौ किम सेव करावै रे ।।३।।सु०।।
सेव करावी देवा टाणै, हसि नै दांत दिखावै रे ।
ते स्वामी नैं सेव करातां, क्युं ही लाज न आवै रे ।।४।।सु०।।
कहिवा नौ विवहार सेवक नौ, करवौ स्वामी सारू रे ।
ज्ञानसार नी खबर लहेस्यौ, तौ सहु कहिस्यै वारू रे ।।५।।सु०।।

११ ।। श्री वज्रधर जिन स्तवनम् ।।

राग—(आदर जीव क्षमा गुण आदर)

श्री वज्रधर सूं संमुख मिलवां, चाहूँ छूं मुझ मन्न जी ।
ग्रह[1] उठी नैं समवसरण में, वांदे ते धन धन्न जी ।।श्री०।।१।।
न सकूं तुम थी संमुख मिलिवा, तौ पिण तुमचै पास जी ।
आण धरूं शिर ऊपरि ताहरी, तेण करू अरदास जी ।।श्री०।।२।।
जो इतला बीजा नै तारौ, मुझ मांहि सी भूल जी ।
पांत भेद जिनराज करै जौ, तौस्यौ करवौ सूल जी ।।३।।श्री०।।
अवसर समझ करी अरदासैं, जौ पूरवस्यौ हाम जी ।
वहितैं वारै आम न पूरौ, पछतावै स्यौ आम जी ।।४।।श्री०।।

पाठान्तर—१ पड़ी ।

पेट नांथ नैं सेवा सारैं, ते राखीजैं दास जी।
ज्ञानसार श्री सेवा चाहो, क्रिम नवि पूरौ आस जी ॥५॥श्री०

१२-श्री चन्द्रानन जिन स्तवनम्

राग—(इण पुर कंवल कोई न लेसी)

चन्द्रानन जिन पूर्व उपाई, करम प्रकृत तें उदयैं आई।
आरज देश आरज कुल पायो, जैन धरम नैं सरणैं आयो ॥१॥
रूप रंग बल लांबी आय, पांचू इन्द्री परगट पाय।
सुगुरु संयोगे संयम लीधौ, मन वचने नहीं पालन कीधौ ॥२॥
हुन्नर केता हाथे कीधा, ते पण उदय उपायैं सीधा।
जस उपजायौं जस उदयैं थी, मंद लोभ ते मंदोदय थी ॥३॥
पाछलि 'पूंजी सरवे खाई, एहवैं वृद्धावस्था आई।
ज्यान नयैं करणी नहीं कीधी, हिव इन्द्रिय दमनैं सी सिद्धि ॥४॥
पिण पछतायां गरज न काई, जौ किम स्वामी होय सहाई।
अरय समाधि मरण शुध देज्यो, ज्ञानसार वीनति मानेज्यो ॥५॥

१३-श्री चन्द्रबाहु जिन स्तवनम्

राग—(महिलां ऊपर मेह)

मैं जाण्यो महाराज कै, राज निवाजस्यौ हो लाल ॥रा०॥
बीती सहु जमवार कै, लाज नौ काज स्यौ हो लाल ॥ला०॥
सेवीजै तरु छोड, ते अते फल दियै हो लाल ॥अं०॥

न दियै तौ पिण पंथी, नौगामाँ लिये हो लाल ॥नौ०॥१॥
आज लगैं कर जोड़ी, सेवीजैं सदा हो लाल ॥से०॥
कीवी हूं नगशीश, सभालीजैं नदा हो लाल ॥म०॥
तो पिण त्रिण इक भूलूं, फिर तुझ सामरूं हो लाल ॥फि०॥
नगसेवा नी वार, नाक सर माहरूं हो लाल ॥ना०॥२॥
जेहनें देवा होय, वाक न्यायैं वहै हो लाल ॥वा०॥
दूध दीयती गाय नी, लात सहु सहै हो लाल ॥ला०॥
भव भव ओलग कीनी, साम संभारियैं हो लाल ॥सा०॥
हिव पिण सेवा मारूं, किम न विचारियैं हो लाल ॥कि०॥३॥
मागूं न तुम पास, अनंती ऋद्ध कहै हो लाल ॥अ०॥
माहरी मुझ नैं देता, जीव न किम वहै हो लाल ॥जी०॥
ऋद्धि पराई आप, दबाबी राखसी हो लाल ॥द०॥
इण लक्षण कुण साम, अनंता दाखसी¹ हो लाल ॥अ०॥४॥
त्रिजगत स्वामी विरुद, अनादि ताहरो हो लाल ॥अ०॥
हूं पिण जगवासी, तूं साहिब माहरौ हो लाल ॥तूं०॥
चन्द्रबाहू जिन महिर, निजर भर राखसी हो लाल ॥नि०॥
ज्ञानसार नौ जीव, हुलस यश दाखसी हो लाल ॥हु०॥५॥

पाठान्तर—१ भाखसी ।

१४ ॥ श्री भुयंगम जिन स्तवनम् ॥

(आज निहेजी रे दीसै नाहलो)

सँमुख तुम थी किम ही न मिल सकूं, तौ शी मन नी बात ।
कहियै कुण सुण नैं धीरप दियै, इम सोचूं दिन रात ॥१॥सँ०॥
काल अनंते जे मैं दुःख सह्या, तूं जाणै जिनराज ।
हिव जोनी संकट ना भय थकी, राखीजै महाराज ॥२॥सँ०॥
तुम विण किण थी ए वीनति, करूं कीधां शी हुये सिद्ध ।
जे पोते संसारे संसरै, ते किम आपै सिद्धि ॥३॥सँ०॥
संकट मिटवा कारण सेवियै, पोतै संकट धाम ।
डूबंता नैं बाँहे विलगीयै, निहचै डूबै आम ॥४॥सँ०॥
तारचा तारै तूं हीं तारस्यै, तूं तारक निरधार ।
अरज करूं हिव स्वाम भुयंगम, ज्ञानसार नैं तार ॥५॥सँ०॥

१५ ॥ श्री नेम जिन स्तवनम् ॥

(करतां सूं तौ प्रीत सहू हुंसी करै रे)

नेम प्रभु हिव केण विधै, धीरज धरूं रे ।
वौली सहु जमवार, काज किम ही न सरयूं रे ॥
तौ ही सेवक ताहरौ, अवर न मन गमै रे ।
विण फल प्रापत विण, मुझ आशा किम समै रे ॥१॥

घींग धणा कर अवर, देव इण भव करूं रे ।
तौ प्रभु तुमची आंण, वांण किम ही न फिरूं रे ॥
पिण हिव इम किम निभसी, साम विचारियै रे ।
मुझ मन धीरज हुय, तिम किमपि उचारियै रे ॥२॥

नीरासी जमवार, कैण पर वौलियै रे ।
विण आस्यार्थ मनुज, जनम किम वौलियै † रे ।
शरणाई साधार, विरुद जौ धारस्यौ रे ।
तौ इवड़ी सुण वात, तात हिव तारस्यौ रे ॥३॥

तार्‌या केता तारिस, तारै छै बहु रे ।
मुझ वेला आलस कर, बैठौ सूं कहूं रे ।
आज लगे जो अवर, देव नै सेवतौ रे ।
तौ जगवासी सर्व, देव कर पूजतौ रे ॥४॥

पिण तुझ आगम वाण, सुणी तिण नवि रुचै रे ।
धोरी चक्र फिरंतां, अन्न किम ही न पचै रे ।
श्रद्धा धोरी चक्र, वासना खाटकी रे ।
ज्ञानसार वे वार, चढै नहीं काठ की रे ॥५॥

† डुबाएँ

१६ ॥ श्री ईश्वर जिनस्तवन ॥
राग—(चीरा चांदला)

आपणपै तेहवै विना रे, गति कहौ केम जणाय ।
जौहरी विण जिम रतन नौ रे, मोल किऐं नवि थायौ रे ॥१॥
किम करि कीजियै, सेवा भेद अपारो रे ।
किण परि लीजियै, चाहैं लवण* नौ पारौ रे ॥२॥कि०॥
दीधा विण दातारता रे, सूंचै केम लखाय ।
ओलग विण ओलग तणी रे, रीत न जाणी जायै रे ॥३॥कि०॥
आज लगै ओलग तणौ रे, जाणयौ नहींय विवेक ।
ते हिव किण विध कीजियै रे, सबल विमासण एक रे ॥४॥कि०॥
दूर थकां ही राखज्यो रे, मुझ सेवक पर भाव ।
तुझ सरिखै समरथ विना रे, कइयैं नहि निरभावौ रे ॥५॥कि०॥
बादल विण गिरवर तणी रे, छाया अवर न थाय ।
सूर विना असि धार में रे, केयौं डग न भरायौ रे ॥६॥कि०॥
समरथ सूर विना कदे रे, कमलन वन विकसाय ।
गयवर कुंभ प्रहार नौ रे, सिंह विना किण थायो रे ॥७॥कि०॥
जलधर विण सरवर तणौ रे, पेट न अरट भराय ।
सबल पवन प्रेरैं विना रे, केयौं घोर धरायौ रे ॥८॥कि०॥

* लवण समुद्र

मन वंछित देवां भणी रे, कल्पवृक्ष समरत्थ।
तिम शिव सुख नैं आपवा रे, तूं लाधो परमत्थो रे ॥६॥कि०॥
प्रीत इकंगी पालिस्यो रे, ईसर जिन जिनराज।
ज्ञानसार नैं तौ हुस्यै रे, निश्चै शिवपुर राजो रे ॥१०॥कि०॥

१७ ॥ श्री वीरसेन जिनस्तवन ॥

राग—(हियरे जगतगुरु शुद्ध समकित नीमो आपियै)

मैं मांडी अति गति घणी हो जिनजी,
छोड़ दिया छै पाव।
इण खोटे पंचम अरै हो जिनजी, तुम हाथे निरमाव॥१॥
सुण रे दयाल राय, मुझ महिर निजर भर निरखियै। ·
तुझ सुनिजर हो तुझ सुनिजर साम कै,
मेघ अमी घण वरसियै ॥२॥सु०॥
जे पोतानो भाजनौ हो जिनजी, तेहथी अधिको हूंस।
कीनी पिण नवरै पड़ी हो जिनजी,
कूड़ कहूं तौ सूंस ॥३॥सु०॥
आपमती मानूं नहीं हो जिनजी, केहनी हितनी सीख।
हित करणी नहीं आदरूं हो जिनजी,
न भरूं हित मग वीख ॥४॥सु०॥

आंघो भींत वण्यो रहूँ हो जिनजी,
ज्यूं ही दिन ज्यूं रात।
कहितौ किमपि न भय करूं हो जिनजी,
सम विषमी जे वात ॥५॥सु०॥
पतित उधारण ताहरौ हो जिनजी,
विरुद गरीबनिवाज।
मुझनैं जौ न निवाजस्यौ हो जिनजी,
तौ किम रहसी लाज ॥६॥सु०॥
हूँ सेवक प्रभु तूं धणी हो जिनजी, वीरसेन जिनराय।
ज्ञानसार गुणहीन नी हो जिनजी,
करस्यौ राज सहाय ॥७॥सु०॥

१८॥ श्री देवयशा जिन स्तवन ॥

ढाल—श्री संखेश्वर पास जिनेश्वर भेटिये

आज लगै फल प्रापति सो तुम थी थई,
स्यु करसी परकाश, सहु छानी नहीं।
स्वामी थी नहीं कहियै, तौ केह थी कहूँ,
अवसर पाम्यै आत, वात किम नवि कहूँ ॥१॥
सहु नी सेवा छोड़, साचवी ताहरी,
सी तैं कीध सहाय, सांकड़ै माहरी।

देवल देवल देव, घणा जन पूजता,
दीठा धण कण कंचन आशा पूजता¹ ॥२॥
हूँ तो अवर न मांगू, जो चारित पलै,
तुझ सहायैं मुझ मन नी आशा फलै ।
एहवै अवसर दास नैं, आप न जाणस्यो,
पाम अनंती रिद्ध नैं, कहियैं माणस्यौं ॥३॥
तौं पिण सेवा सारू, पिण गिणतौं नहीं,
साम सेवक संबंध नी, वात न का रही ।
राखेयौं सम्बन्ध, तो आज निवाजियैं,
देवयशा जिन लोक नैं मोसैं² लाजियैं ॥४॥
जे पोते निरंजन, तुमनैं स्युं दियै,
कवडी नहीं जे पास, रीझावी स्युं लियैं ।
पिण जिनराज नी महिर, लहिर एकै हुस्यैं,
ज्ञानसार संसार-निवास थी छूटस्यै ॥५॥

१६ ॥ श्री महाभद्र जिन स्तवनम् ॥

राग— (हियरे जगत गुरु)

मैं तो ए जाण्यौं नहीं हो जिनजी, मुझ थी इवड़ो भेद ।
पुरुषोत्तम थई राखस्यौं हो जिनजी, एहिज मुझ मन खेद ॥१॥

पाठान्तर—१ पूरता २ ताने ।

कहि रे महाभद्र तुझ करुणानिध किण विध कहूँ ।
मुझ ऊपर हो करुणा नहीं अंश कै,
हूँ करुणानिध किम लहूँ ॥२॥क०॥
जो सेवक नै तारस्यौ हो जिनजी, तौ पूरवस्यौ लाड ।
चालें विलग्यों राखमौ हो जिनजी,
तो स्यौ करिस्यौ पाड ॥३॥क०॥
तारचा केता तारसी हो जिनजी, तारै छै जगनाथ ।
आज लगै हो माहरी हो जिनजी, चीटी न चढ़ी हाथ ॥४॥क०॥
हिव वंहिली बाहर करौ हो जिनजी, राख्या चाहौ लाज ।
ज्ञानसार नै तारवा हो जिनजी, ढील न कर जिनराज ॥५॥क०॥

२० ॥ *श्री अजितवीर्य जिन स्तवनम्*
राग—कागजियौ करतार भणी सी पर लिखूं

माहिवियौ साहिवियौ ससनेही किहां निरागियौ रे,
जे चालै तुझ छंद ।
तेहनैं आपै अनंती संपदा रे, हो तोड़ी भव भय फन्द ॥१॥सा०॥
जे नहीं चालै ताहरै कथन में रे, न करै वचन प्रमाण ।
तेहनैं आपै नरक निगोद तूं रे,
निरुपम दुःख नी खाण ॥२॥सा०॥

हूं अपराधी पिण तुम आण नैं रे, सिर पर धारूं साम ।
इम जाणी नें जो तुम तारस्यां रे,
तौ सरसी मुझ काम ॥३॥मा०॥
जो अपराधी मौड़ौ तारस्यौ रे, तुमची दोरप* जोय ।
अरज करूं जिम भीजैं कांवली रे,
तिम तिम भारी होय ॥४॥मा०॥
नींति रीति समझी नैं माहिवा रे, अजितवीरज अरदास ।
धीरज न कीजैं वहिलौ दीजियै रे,
ज्ञानसार शिव वास ॥५॥मा०॥

॥ कलश-प्रशस्ति ॥

(ढाल—शालिभद्र धन्नौ, ऋषिराया)

इम वीसूं जिनवर जिनराया, आतम संपद पाया जी ।
जैन लाभ खरतर अकषाया, अभई अमम अमाया जी ॥इ०॥१॥
रत्नराज गणि गणि मणि शीसे, ज्ञानसार सुजगीसैं जी ।
श्रावक आग्रह प्रेरण फरसैं, भाव सहित अति हींसैं जी ॥इ०॥२॥
संवत अठार अठ्यंतर वरसैं, गौतम केवल दिवसैं जी ।
विक्रमपुर वर कर चौमासैं, तवन रच्या उल्लासैं जी ॥इ०॥३॥

इति पं० श्री ज्ञानसारजिद्गणि कृत विंशति जिन स्तुति सम्पूर्णम ।

---

* कठिनता

बहुत्तरी पद संग्रह

(१) राग—भैरव

कहा भरोसा तन का, अवधू भिन्न रूप छिन जिनका ॥क०॥
छिन में ताता छिन में सीरा, छिन में भूखा प्यासा।
छिन में रंक रंक तैं राजा, छिनमें हरख उदासा ॥क०॥१॥
तीर्थंकर चक्री बलदेवा, इंद चंद्र धरणिंदा।
आसुर सुरवर सामानिक वर, क्या राणा राजिंदा ॥क०॥२॥
संसारी जीव पुदगल राचै, पुदगल धर्म विनाशा।
या संगति तैं जन्म मरण गन, ज्यूं जल बीच पतासा ॥क०॥३॥
भिन्न भाव पुदगल तैं भावै, तूं अनकल अविनाशा।
ज्ञानसार निज रूपे नाहीं, जनम मरण भव पाशा ॥क०॥४॥

२ राग भैरव

एही अजब तमासा, अवधू, जल में वासा प्यासा।
है नांहि है द्रव्य रूप तैं, है है नांही वस्तु।
वस्तु अभावै बंधादिक नौ, संभव नहीं अवस्तु ॥ए०॥१॥
बंध बिना संसारी अवस्था, घटना घटै न कोई।
पुण्य पाप बिण राउ रंक नौ, भिन्न भाव नहीं होई[१] ॥ए०॥२॥

पाठान्तर—१ कोई

सिद्ध सनातन शुद्ध समार्वे, जो निश्चय नय भावें ।
तो बंधादिक नों आरोपण, तीन काल नहिं पावें ॥ए०॥३॥
हृदय कमल कर्णिका भीतर, आतमरूप प्रकाशा ।
वाकूं छोड़ दूर तर खोंजे, अंधा जगत खुलासा ॥ए०॥४॥
सायमई सरवंगी मानें, सत्ता भिन्न सुभावें ।
स्यादवाद रस नों आस्वादी, ज्ञानसार पद पावें ॥ए०॥५॥

३ राग—भैरव

और खेल भव खेल बावरे, आतम भावन भाय रे ॥औं०॥
ऊपत विनाश रूप रति परिणाम, जड़ के गत थित काय रे ।
अविनाशी अनघड चिद्रूपी,
काल तूं न कलाय रे ॥औं०॥१॥
रोग सोग नहिं सुख दुख भोगी,
जनम मरण नहिं काय रे ।
चिदानद घन चिद आभासी,
अभई अमम अमाय रे ॥औं०॥२॥
गज सुकुमालादिक मुनि भायौ,
जड़ संबन्ध विभाय रे ।
ततखिण केवल कमला अविचल,
अचय शिवपद पाय रे ॥औं०॥३॥

इत्यादिक दृष्टान्त घनेरे, केते लौं कहिवाय रे।
आतम तत वेदी तप निव नी,
अन्य श्रमण न कहाय रे ॥औ०॥४॥
ज्ञान सहित जो किरिया साधै, आतम बोध लखाय रे।
ज्ञान बिना संयम आचरणा,
चौगति गमण उपाय रे ॥औ०॥५॥
तूं जो तेरे गुण को खोजै, तो मैं कछु न सगाय रे।
ज्ञानसार तुझ रूपे अविचल[1],
अजर अमर पद राय रे ॥औ०॥६॥

(४) राग—भैरव।

पर[2] परणमन विभावै, आतम अजा कृपाणी न्यायै ॥प०॥
मिथ्यात्वादि हेतुमय आतम, आपही बंध उदीरै।
आप ही उदयैं सुख दुख वेदै, गत्यागति थित भीरै ॥प०॥१॥
अैसो मूढ़ न अवर अगूढ़न, आतम धरम न सूझे।
सिद्ध सनातन तूं सवकालै, फिर क्यूं करम अरूझै ॥प०॥२॥
सत्ता द्रव्य सुभाव लछन तें, राम अनादि सिद्ध तूं ही।
निज सुभावमय ज्ञानसार पद, काल लब्धि सिद्ध सूं ही ॥प०॥३॥

---

१ अनचल २ पर परिणति मन भाय।

(५) राग—भैरव।

जब[1] जड़ धरम विचारा, अवधू तब हम तें जड़ न्यारा।
छेदन भेदन भव मय रूपी, जड़ कै नास विकारा।
शब्द रंग रस गंध फरसमय, उपत सटित आकारा[2] ॥ज०॥१॥
अन्य सयोगी जौ लौं आतम, तौ लौं हम सविकारा[3]।
पर परणित सैं भिन्न भए जब, तब विशुद्ध निरधारा[4] ॥ज०॥२॥
बंध मोख नहीं तीनूं कालैं, नहीं हम जड़ संबन्धी।
ज्ञानसार जब रूप निहारयौ, तब निहचै निरबन्धी[5] ॥ज०॥३॥

टिप्पणी—

१ जब नाम=जिवारै जड़ रो धर्म सडण पडण विध्वंश छै ते धर्म विचारता नै म्हारो चेतनत्व धर्म छै, तेथी हम से जड़ न्यारा।

२ उपजणो, सटित-सड़णो, आकार स्वरूप ऐ इणारा धर्म छै

३ अन्य म्हांसूं जो जड़ादिक एण जड़ रा म्हे संजोगी हुवा तिवारै म्हारो आत्मा सविकारा—विकार सहित हुओ, शब्द, रूप, गंध, स्पर्श रो वांछिक हुओ।

४ तिके हीज म्हे पर परणित से भिन्न भए, जब नाम=जिवारै तब नाम=तिवारै, निरधार निश्चे संघाते विशुद्ध छां, निर्मल छां।

५ निर्मल स्वरूपवान हुवां छतां म्हे मनन कीनो नाम=" युक्तिभिः पर चिंतनं मननं " म्हारै बन्ध मोक्ष तीनूं कालै ही

(६) राग—भैरव

चेतन[1] धर्म विचारा, अवधू तब हम तैं जड़ न्यारा ॥
मिथ्यात्वादि चार नहीं कारण, बंधन हेतु हमारै ।
चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान सकति विस्तारै[2] ॥चे०॥१॥
ज्ञान[3] सकति निज चेतन सत्ता, भाखी जिन दिनकारै ।
सत्ता अचल अनादि अबाधित, निश्चय नय अवधारै[4] ॥चे०॥२॥

नहीं म्हारै जड़ सूं किसौ संबन्ध इसो विचार म्हे म्हांरो ज्ञानसार आत्मिक स्वरूप म्हे निहारयो देख्यो, तब नाम= तिण विरियां म्हे विचारयो म्हेतो तीनूं काले निरबन्धी छां। इति सटंक।

१ आत्मत्व धर्म सम्बन्धी कथन आत्मा रो आत्मत्व धर्म कहो अथवा चेतनत्व धर्म कहौ अवधू नाम=हे आतमाराम! "तब हमतैं जड़ न्यारा" म्हारै जड़ सूं तीनूं ही काल में असंबन्ध छै।
२ मिथ्यात्वाविरत कषाय योगाः ए ज्यो च्यारै ही बंधन रा कारण छ सो हमारै नाम=म्हारै नहीं। कारण नाम=कारण नहीं। क्युं कारण नहीं ? म्हे तो चेतनता परिणामी छां। चेतना धर्मवन्त छतां छां तिण सूं म्हे तो ज्ञान सकति नै हीज विस्तारण करां इसा छतां म्हारो तो ओ हीज धर्म छै।
३ पूर्व कही जो ज्ञानशक्ति ते निज चेतन सत्ता निज नाम आत्मिक स्वरूपे सहित जे चेतन, तेनी सत्ता नाम="सत्तेव तत्त्व" जिन दिनकारै नाम=जिन सूर्यें एव एव उक्तं ते सत्ता केहवी छै ? अचल छै सूक्ष्म निगोदें पिण ते चली नहीं यथा "अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाडियोचिट्ठइ" इति सिद्धान्त वचन प्रमाणयात् अतएव अनादि अबाधित पीड़ा रहित।
४ निश्चय नयैं अवधारण कीनौ।

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु थी, तुझ मुझ अंतर एतो ।
तूं परमातम हूं बहिरातम[१] तम रवि अंतर तेतो ॥चे०॥३॥
यातें दास भाव लखि अपनौ, कृपा कसर नहिं कीजैं ।
दीनबन्धु हे अन्तरयामी ! ज्ञानसार पद दीजैं ॥चे०॥४॥

(७) राग भैरव

जब हम[१] रूप प्रकाशा, अवधू जगत तमाशा भासा ॥ज०॥
टांगां वस्त्र न सिर पर भागी, तामें भूखा प्यासा ।
रोग जरजरी देही जीरण, ऐतैं पर फिर हासा[२] ॥ज०॥१॥
रूप रंग नहीं तनुबलरस्या, भिक्षासन नीरासा ।
सानुरूप वनिता सूं संगति, फिर हासैं परिहासा ॥ज०॥२॥
चाहिये रदन तहां कूं[३] हासा, मोह छाक छकियासा ।
ज्ञानसार कहि जगवासी की, बाहिर बुद्धि प्रकाशा ॥ज०॥३॥

(८) राग—भैरव

मनुग्रा वस नहीं आवैं, अवधू कैसे रोय दिखावै ॥म०॥
ज्ञान क्रिया साधन तें साध्यौ, सातर में न सतावै ।

---

५ यत्सत्त्वे यत्सत्व मन्वयः तदभावे तदभावो व्यतिरेक । तूं परमातम हूँ बहिरातम तारैं मारैं सूर्यं अधारैं जिम अतरो ।

६ "मोह छाक छकि" नाम=ऊपर कर फिर गई । फिर आशा नाम= तृष्णा ।

पाठान्तर—१ जग २ फिर एते पर हासा ३ क्यूं ।

सोवत जागत वैठत ऊठत, मन मानैं जिह जावैं ॥म०॥१॥
आश्रव करणी में आपेही, विण प्रेरयो उठ धावैं ।
संजम करणी जो आरोपूं, तो अत ही अलसावैं ॥म०॥२॥
नौ इन्द्रिय संज्ञा है याकूं, पै सबकूं धूजावैं ।
इनकूं थिर कीना सो पुरपा, अन्य पुरपा न कहावैं ॥म०॥३॥
सुर नर मुनिवर असुर पुरंदर, जो इनके वश आवैं ।
वेद नपुंश इकेलो अनकल, खिण में रोय हसावैं ॥म०॥४॥
सिद्ध साधनै सब साधन तैं, एही अधिक कहावैं ।
ज्ञानसार कहि मन वश याकै, सो निहचै शिव पावैं ॥म०॥५॥

(६) राग—विभास

भोर भयो अब जाग बावरे ॥भो०॥
कौन पुण्य तैं नर भव पायो,
क्यूं सूता अब पाय दाव रे ॥भो०॥१॥
धन वनिता सुत भ्रात तात को,
मोह मगन इह विकल भाव रे ।
कोय न तेरउ तू नहीं काकउ,
इस संयोग अनादि सुभाव रे ॥भो०॥२॥
आरज देश उत्तम गुरु संगत,
पाई पूरव पुण्य प्रभाव रे ।

ज्ञानसार जिन मारग लावउ,
क्यूं डूबै अब पाव नाव रे ॥मो०॥३॥

(१०) राग—पट

जाग रे सब रैन विहानी।
उदयो उदयाचल रविमण्डल,
पुण्यकाल क्यूं सोवै प्राणी ॥१॥
कमल खण्ड वन-वन निरूमाने,
अजहूँ न तेरी दृग उघरानी।
चेतन धर्म अनादि तुमारौ,
जड़ संगत तैं सुध विसरानी ॥जा०॥२॥
तुम कुल दोय अवस्था पइयै,
नींद सुपन ए जड़ निसानी।
आतमरूप संभार आपनौ,
कब तुमरै घर कुमति घरानी ॥जा०॥३॥
सुधि बुधि भूलै निरुपम रूप की,
यातैं घट बढ़ होत कहानी।
निश्चै ज्ञानस्वरूप तुमारौ,
ज्ञानसार पद निज राजाधानी ॥जा०॥४॥

(२१) राग—वेलावल

मेरा कपट महल विच डेरा।
आतमहित चित नित प्रति चाहूँ, न तजुं सांझ सवेरा ॥मे०॥१॥
सोवत बैठत ऊठत जागत, याको खरच घनेरा।
मरणपकंठै आय लग्यो हूँ, अब क्युं हिव अधिकेरा ॥मे०॥२॥
द्वार प्रवेश जिन मत संबंधी, लिंग क्रिया अनुसेरा[1]।
दान शील तप भाव उपदेशन, च्यार साल चौ फेरा ॥मे०॥३॥
प्रवृत्ति निवृत्ति बाह्याभ्यंतर[2], जालीए सुविसेरा।
प्रगट विरुद्ध जिन चरण प्रवर्तूं, एह झरोख झुकेरा[3] ॥मे०॥४॥

टिप्पणी—१ 'लिंग क्रिया अनुसेरा' नाम लिंग रो ही ज अनुसरण छै क्रिया रो ही अनुसरण छै नाम=प्रवर्त्तन छै किञ्चिदिति शेषः।

२ साधु धर्म सम्बन्धित प्रवृत्ति निवृत्ति इतरै साधु धर्म में प्रवर्त्त न सकूं बाह्य सम्बन्धी तो म्हारै प्रवर्ती छै, अभ्यंतर सम्बन्धी निवृत्ति छै। इतरै साधुपणो म्हारै देखावणरूप तो छै, पालण रूप नथी।

३ परमेश्वरै भाख्यो जे आचारांगादि में साधुपणै रो प्रवर्त्तन ते प्रवर्त्तन थकी प्रगटपणै विरुद्ध प्रवर्त्तूं छूं। एह नाम=तद्रूप "झरोख झूकेरा" नाम=महिल नो झरोखो झुक रह्यो छै।

मेरे पद लखि भरम धरै कोउ, आतम तत्व उजेरा ।
निहचै घट तट प्रगट भया तब, ऐसा वचन उचेरा[४] ॥मे०॥५॥
कपट कदाग्रह लगि गच्छवासै, तज गच्छ वास वसेरा ।
हिरदै नयण जो मीका निरखूं, इह किंचित अधिकेरा ॥मे०॥६॥
आतम तत्व लच्छन नवि दीसै, जिह तिह ममत घनेरा ।
ज्ञानसार निज रूप न निरख्यो, तेतैं भव उरझेरा ॥मे०॥७॥

(१२) राग—वेलावल

जिन चरणन को चेरउ, हूँ तो जिन० ॥
आगै पीछै तूंहिज तारिस, तो क्यूं करै अबेरो ॥जि०॥१॥
चरमावर्त्तन चरम करण विन, कैसे मिटे भव फेरो ।
तूं स्यूं तारिस तूं तारक स्यो, "जो हूं करिस निवेरो[५] ॥जि०॥२॥

४ "मेरा पद" म्हारा पद, लखि नाम=देखन कोई प्राणी भरम धारै इसा इणरे मुख स्युं निरासी वचन निरख्या तौ दीसै छै इणनै आत्मतत्त्व रो निश्च संघाते एना घट तट में प्रगट थयौ जणायछे, पर ए कथन मात्र छै, स्वरूप ज्ञानाभावात् ।

५ परमेश्वर स्यूं प्रत्युत्तर, "जो हूँ करिस निवेरौ" नाम=हूँ हिज चरमावर्त्तन करिस्युं, हूँ हीज चरम करण करिस्युं तो हे परमेश्वर तूं तारक स्यानो ? नाम=केनो, तूं स्यानो तारक ? "तिन्नाणं तारयाणं" ए विरुद थारौ स्यानौ ?

निज सरूप निश्चय नय निरखूं[२] शुद्ध परम पद मेरो ।
हूं ही अकल अनादि सिद्ध हूं,
अजर न अमर अनेरो ॥जि०॥३॥
अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु लखि[३] मेट रूप अंधेरो ।
परमातम अंतर बहिरातम, सहिज हुओ सुरकेरो ॥जि०॥४॥

---

२ "निज सरूप निश्चै नय निरखूं" नाम=म्हारो स्वरूप निश्चै नय निरखूं तो शुद्ध परम पद म्हारो हीज छै अकल अनादि सिद्ध सो पिण हूं हीज। "अजर न अमर अनेरो," नाम= अजर अमर पण अनेरा। न नाम=अन्य नहीं।

३ अहो परमेश्वर ! अन्वय हेतु दूजो व्यतिरेक हेतु ए बे नो लक्षण लखि नै, मेट नाम=मिटायो, मैं रूप सम्बन्धी अंधेरो अत्र। अन्वय लक्षणमाह—यत्सत्वे यत्सत्त्वमन्वयः स्वरूप सत्वे परमात्मता सत्वं ! अथ व्यतिरेक लक्षणमाह—"तदभावे तदभावो व्यतिरेकः स्वरूपाभावे परमात्मता भावः" मारे विषै स्वरूपनो अभावी पणो तेथी हूँ बहिरातमा तेथी तूं परमात्मा छै। हूँ बहिरातमा छूं तेथी तूं साहिब, हूँ तारो चेरो छूं, पर दीनबन्धु तारो बिरुद छै। तेथी तुमे पतित ऊपर महिर निजर नो भराव कर, तइय तो "ज्ञानसार पद मेरो" सिद्ध पद नेरो नाम=नैड़ो हीज छै। इति सटंक।

तूं परमातम हूँ बहिरातम, तूं साहिब हूँ चेरो ।
दीनबन्धु कर महिर निजर भर, ज्ञानसार पद मेरो ॥जि०॥५॥

(१३) राग—वेलावल

कंत कह्यो हू न मानैं, माई मेरो कंत० ।
कित्ती वेर कहि कहि पचि हारी,
प्रगट कह्यो कहि छानैं ॥मा०॥१॥
समझइयेगो सो सिर सजनी, क्या कहियै मईया नैं ।
दुरी बात अपने भरता की, कहियै कौन बहानैं ॥मा०॥२॥
हारी वार वार कहि सजनी, तब प्रगटी कहिवा नैं ।
माया ममता कुबुद्धि कूबरी, उनके संग डुरानैं ॥मा०॥३॥
निज स्वरूप बालक नहिं जानैं, पर संगति रति मानैं ।
मयैं स्वरूप ज्ञान तैं भगिनी, अपने पर पहिचानैं ॥मा०॥४॥
तब तेरे परसग परैगो, क्युं एतौ दुख मानैं ।
ज्ञानसार ते हिल मिल खेलै, सिद्ध अनंत समानैं ॥मा०॥५॥

(१४) राग—वेलावल

अनुभव हम कब के संसारी ।
मर जनमे न अनादि काल में, शिवपुर वास हमारी ॥अ०॥१॥

राग दोष मिथ्या की परिणित, शुद्ध सुभाव न समावै ।
अनकल अचल अनादि अबाधित, आतम भाव समावै ।।अ०।।२।।
बंध मोख नहीं तीनूं कालैं, रूप न रंग न रेखा ।
निश्चै नय जिन आगम सेती, शुद्ध सुभाव परेखा ।।अ०।।३।।
काय न माय न जाय न आय न, भाय न माय न जाता ।
शुद्ध सुभावें ज्ञानसार पद, पर[1] भावे पर नाता ।।अ०।।४।।

(१५) राग—वेलावल

अनुभव हम तो राउ रै लोरैं ।
फौजवगस के लरके होकर, बारगिरी में दोरैं ।।अ०।।१।।
देशविरति जीवाई यामैं, क्या खावैं क्या जोरैं ।
गांठ गरथ घर के घोड़ बिन, कैसैं अरि दल तोरैं ।।अ०।।२।।
घर-बिकरी सब बेचै खाई, हाथ हलावत डोरैं ।
ज्ञानसार जागीरी लेकर, कैसे मूंछ मरोरैं ।।अ०।।३।।

(१६) राग—वेलावल

ज्ञान कला गति मेरी, मेरी, यातैं भइय अंधेरी ।।मे०।।
मिथ्या तिमिर भ्रमर पसरन तैं,
सूझत नहीं घर सेरी ।।मे०।।१।।

पाठान्तर—१ विवहारे

भ्रम भूला इत उत ढंढोरु, है चेतनता नेरी।
या विन खबर न अपनें पर की, परत सवेर अवेरी ॥मे०॥२॥
चरमावर्तनादि कारण कर, पाकेगी भव फेरी।
ज्ञानसार जब दृष्टि खुलेगी, अजर अमर पद केरी ॥मे०॥३॥

(१७) राग—वेलावल

ज्ञान पीयूष पिपासी, हम तो ज्ञान ॥०॥
अनंत काल भव भ्रमण अनंतै, ए आशा नवि घासी ॥ह०॥१॥
मिथ्यात्वादि बंध कारण मिल, चेतनता जड़ भासी[1]।
खीर नीर सप्रदेश अव्यापक, त्यों व्यापक अविभासी ॥ह०॥२॥
भव परिणित परिपाक काल मिल, चेतनता सुप्रकाशी[2]।
ज्ञानसार आतम अमृत रस, तृपत[3] भए निरआशी ॥ह०॥३॥

टिप्पणी—

१—जड़ करनै भासी, नाम=मिश्रित हुई, पर क्षीर नीर छै, ते सप्रदेशो अव्यापक छै, प्रदेशो भिन्न-भिन्न छै। खीर रो प्रदेश भिन्न छै, नीर रो प्रदेश भिन्न छै त्यों अविभासी छै नाम=चेतनता जड़ करनं भासी छै नाम=चेतनता नें जड़ ना दलिया न संयोग संबंध छै पिण समवाय सबंध नहीं।

२—चेतन रै विषै चेतनत्व धर्म तेहनै विषै रही चेतनता सो सुप्रकाशी जड़ कर नै भिन्न थई गई स्वरूपज्ञान थई।

३—अनन्त ज्ञान दर्शनादि के कर नै तृप्त थई गया संपूर्ण पामवा थी, अतएव निराशी।

(१८) राग—वेलावल

पर घर घर कर माच रह्यौ री ॥प०॥
किती वेर गहि गहि करि छारचो,
कैसे अपनौ याति कह्यो री ॥प०॥१॥
मर जनम्यौ विरच्यौ नहीं तब ही,
कबही न परमव संग वह्यौ री।
आयु भाड़ौ दीनो जेतैं, तेतैं तुझकूं वसन दयौ री ॥प०॥२॥
तूं न सरीर सरीर न तेरो, सोपाधें निज मान रह्यौ री।
ज्ञानसार निज रूप निहारी,
अकल अमर पद अमर भयो री ॥प०॥३॥

(१९) राग—वेलावल

साधो, क्या करिये अरदासा, वे जग पूरक आसा ॥सा०॥
मानव जनम देश कुल आरिज, जनम दिया जिन खासा ॥सा०॥१॥
वंश उकेश लिंग जिन दरशण, रूप रंग बल भासा।
प्रगट पंच इन्द्री नर हुन्दर[1], पूरण आयु प्रयासा ॥सा०॥२॥

पाठान्तर—१ हुनर।

याकी महिर बाहिर खीरोदधि, रजधानी चौरासा ।
शिवनगरी अभिव्याप लोक की, राज दियौ रिद्धरासा ॥मा०॥३॥
याके अंग रंग की संगति, जग करता सुप्रकाशा ।
ज्ञानसार निज गुण जब चीने, हम साहिब जड़ दासा ॥मा०॥४॥

(२०) राग—रामकली

अनुभव ज्ञान नयन जब मूंदी, तब तैं भई चकचूंदी ॥अ०॥
करण कषाय अव्रत जोगादिक, सरब विरत रति छूंदी ॥अ०॥१॥
मूल निधान अनादि काल की, मोकूं सूझत नाहीं ।
भ्रम भूलौ इत उत टंटोरी[1], है इह ही की इहां ही ॥अ०॥२॥
सुगुरु कृपा करि प्रवचन अंजनि, वाणि सिलाई आंजे ।
हृदये भीतर ज्ञानसार गुण, सूझै सहिज समाजै ॥अ०॥३॥

(२१) राग—रामकली

अवधू घरणी विन घर कैसो ॥अ०॥
दीपक विन ज्यूं महिल न शोभै, कमल विना जल जैसो ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ ढंढेरू ।

गृह कारज घरणी अधिकारी, पाणिर्नीय पथ गावै ।
यामैं झूठ भूल नहिं कहिहूं, सोंगन कैसे खावै ॥अ०॥२॥
सरधा कहि चलियै ममता घर सपरिवार सू मिलियै ।
विरह दुसह ज्ञानसार ज्ञान तैं, अपने आतम कलियै ॥अ०॥३॥

(२०) राग—रामकली

अवधू हम बिन जग अंधियारा, है हम तैं उजियारा ॥अ०॥
चेतन ज्योत अखण्डित व्यापक, अप्रदेश अविशेषैं ।
प्रतिबिंबित छगादिक मणिमय, पुदगल धर्म विशेषैं ॥अ०॥१॥
अप्रदेश सप्रदेशी पृच्छा, हैं नांहि है देशा ।
रूपारूपी की पृच्छायैं, रूप अरूप प्रवेशा ॥अ०॥२॥
रूपी द्रव्य संजोगै रूपी, अवर अनादि अरूपी ।
रूपारूपी वस्तु अभावैं, भंग संग न प्ररूपी ॥अ०॥३॥
सत्ता भिन्न सुभावै जैनी, सरवंगे समभावै ।
ज्ञानसार जिन वचनामृत नौ, परमारथ पथ गावैं ॥अ०॥४॥

(२१) राग—रामकली

माई मेरी आतम अति अभिमानी ।
मैं तो मन वच क्रम रस राती,
कीरपि[1] किमपि न आनी ॥मा०॥१॥

अर्थ—१ दया

आभूषण तन सब रंग मांड्यों, प्रीतम गति न पिछानी।
ज्युं ज्युं हूँ हित नित प्रति चाहूँ, त्युं त्युं करत रुपानी ॥मा०॥२॥
कैसें काज निभेगी घर को, क्युं कर निसपति ठानी।
ज्ञानसार निरधार निगम गति, पय पानी को पानी ॥मा०॥३॥

(२४) राग—रामकली

अनुभव आतम राम अयाने, सो तुम तैं नहि छानै[1] ॥अ०॥
गये अनादि काल दर पुश्ती[2]; खोलै तीन खजाने[3] ॥अ०॥१॥
पर परिणिति के हाथ आपनी, पूंजी सूंपै छानै।
घटति रकम जबाब न पूछै, खाता मेल न जाणै ॥अ०॥२॥
बाकी रकम और के खातै, कोई सूं न सरूझै।
देसावर आसामी काची, सो तो मूल न सूझै ॥अ०॥३॥
कैसे काम रहेगो इनको, रखे धको नहिं खावै।
ज्ञानसार जो पूंजी सूंपै, तो लज्जा रहि जावै ॥अ०॥४॥

टिप्पणी १ हे अनुभव नाम=आत्मिक स्वरूप चिन्तवन करत्यां छतां अनुभौ प्रतै स्वरूप चिन्तवन-रो वाक्य छै। 'आतमाराम अयाने' नाम=म्हारो आत्मा अजाण छै सो तुमतैं नहीं छानै नाम=थांसूं छानो नहीं।
२ दरपुश्ती नाम=सात पीढी रा।
३ खोले तीन खजाने नाम=ज्ञान दर्शन चारित्र रा।

(२५) साखी

आतम अनुभव अंब को, नवलो कोई सवाद ।
चाखैं रस नहीं संपजै, ज्ञानै गति निरबाध ॥१॥

राग—सारंग रामकली

अनुभव अपनी चाल चलीजैं ।
पर उपगारी विरुद तुमारो, याकूं क्यूं विसरीजैं ॥अ०॥
तुम आगम विन हमकूं कबहि न, प्रीतम मुख निरखीजैं ।
आज काल आवन नहिं कीजै, कैसे कर जीवीजैं ॥अ०॥२॥
अब तो वेग मिलाय पिया कूं, किंचित ढील न कीजें ।
ज्ञानसार जो न बनै तुम तैं, तो नौ उपर दो+ दीजैं ॥अ०॥३॥

(२६) राग—सारंग

अनुभव ढोलन कब घर आवै ॥अ०॥
शशि मुख वचनामृत विन कैसे, हृदय कमल विकसावै ॥अ०॥१॥
मोहनीय के लरका लड़की, हँस हँस गोद खिलावैं ।
चौगति महिल कुमति रति रस गति, रमते रैन विहावै ॥अ०॥२॥

+ ६ और २=११ होना अर्थात् भाग जाना ।

झूठी बात तुमारे आगै, कैसे कर बतलावै ।
सुमता नाम सुनत ही श्रवनन, आतम अति कटि जावै ॥अ०॥३॥
कहा कहै जो सुनै सयानी, मोह मन न मिलावै ।
ज्ञानसार आपा पर चीने, विन तेड़ै उठ आवै ॥अ०॥४॥

(२७) राग—सारंग

प्रीतम पतिया क्यों न पठाई ॥प्री०॥
लाडी संगत अति रति राखे, यातैं हम विसराई ॥प्री०॥१॥
कुलटा कुटिल की मोहन संगति, इन तैं साम सुहाई ।
फल किंपाक समो आसादन, परिणामे दुखदाई ॥प्री०॥२॥
अंत विरानी सैं घर न वसै, समझ सुचेतन राई ।
ज्ञानसार सुमता संजम घर, हिल मिल प्रीति बढाई ॥प्री०॥३॥

(२८) राग—सारंग-वेलावल

प्रीतम पतियां कौन पठावै ।
वीर विवेक मीत अनुभो घर, तुम विन कबहुँ न आवै ॥प्री०॥१॥
घर नो छइयो घरटी चाटै, पेड़ा पाडोसण खावै ।
कबहुँ न सुजरो घर घरणी नो, पर घर रैन विहावै ॥प्री०॥२॥

ए सब संदेसे लिख कागद, अनुभौ हाथ वचावै ।
ज्ञानसार एते पर नावत, तौ कहा सेय बनावै ॥प्री०॥३॥

(२६) राग—सारंग

नाथ विचारौ आप विचारौ ।
दागी तैं हित नित रति खेलैं, यामें शोभ तुमारी ॥ना०॥१॥
घर अपछर सी सुन्दर नारी, छोरी खेलत जारी ।
अभख भखै क्रूर तज सूकर, त्यों यानैं मुख मारी ॥ना०॥२॥
संयम रमणी रांगी आतम, पर सगत अति ख्वारी ।
देख देख निज घर घरणी सूं, प्यार करत अणपारी ॥ना०॥३॥
सुमति पठायौ अनुभौ आयौ, पर घर परठ निवारी ।
सुमता घर में ज्ञानसार कूं, ल्यायो लगिय न वारी ॥ना०॥४॥

(३०) राग—सारंग

नाथ तुमारी तुमही जाणौ ॥ना०॥
घर अपछर सी घरणी परहर, पर रमणी रति माणौ ॥ना०॥१॥
कर पीड़न कर पीहर घर धर, अजहूँ न कीनौ आणौ ।
अति आग्रह परणी घर घरणी, क्यूं एती अति ताणौ ॥ना०॥२॥

कंत अंत घर बिन नहीं सरसी, निहचै आप पिछाणी ।
ज्ञानसार एती सुनि आए, बीतत दुख विसराणी ॥ना०॥३॥

(३१) राग—सारंग

माई मेरो कंत अत्यन्त कुनाणी ॥मा०॥
पर परणित से नाता जोरत, तोरत निज तैं ताणी ॥मा०॥१॥
सुमति विरत्ति श्रद्धा गुण परखम, बोलत अबली वाणी ।
माया ममता अविरति कथने, करिय कुमति पटराणी ॥मा०॥२॥
याह मेरे वैरी ज्याह, मिलत आपणी जाणी ।
आणै प्रीति बणाऊं कैसैं, ज्ञानसार रस दाणी[1] ॥दा०॥३॥

(३२) राग—सारंग

अनुभव यामैं तुमरी हांसी ॥अ०॥
मीत अनीत रीति नहीं हटको, पायो कहा स्याबासी ॥अ०॥१॥
पर घर वर घर भटकत डोरत, कैसी पदवी पासी ।
कौन पिता कुल किनको बैटा, संग रमै सो दासी ॥अ०॥२॥

पाठान्तर—१ राणी

कर उपाय मिथ्या संग टारौ, नहीं भव भव भटकासी ।
"ज्ञानसार" मिल मिल समुझावै,
सहिजैं समझै जासी ॥अ०॥३॥

(३३) राग—सारंग

कहा कहियैं हो आप सयान तैं ॥क०॥
अंत दुखाय कह्यो नहीं जायै, प्यारी अपनी थांन तैं ॥क०॥१॥
अन्योक्ति दृष्टान्त सुनावै, कोई घाट बयान तैं ।
एते पर भी मूर न बूझै, प्रगट देख अखियान तैं ॥क०॥२॥
उद्यम सिद्ध निदान सरमवर, सुमति कहै सखियान तैं ।
आय मिलै अब ज्ञानसार तैं, कौन गरज लजियान तैं ॥क०॥३॥

(३४) राग—सारंग

प्रभु दीनदयाल दया करिये ।
मैं हूं अधम तुम अधम उधारण,
अपनैं विरुद कूं निरवहियैं ॥प्र०॥१॥
अधम उधार अधमउधारण, विरुद गह्यो चित चितइयैं ।
मोहि उधार प्रतच्छ प्रमाखे, विरुद मनुज लोगे छइयैं ॥प्र०॥२॥

तो सी तारक अधम न मोसों, उधरन कस क्यूं ना करिये ।
ज्ञानसार पद राज विराजै, महिजें भवसागर तरिये ॥प्र०॥३॥

(३५) राग—आसा रामगिरी

अवधू ए जगका आकारा, कोई करचा न करणहारा ॥अ०॥
पृथिवी पाणी पवन अकाशा, देखत होत अचंभा ।
इत्यादिक आधेयें परगट, दीसत कोय न थंभा ॥अ०॥१॥
या भरमें भूलै जगवासी, करता कारण गावै ।
कम्म रहित जग करता कारक, कैसे कर संभावै ॥अ०॥२॥
करतु अकरतु अन्यथा करणौ, समरथ साहिब माया ।
घट पट घटनायें पुन पटवी, या रच जग निरमाया ॥अ०॥३॥
करची न कोई करैय न करसी, एह अनादि सुभावै ।
विनस्यौ कदे ही न विनसे ए जग, जिन आगम जिन गावै ॥अ०॥४॥
अगन शिला पंकज नहीं प्रगटै, शसिक ऊंठ नहीं सींगा ।
आकासे न हुवै फुलवाड़ी, कैसी माया अंगा ॥अ०॥५॥
कृत विनास अकृत अविनासी, शब्द प्रमाण प्रमाणौ ।
ए लक्षण तुमरी लछणायैं, शंकर दूषण आणौ ॥अ०॥६॥
अन्त आद विन लोक न कहिस्यौ, पण अहिरण संडासी ।
प्रथम पछै घटना नहिं संभव, समकालै ही घड़ासी ॥अ०॥७॥

प्रथम पछै पुरसा नहीं नारी, तैसें इएडा पंखी।
बीज विरख नहीं पाछैं पहिला, है समकाल अपेखी ॥अ०॥८॥
लोक अनादि अनंत भंग थी, है षट द्रव्य वसेरा।
याकैं अंते ज्ञानसार पद, सब सिद्धं का डेरा ॥अ०॥९॥

(२६) राग—आसावरी

अवधो हम बिन जग कछु नाहीं,
अ० जगत हमारे माहीं ॥अ०॥
हम ही नैं कीया संसारा, हम संसार की पूंजी।
पांच द्रव्य हमरो परिवारा, हम बिन वस्तु न दूजी ॥अ०॥१॥
उपति नाम थिति मय ससारा, सो हमरो व्यवहारा।
उपति खपत थिति करता हम हो, यातैं हम संसारा ॥अ०॥२॥
एक कला हमरी हम छोड़ैं, सब जग कूं निरमावैं।
वाही कला हम मांहि मिलावैं, हम में जगत समावैं ॥अ०॥३॥
एक कला व्यापी जो हम घर, यातैं असंख विभागैं।
हमरो सरब कला व्यापी घर, ज्योति अखंडित जागैं ॥अ०॥४॥
ज्ञानसार पद अकल अखंडित, अचल अरुज अविनासी।
चिदानंद चिद्रूप परमपद, चिदघन घन अभिध्यासी ॥अ०॥५॥

३७ राग—आसा

अवधू आतम तत गति बूझै, आपही आप सूझै ॥ अ०॥
आतम देव धम्म गुरु आतम, आतम सिष निष शिक्षा ।
आतम शिवपद करता करणी, आतम तत्व परीक्षा ॥अ०॥१॥
आतम गुण थानक आरोहण, क्षायिक चरण वितरणी ।
आतम केवल दंसण नाणी, अचल अमर पद धरणी ॥अ०॥२॥
अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधू संयमवंता ।
आतम मेरौ ज्ञानसार पद, अव्याबाध अनंता ॥अ०॥३॥

(३८) राग—आसा

अवधू या जग के जगवासी, आस्या धार उदासी ॥अ०॥
जलधि उलंघै गिरोय न अंगै, जिय जोखम में पैसे ।
जो निरआसी सुख न उदासी, दिल चाहै उठ बैसे ॥अ०॥१॥
वैदेहक विन जो निरआसी, सोई विडंबन मासी ।
याकी आस्या विन आस्या नो, बीज कौन ऊगासी ॥अ०॥२॥
कामादिक सब याकी संतति, पर परणित की मासी[1] ।
यातैं योगी सोय सरोगी, जौ आस्या नहीं घासी ॥अ०॥३॥
ब्रह्मरंध्र मधि अनहद धुनि कूं, सहिजैं आप घुरासी ।
आतम परमातमा अनुसर, ज्ञानसार पद पासी ॥अ०॥४॥

१ भासी

(३९) राग—आसावरी

अवधू आतम भरम भुलाना, याने आतम तत न पिछाना ॥अ०॥
आतम तत में भ्रम तम नाहीं, निज सरूप उजियारा।
जनम मरण गति आगति नाहीं, शिवपद बिच बसियारा[1] ॥अ०॥१॥
जिह नहिं रोग सोग नहिं भोगा, अचल अनादि अगाधा।
याको अभिधा ज्ञानसार पद, अक्षय अव्याबाधा ॥अ०॥२॥

(४०) राग—आसा

अवधू सुमति सुहागिनी जागी, कुमति दुहागिन भागी।
अविसंवाद पक्ष फल अन्वित, जिन आगम अनुयाई।
ऐसे शब्द अरथ को प्रापति, याको सगति पाई ॥१॥
विध प्रतिषेध करी आतम थी, रूप द्रव्य अविरोधी।
ऐसो आतम धरम गहण विध, ग्रहीयो गहण विरोधी ॥२॥
न रह्या भरम भया उजियारा, तदगत धरम विचारा।
ज्ञानसार पद निहचै चीना, जलमय जल व्यापारा ॥३॥

(४१) राग—आसा

अवधू आतम रूप प्रकासा, भरम रह्या नहीं मासा ॥अ०॥
नहीं हम इन्द्री मन वच तन बल, नहिं हम सास उसासा ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ बास तुम्हारा

क्रोध मान माया नहीं लोभा, नहीं हम जग की आसा ।
नहीं हम रूपी नहीं भर रूपी, नहीं हम हरख उदासा ॥अ०॥२॥
बंध मोक्ष नहिं हमरे कबही, नहीं उतपात विनाशा ।
शुद्ध सरूपी हम सब काले, ज्ञानसार पद वासा ॥अ०॥३॥

(४२) राग—आसा

अवधू आतम धरम सुभावैं, हम संसार न आवैं ॥अ०॥
यही भरम हम मय संसारा, हम संसार समाये ।
उदित सुभाव भानु आतम घट, भ्रम तप तें भरमाये ॥अ०॥१॥
पट घट घटना घट पट न घटैं, तीनूं काल प्रमावं ।
जलाधारण थी सीतातप, घट में कब न घटावैं ॥अ०॥२॥
तैसे आप धरम थी आतम, कोई काल न जावै ।
निभरम सदा काल तुझ मांहि, चेतन धरम रमावै ॥अ०॥३॥
जल तरंग थी अनचल चंचल, छाया वृक्ष लखावै ।
ज्ञानसार पद मय निश्चै नय, सिद्ध अनादि सुभावै ॥अ०॥४॥

(४३) राग—आसा

अवधू जिन मत जग उपगारी, या हम निहचै धारी ॥अ०॥
सरव मई सरवंगे मानै, सत्ता भिन्न सुभावै ।
भिन्न भिन्न पट मत नय भाखै, मत ममत्त हठ नावै ॥अ०॥१॥

नयवादी अपनौ मत थापै, और सहू ऊथापै।
एहनै थाप उत्थापक बुद्धि, इक इक देशैं व्यापै ॥अ०॥२॥
जे जे सिद्धान्तों में भाख्या, षट मत अंग सुणावै[1]।
जिन मत नैं सरवंगी दाखै, पिण विरोध न जणावै ॥अ०॥३॥
मत्त समस्त वातौ न उदीरैं, तदगत अशुद्ध सुभावै।
चंदै नहीं नंदै नहीं सबकूं, यथायोग्य परचावै ॥अ०॥४॥
एहवो निक्रोधी निरमानी, अममाई अममत्ती।
तेणे जिन मत रहिस पिछाण्यो, अन्य ते मत्त ममत्ती ॥अ०॥५॥
ऐसैं शुद्ध जिनागम वेदी, ते निज आतम वेदै।
ज्ञानसार थी शुद्ध सुपरणित, पावै सिद्ध[2] अखेदै ॥अ०॥६॥

(४४) राग—आसा

अवधू कैसी कुटुम्ब सगाई, याकौ नहि संबन्ध सदाई ॥अ०॥१॥
मात पिता दयिता बैठे ही, सकजौ सुत मरजाई।
उन बेठे ही मात पिता सुत, आंधी में उठ जाई ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ बतावै २ शुद्ध।

क्रोध मान माया नहीं लोभा, नहीं हम जग की आसा ।
नहीं हम रूपी नहीं भव कूपी, नहीं हम हरख उदासा ॥अ०॥२॥
बंध मोच्च नहिं हमरे कबही, नहीं उतपात विनाशा ।
शुद्ध सरूपी हम सब काले, ज्ञानसार पद वासा ॥अ०॥३॥

(४२) राग—आसा

अवधू आतम धरम सुभावें, हम संसार न आवें ॥अ०॥
यही भरम हम मय ससारा, हम संसार ममाये ।
उदित सुभाव भानु आतम घट, भ्रम तव तें भरमाये ॥अ०॥१॥
पट घट घटना घट पट न घटै, तीनूं काल प्रमावें ।
जलाउधारण थी सीतातप, घट में कब न घटावें ॥अ०॥२॥
तैसे आप धरम थी आतम, कोई काल न जावें ।
निभरम सदा काल तुझ मांहि, चेतन धरम रमावें ॥अ०॥३॥
जल तरंग थी अनचल चंचल, छाया वृच्च लखावें ।
ज्ञानसार पद मय निश्चै नय, सिद्ध अनादि सुभावें ॥अ०॥४॥

(४३) राग—आसा

अवधू जिन मत जग उपगारी, या हम निहचै धारी ॥अ०॥
सरब मई सरबंगे मानै, सत्ता भिन्न सुभावें ।
भिन्न भिन्न पट मत नग भाखै, मत ममत्त हठ नावें ॥अ०॥१॥

(४६) राग—आसा

साधो भाई ऐसा योग कमाया, यातैं मुग्ध लोक भरमाया ॥सा०॥
बाह्य क्रिया दरसाई साची, अभ्यंतर तैं कोरा।
मासाहस परिकर फिर सोचिस, रे रे आतम चोरा ॥सा०॥१॥
संयम पायो पुन संयोगैं, पाल्यौ नहीं तै पापी।
फिर ऐसो नहिं दाव बणैगो, चितवन चित्त अव्यापी ॥सा०॥२॥
क्या कहियै कछु कह्यो हू न मानै, रे रे आतम अंधा।
ज्ञानसार निज रूप निहारै, निहचै है निरबंधा ॥सा०॥३॥

(४७) राग—आसा

साधो भाई आतम भाव परेखा, सो हम निहचै लेखा ॥सा०॥
नहीं व्यवहार संसार तैं कबही, नहीं हमरे कब लेखा।
नहीं इनसैं खातौ नहिं बाकी, खाता खताई देख्या ॥सा०॥१॥
समवायैं आतम समवाई, तीनूं काल विशेखा।
मिट गया भरम भया उजियारा, ज्ञानसार पद पेखा ॥सा०॥२॥

(४८) राग—आसा

साधो भाई आतम खेल अखेला, सो हम खेल न खेला ॥सा०॥
बंध मोख सुख दुख की घटना, आतम खेल न घटना।

जननी जाया जाया जननी, मर पिय थायै माई ।
माता वनिता वनिता माता, पित माता पुन थाई ॥अ०॥२॥
दुख दोहग दुरगतें इकेलो, जनमें फिर मर जाई ।
बंध मोग में आप इकेलो, क्यूं समझै नहिं माई ॥अ०॥३॥
शुद्ध अनादि रूप क्यूं सोचै, जड़ में तूं न समाई ।
समताई गुन जो तुझ सूझै, ज्ञानसार पद राई ॥अ०॥४॥

(४५) राग—आसावरी

मेरा आतम अतिही अयाना, यातैं आतम हित नहिं जाना ॥
मेरा आतम अतिहि अयाना, यातैं आतम हित नहिं जाना ।
काम राग अहित अति दारा, नेहादिक लघु दारा ।
मन वच काय करण विन रोधे, आश्रव द्वार उघारा ।मे०॥१॥
उन आश्रव सैं करम रूप जल, सरवर जीव भराया ।
यातैं चौगति मांहि भमाया, अजहुं अंत न आया ।मे०॥२॥
अब जिन धरम के शरणे आया, आतम रूप न पाया ।
ज्ञानसार गुन तेरो चीने तो, गति आगति नहीं काया ।मे०॥३॥

(४६) राग—आसा

साधो भाई ऐसा योग कमाया, यातैं मुग्ध लोक भरमाया ॥सा०॥
बाह्य क्रिया दरसाई साची, अभ्यंतर तैं कोरा।
मासाहस परिकर फिर सोचिस, रे रे आतम चोरा ॥सा०॥१॥
संयम पायो पुन संयोगैं, पाल्यौ नहीं तैं पापी।
फिर ऐसो नहिं दाव बणैगो, चितवन चित्त अव्यापी ॥सा०॥२॥
क्या कहियैं कछु कह्यो हू न मानै, रे रे आतम अधा।
ज्ञानसार निज रूप निहारै, निहचै है निर्ग्रंथा ॥सा०॥३॥

(४७) राग—आसा

साधो भाई आतम भाव परेखा, सो हम निहचै लेखा ॥सा०॥
नहीं व्यवहार संसार तैं कबही, नहीं हमरे कब लेखा।
नहीं इनसें खातौ नहिं बाकी, खाता खताई देख्या ॥सा०॥१॥
समवायैं आतम समवाई, तीनूं काल विशेखा।
मिट गया भरम भया उजियारा, ज्ञानसार पद पेखा ॥सा०॥२॥

(४८) राग—आसा

साधो भाई आतम खेल अखेला, सो हम खेल न खेला ॥सा०॥
बंध मोख सुख दुख की घटना, आतम खेल न घटना।

सिद्ध सनातन है सब कालैं, उपन विनाश अवरना ॥मा०॥१॥
नाहीं पुरुष नपुंसक नारी, शब्द रूप नहीं कामा।
नहीं रस गंध नहीं बल आयु, नहीं कोऊ साम उमासा ॥मा०॥२॥
नहीं तन्द्रा सूतैं नहीं जागैं, नहि ऊभैं नहीं बैठे।
नाहीं जलैं जलन की झाला, नहीं समाधि में पैठे ॥मा०॥३॥
ए निश्चै आतम को खेला, इनमें कबहू न आए।
हम बिवहारी आतम हमरे, भ्रम तम तैं भरमाए ॥मा०॥४॥
गया भरम भया उजियारा, लोकालोक प्रकाशा।
ज्ञानसार पद निरूपम चीना, उनका यही तमाशा ॥मा०॥५॥

(४६) राग आसा

साधो भाई जग करता कहि माया, सोई हम निरमाया।
मिथ्या संग करो जब तब ही, माया पुत्री जाया।
जनमत घट पट घटना पटवी, याखूं जग उपजाया ॥सा०॥१॥
क्रोधादिक याको परिवारा, जग व्यापक अरणपारा।
उपति खपति थिति याकी संतति, सोई जग व्योहारा ॥सा०॥१॥
याखूं भिन्न कहै करता नैं, माया जिन निपजाया।
उवा माया सूं जगत उपाया, ए झूठी अपवाया ॥सा०॥३॥

पाठान्तर—१. आ

करम रहित पुन माया कारक, एह अर्मभव बाता।
छाया बिना इकेली अगनी, नहीं धूंआं उपपाता ॥सा०॥४॥
कर्त्तु अकर्त्तु अन्यथा करणैं, हम ही हैं सामर्थी।
पर परिणति से भिन्न भए जब, किंचित कर असमर्थी ॥सा०॥५॥
अचल अगाधि[1] अबाधित अव्यय, अरुज अनादि सुभावैं।
ऐसे ज्ञानसार पद में हम, जीत निसान घुरावैं ॥सा०॥६॥

(५०) राग—आसा

साधो भाई जब हम भए निरासी, तब तैं आसा दासी ।सा०॥
राव रंक धन निरधन पुरुषा, सब ही हमरे सरिसा।
निर आदर आदर गमनागम[2], नहीं कोई हरख उदासा ॥सा०॥१॥
राजा कोऊ पांव जो फरसैं, तोहू तनक न राजी।
दुर्वचनैं जो कोऊ तरजैं, तो आतम न विराजी ॥सा०॥२॥
जरा जनम मरण वस काया, यातैं नहीं भरोसा।
विन प्रतीत की आसा धारै, छोड़ दिया तिण सोसा ॥सा०॥३॥
अब बेफिकर खुशी दिल सब दिन, बेतमाह मनमस्ती।
यातैं उदै अस्त नहीं बूझै, क्या सूना क्या बस्ती ॥सा०॥४॥
भूख पियासा शीत उष्णता, राखैं[3] तनु न समावैं।

पाठान्तर—१ अनादि २ नहिं सबको ३ सवें।

सरस निरस लाभालाभै पुन[1], हरप शोक मन नावै ॥सा०॥५॥
एते पर आतम अनुभौ गति, मन समाधि नहीं आवै ।
मन समाधि विनु ज्ञानसार पद, कैसे हू नहीं पावै ॥सा०॥६॥

(५१) राग—आसा

संतो घर में होत लड़ाई, कौन छुड़ावै आई ॥सं०॥
घर को कहै मेरो घर नाहीं, परकीया कहै मेरी ।
मेरो मेरो कर कर मारयो, करयौ जगत को चेरो ॥सं०॥१॥
सुरनर पण्डित देखे सब ही, कौन छुड़ावै आई ।
झगड़े वाला आप ही समझै, बांध छोड़ उन मांहि ॥सं०॥२॥
मिट गया मेरा हुआ सुरझेरा, आध्यातम पद चीना ।
केवल कमला रम मन[2] सगे, ज्ञानसार पद लीना ॥सं०॥३॥

(५२) राग—आसा

साधो भाई निहचै खेल अखेला, सो हम निहचै खेला ।
ना हमारे कुल जात न पांता, ए हमरा आचारा ।
मदिरा मांस विवर्जित जो कुल, उन घर में पैसारा ॥सा०॥१॥
वर्जित वस्तु विना जो देवै, सो सब ही हम खावैं ।
ऊनों वा फासु अकरापित, धोवण जल सब पीवैं ॥सा०॥२॥

पाठान्तर—१ पिण २ वस ।

टिप्पणी—आत्मानि अधि इति अध्यात्मी ।

पड़िकमणा पांचूं नहीं लायक, सामायिक ले बैसैं ।
साधू नहीं जैन के जिन्दे, जिन घर बिन नहीं पैसैं ॥मा०॥३॥
श्रावक साधू नहीं को साधवी, नहीं हमरे श्रावकणी ।
सुधी श्रद्धा जिन सम्बन्धी, सो गुरु सोई गुरणी ॥मा०॥४॥
नहीं हमरैं कोई गच्छ विचारा, गच्छवासी नहीं निंदैं ।
गच्छवास रतनागर सागर, इनकूं अहनिशि वंदैं ॥सा०॥५॥
थापक उत्थापक जिनवादी, इनसे रीझ न मीजैं ।
न मिलणौ न रिंदन वंदन, न हित अहित न धीजैं ॥सा०॥६॥
न हमरो इनसे वादस्थल, चरचा में नहिं खीजैं ।
किरिया रुचि क्रिया ना रागी, हम किरिया न पतीजैं ॥सा०॥७॥
किरिया बड़ के पान समाना, स्वतारक जिन भाखो ।
सोई अवंचक वंचक सो तौं, चौगति कारण दाखी ॥सा०॥८॥
पै किरिया कारक कूं देखैं, आतम अतिही हींसै ।
पंचम काले जैन उद्दीपन, एह अंग थी दीसै ॥सा०॥९॥
सब गच्छनायक नायक मेरे, हम हैं सबके दासा ।
पै आलाप संलाप न किणसूं, न कोई हरख उदासा ॥सा०॥१०॥
पड़िकमणा पोसा न करावैं, करतां देख्यां राजी ।
पचखांणे व्याख्यान न आग्रह, आग्रह थी नवि राजी ॥सा०॥११॥

जो हमरी कोऊ करें निन्दा, किंचित अमरस आवें ।
फिर मन में जग नीति विचारें, तब अतिहि पछितावें ॥सा०॥१२॥
क्रोधी मानी मायी लोभी, रागी द्वेषी योधी ।
साधुपणा नो देश न लेश न, अविवेकी अपबोधी ॥सा०॥१३॥
ए हमरी हमचर्या भाखी, पै इनमें इक सारा ।
जौ हम ज्ञानसार गुण चीनें, तौ ह्वै भवदधि पारा ॥सा०॥१४॥

(४३) राग—शुद्ध वसन्त

क्यूं आज अचानक आए भोर,
कर महिर निजर ललनां की ओर ।
परभाव रूप अंधियार तोर, सुसुभाव उदै रवि के सजोर ॥१॥
अब शुद्ध रूप गहिकै अनूप, वरियै केवल कमला स्वरूप ।
तब ज्ञानसार पद तुम सरूप, पायो आतम परमातम रूप ॥२॥

(४४) राग—शुद्ध वसन्त

क्यु' जात चतुर वर चित बटोर, इन प्रीत पन्न नहिं चलत जोर ।
किन कहै निहोरे हेत मांहि, न चले हित प्रीतम आप चाहि ॥१॥
इक हाथै तारी नहिं वजंत, यानत क्यु' खैंचत अंत संत ।
घरणी बिन घर कौ काज राज, को करिहै जिह एतो समाज ॥२॥
पर घर में क्या काढौ सवाद, जिनमें एतौ लोकापवाद ।
यातैं अपनै घर चाल कंत, जिहि ज्ञानसार खेले वसंत ॥३॥

(४५) राग—शुद्ध वसन्त

कित[1] जइयै क्या कहियै वयान,

तुम जान सुजान[2] क्युं हो अयान ॥कि०॥

इह स्यादवाद कुल[3] की मजाद, पर घर पग धरनै क्या सवाद ॥१॥

अलवेली[4] अकेली हूं उदास, पैं विण इक छोरू नहीं आवास

अपने मुख अपनी क्या प्रशंस, वरने जब शोभा जात वंश ॥२॥

---

१ सुमति वाक्ये—'कित जइयै' नाम=म्हारी स्वरूप रूप घर तिण विना म्हे कठ जावा, म्हारो आवणो काठै होज नहीं। हे आत्माराम भर्त्तार! थांरो स्वरूप घर सो छोड़ने ये पर घर मे रम रह्या छो. तेनो बयान कथन क्या कहिये, म्हारे मुखे क्या कहू लाज आवै, स्त्री जायरवात्।

२ पुन. थे अयाण हुवौ तो हू क्यूं ही कहू, पिण थे सुजाण जाणता थका क्यू हो अयाण नाम=क्यु अजाण हुआ छो इतरे थे विरूप मे क्यु प्रवर्त्त रह्या छो, वित नाम=तदाकार वृत्तिये।

३ इह नाम=आ। थे प्रवर्त्तो जिका आ स्यादवाद कुल की मरजाद छै काई ? थे पराये घरे नाम=जड़ादिक रै घरे भटक रह्या छो इणमें "क्या सवाद" नाम=कांइ सवाद काढौ छो। गत्यागति भित रै विषै असहनीय दुख सह रह्या छो।

४ हे भर्त्तार! हू अलवेली छू, कालो कुदरौनी न छू पिण टवेली

घर घरणी[५] कौ एतोपमान, जगवांदी[६] कूं क्युं देत मान।
समभाय वीर घर आन कंत, जिह ज्ञानसार मेलत वसंत ॥३॥

(४६) राग—धमाल

मनमोहन मेरे क्यां न आये हो,
आली री पूछियै अनुभव मीटडै मीत ॥म०॥
आनै कौन कौन कूं ल्याऊं, छौरै नहीं छिन साथ।
ममता संग रैन रंग* राते, मदमाते माथीडै माथ ॥म०॥१॥
कबहू नेक निजर नहिं जोरे, आतन की कहा बात।
गूझ बूझ सबही उनहीं तें, उन बेच दिये बिकात ॥म०॥२॥

थकी हूँ उदास छूं, पिण म्हारो जो घर स्वान्त्यादि तिणनै हीज नहीं छोड़ूं छूं। सन्मुखे स्वप्रशस्ति काई करूं म्हारी प्रशस्त जाति तौ शुद्ध आत्मीक रूप यश सुमतिवन्त आत्मा ए म्हारी शोभा करै वर्णन करै।

५ 'घर घरणी' शुद्ध सुमति जेहनौं तो एतलो अपमान करी मूंक्यो छै वतलावण पिण नथी।

६ 'जगवादी' जे कुमति तेहन एटलो मान किम छै ? हे वीर अनुभौ ! तमे समझावी नैं स्वरूप घर में का न लावो जिहां ज्ञानसार आत्मिक स्वरूप प्रसन्न चित्तो छतो वसन्त खेली रह्यो छै।

* दिर

मेरी न तेरी गरज पिया कै, राते चित वित रंग ।
अपनौ आप सरूप भूलकै, ओर रहे जड़ संग ॥म०॥३॥
तेरो पिया तेरे वश नाहीं, कौलों करें हम ओर ।
प्रथम करनलौं प्रीतम आये, अब जाय मिलौ करजोर ॥म०॥४॥
अनुभौ आय पिया समझाये, घर ल्याये धन रंग ।
सुगति महिल मिल ज्ञानसार सूं, खेलैं धमाल उमंग ॥म०॥५॥

(५७) राग—पूरबी

छकी छबि बदन निहार निहार ।
प्रोषित पति आगमागम कीनौ, बिहरी विगत विहार ॥छ०॥१॥
गये अनादि काल में ऐसौ, दीठो नहीँय दीदार ।
निरुपम निजर निहार निहारत, रंजिय रूप रिझवार ॥छ०॥२॥
अंतर एक मुहूरत अंतर, प्यार करी अणपार ।
लीनैं ज्ञानसार पद भीतर, चेतनता भरतार ॥छ०॥३॥

(५८) रागणी—परज

मामरैरि आज रंग वधाई म्हारै०॥
गांव गौरवें प्रीतम आये, ध्वनि श्रवण तसु पाईजी,† म्हारै ॥१॥
धममस चलीय मिली संयम घर,
निरख हरख हरखाई जी, म्हारै०॥

†धुनि श्रवनन सुन पाई ।

माया ममता कुबुद्धि कूबरी, म्ही वदन विलखाई जी, म्हांरै०॥२॥
चेतनता केवल शिव कमला, सुमति सुचेतन राई जी, म्हांरै०॥
ज्ञानसार सू रम घम हिलमिल, लीनै कंठ लगाई जी, म्हांरै०॥३॥

(५६) राग—मारू

पिया बिन खरी (य) दुहेली हो, पि०॥
देर दिरानी सास जिठानी, सब दे राखी सूली हो ॥पि०१॥
पिय संगति अति व्याप्यौ जो सुख, सो सुख इन दुख भूली हो।
तलफूं बिन पानी ज्यूं मछली, विरहैं ग्रहण गहेली हो ॥पि०२॥
टेर टेर के बेर कहत हूँ, विसरन रह्यो इकेली हो।
न सासर न पीहर आदर, निर आदर अलवेली हो ॥पि०३॥
जलौ जमारौ विरहण नारी, सरधा कहैय सहेली हो।
ज्ञानसार सू मिलियै यूं ज्यूं, फूल सुवास चंबेली हो ॥पि०४॥

(६०) रागणी—धनयासी

पिया मोसूं काहे न बोलै, दे दे सोवै पीठ ॥पि०॥
सौतन संग पिया विरमाये, नेक न जोरै दीठ ॥पि०॥१॥

को जानै गति अंतर गति की, याचूं कहा वसीठ ।
कौलों कहिकहि पिय समझावूं, निठुर निलज हैं धीठ ॥पि०॥२॥
वीर विवेक पिया समझावे, ता पर अनुभौ ईठ ।
सरधा सुमता ज्ञानसार कूं, जाय मनावै नीठ ॥पि०॥३॥

(६१) राग—धन्यासी गुजराती

प्यारे नाह घर बिन, यौंही जीवन जाय ॥ प्यारे ०॥
पिय बिन या वय पीहर वासौ, कहि सखि केम सुहाय ॥१॥
हा हा कर सखि पइयां परत हूं, रूठड़ौ नाह मनाय ।
घर मन्दिर सुंदर तनु भूसन, मात पिता न सुहाय ॥२॥
इक इक पलक कल्प सौ बीतत, नीसासै जिय जाय ।
ज्ञानसार पिय आन मिलै घर, तौ सब दुख मिट जाय ॥३॥

(६२) राग—धन्यासी

घर के घर बिन मेरो कैसो घर घर मांहि ॥घ०॥
मैं पीहर पीया परदेसी, लरका मेरे नांहि ॥घ०॥१॥
कुल कौहू नहिता नहि कबहू, जातन निहतन जांहि ।
ऐसै घर कूं चूंची लागौ, जोगन ह्वै निकसांहि ॥घ०॥२॥
वीर विवेक कहै सुण भैणी, एतौ दुख क्यूं कराहिं ।
आगम आवन कीनो भरता नै, ज्ञानसार गल बांहि ॥घ०॥३॥

(६३) राग—सोरठ

रहै तुम आज क्युं जी नटन दुराय ॥र०॥

जिय जीवन मन्दिरमें प्यारी, हारी हा हा खाय ॥र०॥१॥

अविरति घूंघट पट उघारो, अनुभव मुख निरखाय ।

एते पर भी मान न मेले, मूलैं व्याज बढ़ाय ॥र०॥२॥

भव परिणित परिपाक इते पर, आई धाई माय ।

अति आग्रह मन ज्ञानसार कूं, लीने कंठ लगाय ॥र०॥३॥

(६४) राग—सोरठ

रैन विहानी[१] रे रसिया, जाग निखद रा वीर कै रैन० ॥

मिट्यो विभाव तिमिर अँधियारो, सूर सुभाव उगानी रे रसिया ॥१॥

तुम कुल इक उजागरवस्था, छार गहा है विरानी ।

यातें हूं धरधूण उठाऊं, क्युं सुध बुध विसरानी रे रसिया ॥२॥

अब अपने घर आप पधारो, अन्त विरानी विरानी ।

ज्ञानसार सूं कुमति दुहागिन, भाग भई निलज्जानी रे रसिया ॥३॥

---

१ हे आत्माराम! थारै छट्ठै गुणठाणे री तौ अन्तर्मुहूर्त पूरौ थयौ सो तो तूं प्रमादी छो, सातमे गुणठाणै री छाया प्रवर्त्ती तद्रूप जागणो कथ अप्रमादीत्वात् हे निखद! शुद्ध चेतना तेहना भाई, अतएव विभावरूप तिमिर अन्धकार मिट्यो, सूर्य रूप स्वभाव उदै थयौ ।

(६५) राग—सोरठ

चारो नणदल धीर, कहूँ कौलूं ॥ चारो० ॥
मिथ्या गणिका पूंजी खाई, बणगे जनम फकीर ॥१॥
गई गई सो मलिय रही सो, धर धर मनको¹ धीर।
कौलूं धीर धरूं धीरज धर, विरहे जनम वहीर ॥२॥
भाल लाल बिन्दी नहीं भावै, आभूषण नहीं चीर।
ज्ञानसार वालौ² आन मिलै घर, तौन रहै कोई पीर ॥३॥

(६६) राग—सोरठ। चाल, सांवरे रंग राची

लालना ललचावै, बाई मौने ॥लालना०॥
खिण में रूसण तूसण खिण में, खिण में रोय हँसावै ॥ला०॥१॥
अन्तर वेदन कोय न बूझै, प्रगट कही हू न जावै।
धोवै धूर उड़ाय इसैं घर, जंगल जाय बसावै ॥ला०॥२॥
वीर विवेक संग ले आए, सुमता कंठ लगावै।
ज्ञानसार प्यारी मृदु मुसकत, परमारथ पद पावै ॥ला०॥३॥

(६७) राग—सोरठ

मेली हूँ इकेली हेली, लगी तलावेली।
जिय जीवन सौतन सग खेलैं, यातैं खरिय दुहेली ॥१॥
जक न परत खिन भीतर अंगन, तलफूं अति अलबेली।
खिण सोवूं खिण बैठूं ऊठूं, जाणे जनम गहेली ॥२॥

पाठान्तर—१ हरधर २ वाल्हो (=वल्लभ)

इतै अचानक प्रीतम आये, सेरी अनुभव सेली ।
ज्ञानसार सूं हिलमिल खेलैं, सरधा सुमति सहेली ॥३॥

(६=) राग—सोरठ

मरण तौ आया माया अजुं न बुझाया ।
बाहिर अभ्यंतर खग खग यूं, मानू जोग कमाया ॥म०॥१॥
निपट निकामी निपट निरागी, निरमोही निरमाया ।
ध्यांनी आतमज्ञांनी जांनी, ऐसा रूप दिखाया ॥म०॥२॥
मान छोड़ मद छकता छोड़ी, छोड़ो घर की माया ।
काया ससरूखा[1] सब छोड़ी, तउअ न छूटी माया ॥म०॥३॥
जगतैं इक श्वेताम्बर अधकी, सरव शास्त्र में गाया ।
ज्ञानसार कै मवतैं बधती, माया पांती आया ॥म०॥४॥

(६६) राग—सोरठ होली

अरी मैं, कैसे मनावें री, मेरो पिया पर संग रमत है ॥ कैसे०
सौतन संग रैन रंग रमतां, मुहिं न बुलावै री ॥मे०॥१॥
हाहा कर सखि पइयां परत हूँ, पीय मिलावै री । एरी कोई०
विरहानल अति दुसह पिया विन, कौन बुझावै री ॥मे०॥२॥
सुमति संग ले अनुभौ आये, सब परठ सुनावै री॥ अरी सब०
ज्ञानसार प्यारी दो हिलमिल, सोरठ गावै री ॥मे०॥३॥

पाठान्तर—१ सुश्रूषा ।

(७०) राग—होरी धूरिया, सोरठ मिश्रित

पर घर खेलत मेरी पिया, कछु बरजो नहीं अपने भैया ॥प०॥
नकटोरिन[2] के संग नचत है, तत तत ताथेइ ताथेइया ।
चंग बजावे गाली गावै, कौन बनाव बन्यौ दइया ॥प०॥१॥
खर असवारी चमर चुहारी, श्याम वदन सिर पर धरिया ।
विष्टा रगरी जूती पग री[3], लाज मरत हूँ में मैया ॥प०॥२॥
इह सब चेष्टा पर परणिति की, निज घर में रमिहैं भविया ।
आतम शीश गुरु द्रष खेलै, ज्ञानसार जिन में मिलिया ॥प०॥३॥

(७१) राग—कालेंगड़ो

यूं ही जनम गमायौ, भेष धर यूं ही जनम गमायौं ।
संयम करणी सुपन न करणी, साधु नाम धरायौं ॥भे०॥१॥
मुख मुनि करणी पेट कतरणी, ऐसो जोग कमायौं ।
देखो गृह घर कमटी नी पर, इन्द्रीय गोप वतायौं ॥भे०॥२॥
मुंड मुंडाय गाडरी नी परि, जिन मति जगत लजायौं ।
भेष कमायो भेद न पायो, मन तुरंग वश नायौं ॥भे०॥३॥
मन साध्ये विन सयम करणी, मानूं तुस फटकायौं ।
ज्ञानसार तें नाम धरायौं, ज्ञान को मरम न पायौं ॥भे०॥४॥

पाठान्तर—१ पहने २ डकटोरिन ३ पघरी ।

(७२) राग—तोड़ी

जब हम तुम इक ज्योति जुरे, तब न्यून जोति नहीं मेरी ॥
चरमावर्त्त न चरम करण मिल, पाकेगी भव मेरी ॥प्रभु पाकेगी०
मिथ्या दोष अनादि काल पद, मिट भ्रम तम अंधेरी ॥प्र०॥१॥
सत्ता द्रव्य अनन्य सुभावै, चेतनता न अनेरी ॥प्रभु चे०
काल लब्धि नहीं लाभै जौलौं, तौलूं बीच घनेरी ॥प्र०॥२॥
तब ही शुद्ध सरूप गहेंगे, शैली अनुभव सेरी । प्रभु शैली०
पर परिणति तज ज्ञानसार ता, भज आतम पद केरी ॥प्र०॥३॥

(७३) राग—काफी (ढाल—गोठीड़ा बार उघाड़)

(अब) तेरो दाव बण्यो है, गाफिल क्यों मतिमान ।
आरिज देश उत्तम भ्रम संगति, पाई पुण्य प्रमान ।।ते०॥१॥
क्रोध लोभ अरु माया ममता, मिथ्या अरु अभिमान ।
रात दिवस मन वच तन रातौ, चेतन चेत सयान ॥ते०॥२॥
मत मद छाक छक्यौ ज्यूं मंगल, परमत गति आलान ।
ऊपाड़ै तेरै कहा कारज, जिन मत रहिम पिछान ॥ते०॥३॥
सत्ता वस्तु भिन्न है सब में, सरवंगै सम मान ।
इक इक देशी सब मत जाणौं, सब देशी जिन जान ॥ते०॥४॥
सरबंगै सम जिन मत साधै, बाधै आतम ज्ञान ।
ज्ञानसार जिन मत रति आवै, पावै पद निरवान ॥ते०॥५॥

जिनमत धारक व्यवस्था गीत

(७४) राग—पंचम

आप मतिये भला मूढ़ मतिये भला ॥टेर॥

मंद मतिये दुसम काल नैं जैनिये,
जैन मत चालणी प्राय कीनौ।
परभव बीह ना बीह नैं अवगिणी,
निरभयैं ममत रस अमृत पीनौ ॥आ०॥१॥

एक कहै थापना जिन भणी पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ जाणों।
जानु परमाण थल जल कुसुम आणिनैं,
सुर रचे वृष्टि ते स्युं न जाणो ॥आ०॥२॥

तेह कहि विविध विध बिंब जिन पूजतां,
जिन अनता न आरम्भ दाखैं।
नवा आराम निपजाय निज कर करि,
फूल चूंटे प्रगट पाठ भाखैं ॥आ०॥३॥

केह कहि धरम नूं मरम दाखी दया,
तेहनूं तत्त्व ते एम आणौं।
जीव हणतां बचायां न जयणा पली,
मर गयां लेश हिंसा न आणौ ॥आ०॥४॥

एक कहि जेम मनराज मांझां लियें,
तेम करिये न आरम्भ गिणियें ।
हेय गेयादि जे मन प्रवृति थयें,
ते सर्व्वं सिद्धता तेम भणियै ॥आ०॥५॥
केई कहि प्रथम नय कथन विवहार नूं,
पारणामिक पणे केय भासें ।
केई कहै वचन नूं जाल गूंथ्यूं सवें,
निश्चयें सिद्धता जैन दासें ॥आ०॥६॥
विविध किरिया करी विविध संसार फल,
फल अनेकान्त कै गति समृद्धि ।
गति समृद्धिपणें भव भ्रमण नवि टलें,
तेह थी मी थई आतम बुद्धि ॥आ०॥७॥
नहीं निश्चै नयें नहीं विवहार थी,
है नहीं है यथा वस्तु रूपै ।
जल भरयै कुम्भ प्रतिबिंब सत्ता रही,
सूर सत्ता रही रवि सरूपै ॥आ०॥८॥
जिन मतें ममत सत्ता न पामीजियें,
ममत सत्ता रही मत ममत्तें ।

द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में,
धर्म धर्मी सदा एक वृत्तैं ॥आ०॥९॥
बाहिर आतममती परम जड़ संगती,
मत ममत्ती महामोह मायी ।
प्रमत अप्रमत्त गुणठाण वरतूं अमे,
मूढ़ मति वक्रै अविरत कषायी ॥आ०॥१०॥
आप नंधा करौ भव भयै थरहरौ,
परहरौ मुखै नया पराई ।
सम दम खम भजौ तजौ मत ममत्त नै,
राग दोषादि पुन आस दाई ॥आ०॥११॥
अन्वयें और व्यतिरेक हेतू करी,
समझ निज रूप नैं भरम खोवैं ।
शुद्ध समवाय तैं आतमता परिणतैं,
ज्ञाक नूं सार पद सही होवैं ॥आ०॥१२॥

इति पद ७४ पं० प्र० श्री ज्ञानसारजिद्गणि
विनिर्मिता द्वासप्ततिका सम्पूर्णा

जिनमत धारक व्यवस्था गीत

[बालावबोध]

राग—पंचम

भंदमतिए दुसम काल नैं जैनिए,
जैनमत चालणी प्राय कीनो।
परभव बीह ना बीह नैं अवगिणी,
निरभयैं ममत रस अमृत पीनौ ॥मंद॥१॥

अर्थः—अल्प बुद्धिवाले पंचम आरा नैं जैन दरसनिए जैनमत नाम=जैन दर्शन प्रतैं, चालणी प्राय नाम जैन दर्शन सात नयाभि-प्राई नै अणजांणते छते जैन दर्शनिए भिन्न भिन्न एक नयाश्रित कथन रूप छेद करते छते, जैन दर्शन प्रतैं चालणी प्रायः नाम=जिम चालणी नैं बहु छेद होय तिम जिनमत नैं चालणी प्राय कीनौ। तिहां कारण स्यौ ? 'परभव बीह ना' नाम=परमेश्वर भाषित सिद्धान्त नौ एक अक्षर अमे उथापीसूं तो ससार वंतार अमनै अनन्तो परिभ्रमण करवूं पडस्यै, 'बीह नै' नाम=ते डरनैं, अवगिणी नाम=अश्रद्धी छते, अवगिणना करीनैं नाम=न विचारी नैं, निरभये नाम=निरभय थए छते, कस्मात् कारणात् अश्रद्धत्वात्, ममत रस नाम=ममत्व रूप जहर रस नैं, अमृत नाम अमृत समान मानी नै पीनौ नाम=पान कीयो छै, जिणे एतलै कंठ सूधी ममत्व जहर रूप रस भर्यो छै जिणे एतलै ममत्व मई थई रह्याछै।

एक कहि थापना बिंब जिन पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ जाणो ।
जानु परिमाण थल जल कुसुम आणनै,
सुर रचै वृष्टि ते स्युं न जाणो ॥मं०॥२॥

अर्थ—एक कहितां नाम=एके केचित् एवं वदति, केईक एकांत-वादी मतममत्वी सिद्धान्त नूं एहवूं वचन 'न रंगिज्जा न धोइज्जा' ए वचन उछेदी नै स्याम रक्त वस्त्र धार्‍या छे जिणे ते कहे 'थापना बिंब जिन' नाम=थापना निक्षेप थापन कर्या जे 'जिन बिंब' नाम= जिन प्रतिमा प्रतै 'पूजतां' नाम=पूजा करतां थकां फूल धूपादि' नाम= फूल फल धूप दीप नवेद्यादि 'आरंभ जाणो' नाम=आरंभहीज जाणो, एहवूं वचन स्याम वस्त्रधारी कहे, अहो भव्यो विना आरंभै पूजा नो अभाव नै जिहा आरम तिहां धर्म नो अभाव परमेश्वरे वखाण्यौ छे 'आरंभे नत्थि दया' 'दया मूले धम्मे पन्नते' तेथी पूजा न करवी एहवूं सुणयै एकंत पूजा' पक्षी काथांबरी वारू छटा-छोट करतौ बोल्यौ—'जानु परिमाण थल जल कुसुम आणनै' नाम=परमेश्वरे विद्यमान छते गोडा प्रमाणे थल जल सम्बन्धी फूल ल्यावीनै 'सुर रचै वृष्टि' नाम=देवता वर्षा करै, 'ते स्यूं न जाणो' नाम=नथी जाणता स्युं ? तिहां जो पुष्पादि पूजा में परमेश्वर हिंसा जाणता तो ना न कहिता पर पूजा लाभकारी जाणीनै दया ना साठ नाम तेमां पूजा दया ना नाम में गिणी, फिरी पंचमांगै 'हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ' एहवूं पाठ पोतै न कहता ।

तेह कहि विविध विध विंब जिन पूजतां,
जिन अनंता न आरम दाखै।
नवा आराम[1] निपजाय निज कर फरी,
फल चूंटै प्रगट पाठ भाखै ॥मं०॥३॥

अर्थ—'तेह कहे' नाम=तत्‌शब्द पूर्व परामर्शक, ते कथाधरी फिरी उत्सूत्र एहवूं कहै 'विविध विधि' नाम=नाना प्रकारै बिंब पूजन पूजता जिन प्रतिमा नो पूजा करवा 'जिन अनंता न आरंभ दाखै' अनंते काले अनंती चउवीसी ना अनंता तीर्थंकर तेऊमां एकेही परमेश्वरे एहवूं न कह्यु (जे) अमारी पूजा में तुमने आरंभ थास्ये नै अनंते ही परमेश्वरे एहवूं कह्यू 'न आरभ दाखै' 'पूया निरारंभिया' फिरी ते कहै एहवूं प्रगट पाठ छै जिन पूजा नें फूल निमित्ते श्रावक नवा आराम (निपजाय) करावै, पछी च्यार श्रावक आरामें जई फूलो ना वृक्षो ऊपर वस्त्र ना च्यार पल्ला पकडी नें ते वृक्ष नें पाणी छांटवा थी घणी वार ना फूल फूल्योड़ा खिरीजाय पछी सोना ना नखना आगुलियो में धारी ते फूलो नें चूंटै। टोडर करवा कारणै कली चूंटी टोडर करी आरता थी प्रथम कंठे पहरावै। प्रभाते दरशन वेला फूल्या फूल दीसै ते कारणै कली कतरै-बींधै ते अठावीस २८ सेर एकैक देहरै कतरीजती बींधीजती मै देखी नें तेऊनें कोइ पूछै एहवूं किहा कथन छै तईये तेनै कहै "प्रगट पाठ भाखै" सिद्धान्त मे प्रगट पाठ छै ते पैंतालीस में दीसतू नथी। बीजू ए पाठ छै समोसरण में जानू प्रमाणै विछीजता

पाठान्तर—१ आरभ

तेतला श्रावण नूं चढ़ावा न मिले बीजूं मिले जेतला चढ़ाविये, परं नवा नाग नवां सूं कूच वा कत्ती चुटवो-कसवो-रींधवी ते मनात। अन्य पूछे पाठ बताबो तिवारे तेऊ थी लई मटुकि —

मारे मत के ममत के, करे लराई घोर।
ते श्रावक मत में नहीं, वे जिनागम चोर॥ १॥

—:❀:—

केउ कहे धर्म नूं मर्म माखी दया,
तेहनूं तत्व ते एम आंणे।
जीव हणतां बचायां न जयणा पली,
मर गया लेम हिंसा न जांणे ॥४॥मं०॥

अर्थ —केचित एवं वदति=केईक महपू कहे छे 'धर्म नूं मर्म' नाम=जैन धर्म नूं मर्म। रहस्य नाम=सार भाखी दया धर्म नूं मूल दया भाखी। 'तेहनूं तत्व ते' नाम=ते दया नूं परमार्थ 'एम आंणे' नाम=ए रीतें मन में ल्यावे, 'जीव हणता बचाया न जयणा पली' नाम=जीव बकरे प्रमुख नें वा बिलाई मूंस प्रमुख हणता नै जो कोई मारण न दे तो ते बचावण वाला प्राणी नै दया पली किंवा नहीं ? तिवारें स्याम वस्त्रधारी मे अवतर भेदी भीखणपंथी इम कहे तेहनें दया न पली, तइये ते बोल्यो किम न पली ? तिवारे तेऊ कहे रो बचावणवाला प्राणिये ने मरता प्राणी ने बचावतई असंख्यात जीवों नी हिंसा करी, किम ? ते कहे जे प्राणी ने इणे बचाव्यो ते प्राणी खास्ये पीस्ये वा मैथुन सेवस्ये ते सर्व-जीवों नी

तेह कहि विविध विध विध जिन पूजतां,
जिन अनंता न आरम दाखै ।
नवा आराम[1] निपजाय निज कर करी,
फूल चूंटै प्रगट पाठ भाखै ॥मं०॥३॥

अर्थ—'तेह कहे' नाम=तत्शब्द पूर्व परामर्शक, ते कथाग्रही फिरी उत्सूत्र एहवू कहे 'विविध विधि' नाम=नाना प्रकारे विध पूजन पूजता जिन प्रतिमा नो पूजा करता 'जिन अनंता न आरंभ दाखै' अनंते काले अनंती चउवीसो ना अनंता तीर्थंकर तेऊमां एकेही परमेश्वरे एहवू न कह्यु (जे) अमारी पूजा में तुमने आरम थास्ये ने अनंते ही परमेश्वरे एहवू कह्यू 'न आरभ दाखै' 'पूजा निरारंभिया' फिरी ते कहे एहवू प्रगट पाठ छै जिन पूजा नै फूल निमित्ते श्रावक नवा आराम (निपजाय) करावे, पछी च्यार श्रावक आरामे जई फूलो ना वृक्षो ऊपर वस्त्र ना च्यार पल्ला पकडी नैं ते वृक्ष नैं पाणी छाटवा थी घणी वार ना फूल फूल्योड़ा खिरी-जाय पछी सोना ना नवला आगुलियो मैं भारी ते फूलो नैं चूटै। टोडर करवा कारणैं कली चूटी टोडर करी आरतो थी प्रथम कठै पहरावे। प्रभाते दरशन वेला फूल्या फूल दीसै ते कारणे कली कतरै-बींधै ते अठावीस २८ सेर एकैक देहरै कतरीजती बीधीजती मैं देखी नैं तऊनैं कोइ पूछे एहवू किहा कथन छैं तईये तेनैं कहे "प्रगट पाठ भाखै' सिद्धान्त म प्रगट पाठ छे ते पैंतालीस मे दीस तू नथी। बीजू ए पाठ छै समोसरण में जानू प्रमाणैं विछीजता

पाठान्तर—१ आरभ

तेहनी प्रकृति प्रमांणै प्रवर्त्तते छतै सरल प्रसन्न होय। ए सरल-प्रकृति वाला नौ कथन छै पर ए मन तो श्रोड ही को चंचल, अनादि ही को वक्र है तेथी एहनी इच्छानुजाई जे प्रवर्तवौ तेल योग्य छै। कथं "मन एव मनुष्याणाँ कारणं बंध मोक्षयोः" तेथीज आनंदघन आत्मार्थीयें पिण इमज कह्युं :—

> आगम आगमधर नैं हाथें, नावे किण विध आंकूं।
> किहां किण जो हठ करी नैं हटकूं, तो व्याल तणी पर वांकुं हो ॥

ते कारणै ते कहै 'जेम मन राज मौजां लियै' नांम= जे जे टाणै ए मन राजा छाजै चढ्यो थको जे जे तरंगै जे जे आज्ञा फुरमावै ते ते कार्य प्रवर्त्तवो मोक्षार्थी नें जोग्य छै। जिम राजा नैं हुकम माफक प्रवर्त्ततौ राजा राजी थई मोटी जागीरी आपै तिम ए पिण राजो थयो मोक्ष जागीरी आपै। 'तेम करियै न आरंभ गिणियै' नाम=मन आज्ञा आपै तेम करवूं, करतै आरंभ न मानवूं। तिवारैं यक्षासीयै प्रश्न कर्यूं–हेयगेय उपादेय कह्या ते हेयगेयादि स्या? तइयै ते कहै 'हेय गेयादि जे मन प्रवृत्तीवधै' नाम= जे वस्तु मा मन नी छोड़वा नी प्रवृत्ति वधी ते हेय, नै जे वस्तु मां जाणवांनी मन प्रवृत्ति वधी ते गेय, नै जे वस्तुमां मननी आदरवांनी प्रवृत्ति वधी ते उपादेय 'ते सवै सिद्धता तेण भणियै' नांम= तेहवी मननी प्रवृत्ति सिद्ध थयां छतां सिद्धता नांम=मोक्षता थाय, तेण भणियै नांम=ते मनोमती नागापंथी एहवूं कहै छै सिद्धांत थकी ए वचन अत्यन्त विरुद्ध छै।

हिंसा बचायवा वाला नें थयें, ए न बचावतौ तो हिंसा ही स्यूं करवा थातो नें बचायवा वालौ हिंसा नौ विभागी स्यूं करवां थातौ ? सइये ते बोल्यो, मैं मरतां न बचाव्यो ते अभयदान बुद्धियें बचाव्यौ। इहां सिद्धान्त नूं वचनः—

> अभय सुपत्त दाणं, अणुकंपा निय कित्तदाणंच।
> दुन्न विमुक्खो भणिओ, तिन्नवि भोगाइया दुंति ॥१॥

अभय सुपात्रदान मोक्ष ना कारण कह्या माटै बचाव्यो, मैं तो ए बुद्धिये न बचाव्यौ, ए खान पानादि मैथुन हिंसा करौ ए बुद्धि मारी न हुती। तईये ते बोल्यौ, कोईक ना बचाव्या न बचै, न मार्या मरै, जीव मात्र आयु स्थितैं जीवै, आयु स्थित परिपाकाभावें कोई मरतूं न थी। अत्र कः संदेहः तेथी आपणै हाथ मारवूं बचायवूं नहीं, ते कारणै 'मर गयां तेस हिंसा न जाणें' तेथी जीव हणीजतां न बचावणौ ते परमेश्वर भाषित दया नौ तत्व नाम रहस्य नाम=सार ए वखाण्यौ छै।

> केय कहि जेम मनराज मोजां लियें,
> तेम करियें न आरंभ गिणियें।
> हेय गेयादि जे मन प्रवृत्ति वधै,
> ते सबै सिद्धता तेण भणियें ॥सं०॥४॥

अर्थः—केचित पुनः एव वदंति, केईक इस्यौ कहै जिम जेहनी जेहवी प्रकृति होय तेह नें कोई प्रसन्न करया वांछै तिवारैं

वचन नूं जाल गूंथ्यूं छै तेमां सर्व प्राणीयो नी बुद्धि वलगा रही छै तेथी जाल कह्यं । थोडूं ए सर्व कथन मात्र छै। 'निश्चयैं सिद्धता जैन दाखै' नाम=जैनदर्शन नूं तात्विक रहस्य ए छै-निश्चे थकीज सिद्धता छै। निश्चयाभावे सिद्धता नों अभाव, कथ महाकष्टैं करी अनंते भवे सेव्यो विवहार तेथी सी सिद्धता थई ? तेथी अनंत में भवांते निश्चय आवसी, तद्वैज सिद्धता थसी तिमज आनंदघन कहे 'निह्चे एक आनंदो' पुनः 'निह्चे सरम अनंत' ॥

> विविध किरिया करी विविध संसार फल,
> फल अनेकान्ति कैं गति समृद्धि ।
> गति समृद्धी पणैं भव भ्रमण नवि टलै,
> तेंहथी सी थई आत्म सिद्धि ॥७॥मं०॥

अर्थ—'विविध किरिया करी' नाम=नाना प्रकारनी किरिया जिन दर्शन मां ठहरी । आजकाल ना जिन दर्शनी ते कहिचै करीनैं जैन दर्शन मोक्ष साधक कहीजै छै । "करणं क्रिया" नाम= करवूं ते किरिया कहीजै ते पंचम काल ना जैन दर्शनी कोई किम ही जैन दर्शन प्रवर्तना बतावै न कोई किमही बतावै । एतले भिन्न भिन्न कथनें भिन्न भिन्न क्रिया 'विविध संसार फल' नाम=नाना प्रकार न संसार फल नाना प्रकार नी क्रिया थको थयूं जिम जिन नें दीप पूजा करतां ज्योत सद्योती होय, नैवेद्य पूजा नौ भोग फल वखांण्यौ । तेथी नाना प्रकार नी क्रिया नाना प्रकार संसार फल थया । कथं भिन्न भिन्न कथनेंत्वात नें जइये नाना फल थया तइयैं 'फल अनेकांतिकै गति समृद्धी' नांम=अनेक

एक कहि प्रथम नय कथन विवहार नूं,
पारणामिक पणें केय भाखै ।
केय कहि वचन नूं जाल गूंथ्युं सवै,
निश्चयें सिद्धता जैन दाखैं ॥६॥मं०॥

अर्थः—एके केचित एवं वदंति, एक केई एहवूं कहै 'प्रथम नय कथन विवहार नूं' नाम-अनन्ते ही तीर्थंकर उपदेस मां प्रथम कथन विवहार पूं उपदिस्यो। यथा-'विवहार नय छेए, तित्थु छेओ जओ भणिओ।' तेथी जैन दर्शन नूं मूल विवहार जांणी केवली छद्मस्थ साधू नें वांदे। यदुक्तमावश्यनिर्युक्तौ "ववहारो विहुबलव, जं छउ मत्थव वंदए अरिहा" ते कारणें जैन दर्शन मां आधिक्यता विवहार नौं छै, तइयें परणांमवादी बोल्यो-रे विवहारवादी! . तूं स्यूं विवहार २ पुकारै छै, परमेश्वरे तो 'किरिया वडपत्त समा' भाखी छै, सिद्ध प्रापिका नहीं, नवग्रैवेयकांत चलाणी छै तेथी विवहार नौ माजनो स्यौ ? 'पारणामिकपणें केय भाखै' नाम=जैन दर्शन नौ रहस्य तौ परणामिकपणें भाखे छै। परणामे न होय तौ साठ हजार वर्ष महादुष्टकरणीयैं छ खंड साधनें प्रवर्यो भरत सरीखो महापापी थारै कथनें तौ तद्भव मुके न ज जाय प ' करणी सिद्ध प्रापिका नहीं, सिद्धप्रापक धर्मीपणूं परणांम में रह्यूं छै। तेथी परमेश्वर नूं धर्म परणामिक छै। 'केय कहि वचन नूं जाल गुंथ्यूं सवै' नाम=केचित् एवं वदंति ए सर्वमात्र पैंतालीस आगमो मां षड् द्रव्यादिक नूं कथन ते सर्व प्राणीयो नी बुद्धि उलभायवानैं

वचन नूं जाल गूंथ्यूं छै तेमां सर्व प्राणीयो नी बुद्धि उलम्क रही छै तेथी जाल कह्यूं । यांजूं ए सर्व कथन मात्र छै। 'निश्चयें सिद्धता जैन दाखै' नाम=जैनदर्शन नूं तात्विक रहस्य ए छै-निश्चै थकीज सिद्धता छै। निश्चयाभावै सिद्धता नौं अभाव, कथं महाकष्टै करी अनंते भवे सेव्यो विवहार तेथी सी सिद्धता थई? तेथी अनत में भवांते निश्चय आवसी, तइयेंज सिद्धता थसी तिमज आनंदघन कहै 'निहचै एक आनदो' पुनः 'निहचै सरम अनंत' ॥

विविध किरिया करी विविध संसार फल,
फल अनेकान्ति कैं गति समृद्धि ।
गति समृद्धी पणैं भव भ्रमण नवि टलै,
तेंहथी सी थई आतम सिद्धि ॥७॥मं०॥

अर्थ—'विविध किरिया करी' नाम=नाना प्रकारनी किरिया जिन दर्शन मां ठहरी । आजकाल ना जिन दर्शनी ते कहिवै करीनै जैन दर्शन मोक्ष साधक कहीजै छै । " करणं क्रिया " नाम= करवूं ते किरिया कहीजै ते पंचम काल ना जैन दर्शनी कोई किम ही जैन दर्शन प्रवर्तना बतावै न कोई किमही बतावै । एतले भिन्न भिन्न कथनैं भिन्न भिन्न क्रिया 'विविध संसार फल' नाम=नाना प्रकार नें संसार फल नाना प्रकार नी क्रिया थको थयूं जिम जिन नें दीप पूजा करतां ज्योत उद्योती होय, नैवेद्य पूजा नौ भोग फल वखांण्यौ । तेथी नाना प्रकार नी क्रिया नाना प्रकार संसार फल थया । कथं भिन्न भिन्न कथनैंवात नैं जइये नाना फल थया तइयें 'फल अनेकांतिकै गति समृद्धी' नाम=अनेक

फल छे तइयैं अनेक फल भोगववा ना स्थानक अनेक गति ठहरी तौ जेहवा जेहवा फल संबंध भोगववां नी जेहवी जेहवी गति तेहवी तेहवी गतैं गमन थाय। 'गति समृद्धो पणि भवभ्रमण नवि टलै' नाम=एक फल भोगववाँ नी एक गतैं जई नैं एक फल भोगव्यूं। बीजा फल संबंधि ना गतैं जई बीजो फल भोगव्यूं इम-त्रीजूं चौथूं तइयैं जैन दर्शन थकी गति समृद्धो गति नी वधोतर ठहिरी। जिहां गति नी वृद्धि तिहां भव भ्रमण नवि टली नैं जैन दर्शन विना अन्य दर्शन मात्र भव भ्रमण टालवा नैं कारण नथी जणाव्यूं नैं आज ना जैन दर्शनीयो ना कथन चोते छते मत ममत्वीपणा थी हठग्राहीपणा थी सात नयो थी एक नय ग्रहण वा दोय पिण नय ग्रहण करीनैं जेथी पोता नौ मत पुष्ट थाय तेहवूं तेहवूं कहै तो 'तेहथी सी थई आत्म-सिद्धो' नाम=तेहवा जैन दर्शन थकी आत्मानी सी सिद्धता थई? एतलै जैन दर्शन प्रवर्त्तते आत्मायैं मोक्षफल पामियै नैं आज ना जैन दर्शन सेववा थकी संसार नी वृद्धिता पामियै ते जैन तौ एहवूं नथी परं मदुक्तिः—

> आतम शुद्ध सरूप धां, वारन जिनमत एक।
> हम से मैंसे मेष धा, कीच कीयो एकमेक ॥१॥

एथी अम्हे जैन ने लजावां छां—

जल भर्‌यैं कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही।
सूर सत्ता रही रवि सरूपैं ॥मं० ॥८॥

अर्थः—तेथी ए सर्व नूं कथन जैनाभासी छै । तत्र [illegible] लक्षणमाहः—"जैन लक्षण रहिता जैनवत् आभासमाना [illegible] कथं एक नयानुजाई सर्व कथनत्वात्। हिवे सर्व [illegible] स्यात् पुरस्सर भाषो ए सर्व नै कहितौ हुवौ। अहो भाईयो ! [illegible] दर्शन एम छै नहीं "निश्चय नयै' नांम=एकेलूं निश्चय नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं अनेकांतकत्वात् 'नही विवहारथी' नांम=[illegible] एकांत विवहार नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं सापेक्षकत्वात्। है नांम=यथा वस्तुरूपैं जिम अवस्थित नांम=रह्यं छै निश्चय नय नूं कथन, तिम निश्चयनयै जैन दर्शन छै वली जिम रह्यं छै विवहार नय नूं कथन तिम विवहार नयापेक्षी जिन जैन छै नहीं। है नांम-जिम निश्चय विवहार नय नी अपेक्षा न राखे तिम जैन दर्शन मां कथन नथी वली विवहार नी अपेक्षा निश्चय न राखे तिम विण जैन दर्शन मां कथन नथी, एतले जैन मे एकांत नयापेक्षिक कथन मात्र नथी। तिहां दृष्टांत कहै 'जल भर्‌यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रहो' नांम=जिम पांणी थी भर्‌या घट नैं विषे सहस्रकिरण सम्मिलत सूर्य नां प्रतिबिंब पड़ी रह्या छै ते जोइ नें कोइ गहबूं कहे, ए सूर्य छैं। तउवे बीजो कहै सूर्य नथी, सूर्य नां प्रतिबिंब छै, तेनूं ज दृष्टान्त छै तिम मात्र जे प्रथम मत कह्या ते जैन नथी, कथं एकान्त माटें, तेह मां जैन नी प्रतिबिंब नी मात्रा छै, जैनी दीसता थका जैनी नथी

फल छे तइयें अनेक फल भोगवया ना स्थानक अनेक गति ठहरी तो जेहवा जेहवा फल सबध भोगववां नी जेहवी जेहवी गति तेहवी तेहवी गतें गमन थाय। 'गति समृद्धी पण भवभ्रमण नवि टलै' नाम=एक फल भोगवयाँ नी एक गतें जई नें एक फल भोगव्यूं। बीजा फल सबंधि ना गतें जई बीजो फल भोगव्यूं इम-त्रीजूं चौथूं तइयें जैन दर्शन थकी गति समृद्धो गति नी वधोतर ठहिरी। जिहां गति नी वृद्धि तिहां भव भ्रमण नवि टली नें जैन दर्शन विना अन्य दर्शन मात्र भव भ्रमण टालवा नें कारण नथी जणावूं नें आज ना जैन दर्शनीयो ना कथन जोते छते मत ममत्वीपणा थी हठग्राहीपणा थी सात नयो थी एक नय ग्रहण या दाय पिण नय ग्रहण करीनें जेथी पोता नो मत पुष्ट थाय तेहवूं तेहनूं कहै तो 'तेहथी सी थई आत्म-सिद्धी' नांम=तेहवा जैन दर्शन थकी आत्मानी सी सिद्धता थई? एतलै जैन दर्शन प्रवर्त्तते आत्मायें मोक्षफल पामियें नें आज ना जैन दर्शन सेवता थकी ससार नी वृद्धिता पामियें ते जैन तो एहवूं नथी पर मदुक्तिः—

> आतम सुद्ध सरूप का, कारन जिनमत एक।
> हम से मैसे भेष धर, कीच कीयो एकमेक ॥१॥

एथी अम्हे जैन नें लजावां छा—

> नहीं निश्चय नयें नहीं विवहार थी,
> है नहीं है यथा वस्तु रूपें।

जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही
सूर सत्ता रही रवि सरूपै ॥मं० ॥८॥

अर्थः—तेथी ए सर्व नूं कथन जैनाभासी छै । तत्र जैनाभास लक्षणमाहः—"जैन लक्षण रहिता जैनवत् आभासमाना जैनाभासा;" कथं एक नयानुजाई सर्व कथनत्वात्। हिवै सर्व नयानुजाई स्यात् पुरस्सर भाषो ए सर्व नै कहितौ हुवौ। अहो भाईयो ! जैन दर्शन एम छै नहीं "निश्चय नयै" नांम=एकेलूं निश्चय नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं अनेकांतकत्वात् 'नहीं विवहारथी' नांम=तिमज एकांत विवहार नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं सापेक्षकत्वात्। हे नांम=यथा वस्तुरूपैं जिम अवस्थित नांम=रह्यूं छै निश्चय नय नूं कथन, तिम निश्चयनयै जैन दर्शन छै वली जिम रह्यूं छै विवहार नय नूं कथन तिम विवहार नयापेक्षी पिण जैन छै नहीं । हे नांम=जिम निश्चय विवहार नय नी अपेक्षा न राखै तिम जैन दर्शन मां कथन नथी वली विवहार नी अपेक्षा निश्चय न राखै तिम पिण जैन दर्शन मां कथन नथी, पतलै जैन मे एकांत नयापेक्षिक कथन मात्र नथी। तिहां दृष्टांत कहै 'जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही' नांम=जिन पांणी थी भर्या घट नैं विषै सहस्रकिरण सम्मिलत सूर्य नां पडिबिंब पड्यो रह्या छै ते जोइ ने कोई एहवूं कहै, ए सूर्य छै । वड्यै बीजो कहै सूर्य नथी, सूर्य नो पडिबिंब छै, तेनूं ज छतापणूं छै तिम मात्र जे प्रथम मत कह्या ते जेन नथी, कथं एकान्त माटैं, तेह मां जैन नी पड्डिबिंब नी सत्ता छै, जैनो दीसता छता जैनी नथी

फल छे तइयें अनेक फल भोगववा ना स्थानक अनेक गति ठहरी तो जेहवा जेहवा फल संबध भोगववां नो जेहवी जेहवी गति तेहवी तेहथी गतें गमन थाय। 'गति समृद्धी पणे भवभ्रमण नवि टलें' नाम=एक फल भोगववाँ नो एक गतें जईनें एक फल भोगव्यू। बीजा फल संबंधि ना गतें जई बीजो फल भोगव्यूं इम-त्रीजूं चौथूं तइयें जैन दर्शन थकी गति समृद्धो गति नो वधोतर ठहिरी। जिहां गति नी वृद्धि तिहां भव भ्रमण नवि टली नें जैन दर्शन विना अन्य दर्शन मात्र भव भ्रमण टालवा नें कारण नथी जणावूं नें आज ना जैन दर्शनीयो ना कथन जोते छते मत ममत्वीपणा थी हठग्राहीपणा थी सात नयो थी एक नय ग्रहण या दाय विण नय ग्रहण करीनें जेथी पोवा नो मत पुष्ट थाय तेहवूं तेहनूं कहै तो 'तेहथी सी थई आत्म-सिद्धी' नाम=तेहवा जैन दर्शन थकी आत्मानी सी सिद्धता थई? एतलें जैन दर्शन प्रवर्त्तते आत्मायें मोक्षफल पामियें नें आज ना जैन दर्शन सेववा थकी ससार नी वृद्धिता पामियें ते जैन तो एहवूं नथी पर मदुक्तिः—

> आतम शुद्ध सरूप को, कारन जिनमत एक।
> हम ते मैंसे भेष धर, कीन कीयो एकमेक ॥१॥

एथी अम्हे जैन नें लजावां छा—

> नहीं निश्चय नयें नहीं विवहार थी,
> है नहीं है यथा वस्तु रूपें।

जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही
सूर सत्ता रही रवि सरूपै ॥मं० ॥८॥

अर्थः—तेथी ए सर्व नूं कथन जैनाभाषी छै । तत्र जैनाभास लक्षणमाह:—"जैन लक्षण रहिता जैनवत् आभासमाना जैनाभासा;" कथं एक नयानुजाई सर्व कथनत्वात्। हिवै सर्व नयानुजाई स्यात् पुरस्सर भाषो ए सर्व नै कहितौ हुवौ। अहो भाईयो ! जैन दर्शन एम छै नहीं "निश्चय नयैं' नाम=एकेलूं निश्चय नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं अनेकांतकत्वात् 'नहीं विवहारथी' नाम=तिमज एकांत विवहार नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं सापेक्षकत्वात्। है नाम=यथा वस्तुरूपैं जिम अवस्थित नाम=रह्यूं छै निश्चय नय नूं कथन, तिम निश्चयनयै जैन दर्शन छै वली जिम रह्यूं छै विवहार नय नूं कथन तिम विवहार नयापेक्षी पिण जैन छै नहीं। है नाम=जिम निश्चय विवहार नय नी अपेक्षा न राखै तिम जैन दर्शन मां कथन नथी वली विवहार नी अपेक्षा निश्चय न राखै तिम पिण जैन दर्शन मां कथन नथी, एतलै जैन में एकांत नयापेक्षिक कथन मात्र नथी। तिहां दृष्टांत कहै 'जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही' नाम=जिम पांणी थी भर्या घट नैं विषै सहस्रकिरण सम्मिलत सूर्य नां पडिबिंब पडी रह्या छै ते जोइ नै कोई एहवूं कहै, ए सूर्य छै । तइयै बीजो कहै सूर्य नथी, सूर्य नो पडिबिंब छै, तेनूं ज छतापणूं छै तिम मात्र जे प्रथम मत कह्या ते जैन नथी, कथं एकान्त माटैं, तेत्र मां जैन नी पडिबिंब नी सत्ता छे, जैनी दीसता छता जैनी नथी

कथं एक नयापेक्षकत्वात्। 'सूर सत्ता रही रवि सरूपें' नाम=सूर्य नी सत्ता जिम सूर्य ना सरूप में रही तिम जैन दर्शन नी सत्ता जैन दर्शन मां रही छे सम नयानुजाईत्वात्।'

जिनमतें ममत सत्ता न पामीजियें,
ममत सत्ता रही मत ममत्तें।
द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में,
धर्म धर्मी सदा एक वृत्तें ॥मंद०॥६॥

अर्थ—'जिनमतें ममत सत्ता न पामीजियें' नाम=जिनमत नें विषे मम ममत नी सत्ता छतापणूं न पांमियै एहवूं कह्यै छतै एकांतवादी बोल्यो-कथं किम न पामीजै ? तइयें जैन दर्शनी तेनैं उत्तर आपै अनेकांतकत्वात्-अनेकांतकपणा माटें, यथा-नाम दर्शयति 'यत्र यत्र अनेकांतकत्वं तत्र तत्र निर्ममत्वं' इति सिद्धांतः। 'ममत सत्ता रही मत ममतैं' नाम=ममत्वनी सत्ता किहां रही छै जिहां मत नौ ममत्त्व छै, तिहां अमे इम मांनियै छियै ना अन्य इम न मानियैं, ते मत ममत्व नै विषै ममत सत्ता रही छै। कथं एकांतत्वात्-एकांतपणा माटै यथा 'यत्र यत्र एकांतत्वं तत्र तत्र मत ममत्वं' तेथी जिहां एकातो पणुं छै तिहाज मत ममत्व नी सत्ता छै। अत्र दृष्टांत 'द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म मे, नाम= द्रव्यता द्रव्यत्व धर्मपिणूं द्रव्य में रहूं छै धर्मता द्रव्यत्व धर्मपिणूं तेहनै विषै रही छै। द्रव्यता, धर्मता रह्यां तो येई द्रव्य नै विषै परं भिन्ननिदर्शन करयां छतां द्रव्य नूं धर्म द्रव्यत्व, तेहनै विषै रही द्रव्यता, तिम जैन नें विषै जैनत्व धर्म, तेहनै विषै रही

जैनता नगमादि सात नये सम्मिलित कथन तेज जैन धर्मता जैनत्व, जैन धर्मता रहां तौ बेई जैन मां छै पर भिन्न निदर्शन करता छतां जैनता जैनत्व धर्म मां रहो छै, तिहां ममत्व मात्र नथी। कथं अनेकांतवस्त्वात्। जे अन्य पूर्वे भाख्या जैनी एकेक नय पेषी, अतएव मत ममत्वी तेऊ न विषे जैन धर्मता नथी ते जे एक नयें कथन धारी रह्या छै ते सर्व नय जैन मां हीज छै तेथी जैनी जणाय छै, पर तेऊ मां जैनता नथी, सर्वांश वचन न मानवा थी 'धर्म धर्मी सदा एक वृत्ती', नांम=जैन मां रह्यूं जैनत्व धर्म, तेमां रही जैन धर्मता, तेहनी सदा एक वृत्ती छै। सात नय सर्वधी वृत्ति नांम=आजीवका छै मात्र कथन सात नय विना न छै, तेहवा जैनियों नी बलिहारी, पर अति विरला।

बहिर आतम मती परम जड़ संगती,
मत ममत्ती महा मोह मायी।
प्रमत्त अप्रमत्त गुणठाण चरतूं भ्रमे,
मूढ मति नर्कें अविरत कषायी ॥मं०॥१०॥

अर्थ—'बहिर आतम' नाम=ए पूर्वे कह्या ते बहिरात्मा छै। कथं जिन वचन विराधकत्वात्। 'मती' नाम=बहिरात्मा पणां नी बुद्धि छे। जेऊ मां पुनः 'परम जड संगती' नांम=उत्कृष्ट जड ना सगी सेवन करवा वाला, अतएव तप संजमादि ना असेवी छ। पुनः 'मत ममत्ती' नाम=मत ना ममत्वी छता मत माटे लड़ाई करता फिरे, इम न विचारे साक्षात् धर्म विरुद्ध कथन कहां छा ते फिरी तेहनो पक्षपात स्यो? तेई नहीं पुनः ते वेदघातक छै

'महा मोह' नाम=महामोही हतां सांभीया, रूपरिग्रहीया छै। पुनः केहवा छै 'मायी' नाम=महामायी छै, ते कपटवृत्ति थी सरागी थया श्रावको थी एहवूं कहे 'प्रमत्त, अप्रमत्त गुणठाण वरतूं अमे' नाम=प्रमादी छट्ठे, अप्रमादी सातमें, गुणठाणें अंतर महूर्त्त २ गुणस्थानें वरतां थां, एहवूं 'मूढमती बकै' नाम=मूर्ख बुद्धी थका एहवूं बकै-प्रलपन करै। रहस्यार्थे जण जण आगल एहवूं कहे, तद्रव बकवाद करें, पूर्वे तो कह्या होज छै फिरी एक ना गुण कहे 'अविरति' नांम=न विरति, अविरति विरत मात्र नथी धर्म श्रद्धा मुद्दत्वात। तौ कहे नवकारसी नौ तौ विरत छे तिहां लिखै अध घडी सूर्य ऊगौ आयां सिद्धाचलजी सरीखे सिद्धक्षेत्रनी तलहटियें नवकारसी पारता में देख्या पुनः वली केहवा 'कषायी' नांम=क्रोधी मानी लोभी छता।

> आप नंद्या करी भव भयै थरहरो,
>
> परहरो मुगें नंद्या पराई।
>
> सम दम सम भजो तजो मत ममत नें,
>
> राग दोसादि पुन आम टाई ॥मं०॥११॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त नें मत ममत्ती कह्या तइयें भव्य जीव कहै—हिवै अमे स्यो मार्गे प्रवर्त्तियै? स्यांम वस्त्रधारी तौ देहरा में बठावणै ही न पैसे, तेहनें सम्यक्त्वी मतावे, काथांबरी स्यामवस्त्रधारी नै ढूंटिया मुर्ते कहे तेहनें सम्यक्त्वी कहै, बीजाही एक एक नें परस्पर निंदे, तिवारें अमारे मनमें ए विचार आवै—एक कहे ते साचूं वा एक कहे ते साचूं। अमें स्यौ प्रवर्त्तियै, अमारी सी गति,

साचूं जैनधर्म अमारै हाथे किम चढै ? तेनूं उत्तर—ए सर्व मतधारी दुकानदार छै, जिम दुकानदार नें पल्ले साच नहीं तिम एक विश। तद्यै भव्य फिरी पूछै अमनै करणीय कार्य काँईक बताउ। तद्यैं बतावै 'आप नदा करौ' नाम=आपणा आत्मानो आप निंदा करौ। 'भव भयै थरहरौ' नाम=भवभत्ययःमतिरूप भय थी थरहरौ धूजो, रे आत्मा तू जिन प्रणीत आगम नो एक अक्षर हीन वा अधिक करीस तौ अनंतो भवभ्रमण, रे आत्मा तुमनें करवो पड़स्यै, तेनौ भयराखौ। 'परहरौ मुखैं निंदा पराइ' नाम=मुख हूंती छता वा अछता, पर ना अवगुण कहिणा परहरौ-छोड़ो ए त्याज्य छे सम दम सम भजौ' नाम='सम'=शत्रु मित्र तुल्य भजौ-आदरौ, 'दम'=पचेन्द्रिय दमन आदरौ, 'दम=क्षमा आदरौ ए आदरणीय, 'तजौ मत ममत न' नाम=मत रौ ममत्व हठमांही पणौ छोडो, एतलै जिनसिद्धांत सूं पोतानो प्रवर्तन विरुद्ध दीसे तोही न छोडै, आत्मार्थी तेह न छोडो। 'राग दोसादि' नाम=राग नैं द्वेष नै आदि शब्दे कलह अभ्याख्यानादि नें छोडौ। पुनः=वली 'आस दाई' नाम आस्या दाई बांदी नैं छोडौ, ए नें छोड्या विना सरव व्यर्थ छै।

> "अन्वयं और व्यतिरेक हेतु करी,
> समझ निज रूप नैं भरम खोवै।
> शुद्ध समवाय तैं आत्मता परिणतैं,
> ज्ञान नूं सार पद सही होवै ॥१२॥मं०॥

अर्थः—हिवै आत्मा जेथी आत्मीक सरूप पामै तेहवा जैन दर्शन नू जे रीतैं कथन छै ते रीत कही बतावै। 'अन्वय और

व्यतिरेक हेतु' नाम=एक अन्वय हेतु बोजो व्यतिरेक हेतु ए बे हेतु जेहथी परणामें वरतते होय ते कथन सिद्धांत थी अवधारण करी नें पोते निरमाई निरगत हठा छतौ ए बे कारणें पोताना आतमा मां पोतें भली रीतें एतम' नाम=समभें— तत्रान्वय लक्षणमाहः-यत् सत्वे यत् सत्वमन्वयः' नाम=सरूप सत्वे आतमता सत्व नाम मुझ में ज्ञान दर्शनादि नो छतापणु' होय तो एक भवधारी गुरें मुझ में चोथो पांचमो गुणठाणौ ठहिराव्यो तेई सरौ बीजा आगला पिण होय। परं हूँ मारा आतमा थी आतमा में विचारूं तो काम वसवर्त्ती छतौ, लोभ वसवर्त्ती छतौ सी सी कुचेष्टा, स्यौ स्यौ अकरणीय कार्य ते मां प्रवर्त्तुं, तौ ए मुझ नें पचमौ गुणठांणौ थनाथे ते मुझनें पोता ना सरागी करथा माटै घतावें छै। परं ए वातौ थी मुग्ध प्राणी ठगाई जाय 'निज रूपनें भरम खोवे' नांम= व्यतिरेक हेतुवें करीनें 'निजरूप नौ भरम खोवै' नांम= पोताना सरूप नौ भरम खोवे-गमावै। तत्र व्यतिरेक लक्षणमाहः— 'तदभावे तदभावो व्यतिरेक,' नाम-काम, क्रोध, लोभ, मोहादि. सद्भावे सम, दम, उम, ज्ञान, दर्शनादि नें अभावें तदभावः नाम पंचमादि गुणस्थानक नो अभावः नें जे समी दमी उपसमी होय ते पोताना सरूपनें समफीनें निजरूप नौ भरम गमावी नें 'शुद्ध समवाय तें' नाम=शुद्ध समवाई कारणें करीनें, तत्र समवाय लक्षणमाहः— 'यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत्समवाय कारणं' नाम= आतमा रे ज्ञानदर्शन चारित्रवत छतैन ज्ञानदर्शन चारित्रादि समवेत मिल्यो थकौ आतमता परिणतें' नांम=आतमता नूं परणमन होय ते आतमानें 'ज्ञाननूं सार पद' नाम=मुक्तिपद 'सही होवै नांम=निरचे संघातें होवै इति सटकः।

इति दूसमकाल संबधी जिनमतधारको नी विवस्था वर्णन स्तवन सम्पूर्णम् ॥ सं० १८८० लि०। पं०। सद्दुः ॥

——:®:——

आध्यात्मिक पद संग्रह

(१) राग—भैरू

भोर भयौ भोर भयौं, भोर भयौ प्राणी ।
चेतन तूं अचेत चेत, चिरियां चचहानी ॥भो०॥॥टेक॥
कवल खंड खंड विकसाने, कौलनी मुदांनी ।
कंज उपम खंजन सी, नैनां न घुरांनी ॥भो०॥१॥
है विभाव विच नींद, सुपन की निसांनी ।
तेरे सुसुभाव मांहिं, दोनूं न समांनी ॥भो०॥२॥
आरोपित धर्म तैं, सुरूप की दुरांनी ।
रूप के सुज्योत, ज्ञानसार ज्योत ठांनी ॥भो०॥३॥

(२) राग—पट

भोर भयौ अब जाग प्राणी,
क्यु अजहूं अखियांन घुरानी ॥भो०॥
मनुज जनम तूं क्यु नहि चेत्यो,
पसुआनी चिरिया चचहांनी ॥भो०॥१॥
चेतनधर्म अचेत भयो क्युं,
चेत चेत चेतन सुज्ञानी ।

बीतीं यात आयु बल जोबन यूं,
टप टपकत पुमली पानी ॥भो०॥२॥
पर परणित परणमन प्रयोगे,
नींद सुपन तुझ मांहि ममानी ।
ज्ञानसार निज रूप निरुपम,
तामें जागरता नीमानी ॥भो०॥३॥

(३) राग—घाटो

उठ रे आतमवा मोरा, भयो घट में भोर ॥उ०॥
अज्ञान नींद अनादि, न रहि तिल कोर ॥उ०॥१॥
निज भाव संपद तेरी, पकरो बल फोर ॥उ०॥२॥
नहीं रोग सोग वियोगा, नहीं भोग को सोर ॥उ०॥३॥
नहीं बंध उदयादिक नौं, कोई काले जोर ॥उ०॥३॥
गही भाव निज निश्चै नौं, विवहारे छोर ॥उ०॥५॥
ज्ञानसार पदवी तुझ में, कहुं और न ठौर ॥उ०॥६॥
सिद्ध रूप सिद्ध संपद नौं, भोगी नहीं और ॥उ०॥७॥

(४) राग—सारंग, वृन्दावनी

हो रही तातैं दूध मिलाई ॥हो०॥
लाऊ लाऊ करती डोलै, ज्यूं बच्छ बिछुरि माई ॥हो०॥१॥

एते दिनां पिया सूं रमते, अज्यूं उद्गार न आई।
नीठ पिया कहुँ निजर निहारे, क्यूं वैरन उठ धाई ॥ हो ॥२॥
फूहड़ लंबोदर खर रदनी, वसन देख न सुहाई।
सुमति पियारी प्राण पिय मिल, ज्ञानसार पद पाई* ॥ हो ॥३॥

(५) राग—धन्याश्री। ढाल—नातौ नेह कौ

मास गयां पछी क्यूं ही आध, न चालै साथ ॥सा०॥
निहचै याही जान हैत तो, क्यूं संचै भर बाथ ॥सा०॥१॥
सब में सूंब कहायलै, रीतै चलिहै हाथ।
दै सो तेरी मूंआ पीछै, और हुवेगो नाथ ॥मा०॥२॥
तृष्णा रागै परणम्यो तूं, यातें अलछ अनाथ।
ज्ञानसार गुण संपदा, निजरूप सनाथ ॥सा०॥३॥

(६) राग—धन्याश्री

विषम अति प्रीत निभाना हो ॥वि०॥
जिय लातें ही प्रीत निभै जौ, तौ हूं सुगम सयाना ॥१॥
मौतन संग दुसह प्रान तैं, यातैं विषम बयाना हो।
प्राणदान अपहान बांन मृग, गाय गाय कछु गानाहो ॥२॥
अंग आलिंगन सौत पिय पेखी, कैसें धीर धराना हो।
गूडी ऊडी वस दोगी के, तैसे पिय वस प्राना हो ॥३॥

* "प्राण पियारी सुमति तिया कुं, ज्ञानसार गल लाई।"

में मन वच तन पिय संग चाहूं, पिय पर रंग लुभाना हो ।
वड़वानल तें विरहानल की, ताप अनल दुख दाना हो ॥४॥
काल भुयंगम की मनु वाफें, प्रलयै विलय वहाना हो ।
ज्ञानसार एती सुन आए, छिन सब दुख विसराना हो ॥५॥

(७) राग—काफी

गोट सयाने कहा कहि समझावै ॥गो०॥
सूतैं कूं धकधूण उठावैं, जागत नर कैसे कें जगावै ॥गो॥१॥
जागरता इक उजागरता, इन कुल दोय अवस्था गावै ।
छोर दई गही नींद सुपनता, नीची अपनै हाथ दीखावै ॥२॥
नींद न कर ज्युं सुपन न आवै, नींदि गया जागरता पावै ।
जागत जागत उजागरता होवै, ए जग न्याय कहावै ॥३॥
सूतें सुद्ध भूल गये घर की, पर घर में सब रैन गमावै ।
जानत होय अजान सयानी, तासें के कैसे घरि आवैं ॥४॥
कौन सुनैं कासूं कहूं सजनी, घट में हो घट मांहि बिलावै ।
सायर छोल उठै सायर तें, पै उनकी उन मांहि ममावै ॥५॥
इक इक दुख सब जग में सजनी, पै मुहि दुख का अंत न आवै ।
वेग पठाय सयानो दूती, बिन दूती नागर वस नावै ॥६॥
तुम हो आतुर वे अति चातुर, दोनुं कर कैसे कै जीमावैं ।
पै हम दूती विरुद धरावैं, अबकै ज्युं त्युं आन मिलावैं ॥७॥

एकख हाथ न बाजै तारी, जग जन दोनूं हाथ बजावैं।
रैंन दिनां रटना सुहि उनकी, पै पिय एक घरी नहीं चावै ॥८॥
विन पीतम विरहा तन तावै, सीत समीर इतै संतावै।
तो सब दुख मिट जाय सयानी, ज्ञानसार विन तेड़िहि आवै ॥६॥

(८) राग धन्यासिरी

कौन किसी को मीत, जगत में। कौन किसी को मीत।
मात तात अरु जात सजन सुं, काहे रहत निचींत ॥ज०॥१॥
सबही अपने स्वारथ के हैं, परमारथ नहीं प्रीत।
स्वारथ विणस्यै सगो न होगो, मींता मन में चींत ॥ज०॥२॥
उठ चलेगो आप इकेलो, तूं ही तूं सुविदीत।
को न किसी को तूं नहीं काको, एह अनादि रीत ॥ज०॥३॥
तातें इक भगवंत भजन की, राखो मन में नीत।
ज्ञानसार कहै ए धन्यासी, गायो आतम गीत ॥ज०॥४॥

(६) राग सोरठ

सांम काम न सर्यो, मा साचै मन सूं ॥सां०॥
कत्तो करम कम्म फल कांमी, नांमी नाथ थयो ॥सां०॥१॥
सम परणामी सामा देखी, उलसित चित्त न भयो ॥सां०॥२॥
धन गन गाड रख्यो कूपक में, काकूं कछु न दयो ॥सां०॥३॥
ज्यूं ज्यूं हूं सुलझन कूं धायो, त्यूं त्यूं उलझ पर्यो ॥सां०॥४॥

छक पगड़ें जब बाजी आई, तब हूँ हार गयो ॥मां०॥५॥
आसा मागी गई नहीं मोह', आसन मार लयो ॥मां०॥६॥
आप को मांयो पाप उपायो, नहिं कछु धरम कियो ॥मां०॥७॥
मनसा शोधन सोधन घट को, एक घरी न कियो ॥मां०॥८॥
जैसे सुनी ज्ञानसार कु', साहिब निरवहियो ॥मां०॥९॥

(१०) राग—सोरठ

चेतन में हूँ रावरी रानी ।
वीर विवेक जई समझावौ; अंत बिरानी बिरानी रे ॥चे०॥१॥
और सखी उपहास करत है, खओ नी सेज सुहानी ।
मेरो पिया पर संग रमत है, तातैं पंडुर वानी रे ॥चे०॥२॥
वीर विवेक हितु तुमही से, भगनी होत है रानी ।
मेरे पति कु' जाय सुणावो, कही मैं सोइ कहानी रे ॥चे०॥३॥
वीर विवेक कहे भगनी से, उद्यम सिद्ध निदानी ।
सरधा सखि समता मिल ल्याई, ज्ञानसार कु तानी रे ॥चे०॥४॥

(११) राग—मारू

आन जगाई हो विवेक, सुहागनि । आन जगाई हो ।
उठ सुहागनि प्रीतम आए, करहु बधाई बधाई हो ॥वि०॥१॥
उठी सुहागनि भरिय आभरणे, हित कर कंठ लगाई हो ।
खबर परी जब तबही सरधा, धममनि मंदिर आई हो ॥वि०॥२॥

कर जोड़ी कहि सरधा सामी, महिर निजर फुरमाई हो ।
चौगति महिल छोर छोटी कुं, बड़ी याद क्यूं आई हो ॥वि०॥३॥
सुमति पठायो अनुभौ आयौ, उन सब सुद्ध सुनाई हो ।
छोर दई उन कुटिल कुमति कुं, आयो संग ले भाई हो ॥वि०॥४॥
हसें रमें अब क्रोड़ा मंदिर, सुमति सुचेतन राई हो ।
प्रेम पीयूष प्याले भर पीवत, ज्ञानसार पद पाई हो ॥वि०॥५॥

(१२) राग—तोडी

कुसल सुमति अति वैरनि नावै ॥कु०॥
संग करि दूर रह्यो अति रमयो,
रंग भर छिन इक पिय न बुलावै ॥कु०॥१॥
कोह विकल करयो मान केरै परयो,
झूरि झूरि पिय आंख गमावै ।
मेरी मेरी मेरी न कबहूँ,
तेरी वैरन मुहि पास बैठावै ॥कु०॥२॥
विकल वंभ मिट फटैय भरम तम,
आप आप घर आन बसावै ।
केवल कमला निज घर आवै,
ज्ञानसार पद चेतन पावै ॥कु०॥३॥

(१३) राग—सारंग

पिया बिन एक निमेष रहूँ नी ॥पि०॥

नणद निगोंनीं सास दिगोंनी ताके वचन सहों नी ॥पि०॥१॥

जेठ जिठोंनी कौन गर्गोंनी, पिय पद कमल गहोंनी ॥पि०॥२॥

माय दगोंनी भैन ठनोंनी, गिरिवर जाय चढ़ोंनी ॥पि०॥३॥

मोह तजोनी धेय भजोंनी, ज्ञान पीयूष पियोनी ॥पि०॥४॥

पीयतीय दोनूं मुक्ति सिधोंगी, सुख अनंत वरोंनी ॥पि०॥५॥

(१४) राग—सारंग

अनुभौ नाथ कुं आप जगावै ॥अनु०॥

विरला वृद्ध करण कूं माला, वरषा पानी पावै ॥अ०॥१॥

शुभ मति संग रंग तें कुलटा, कुमती दूरें जावै ।

केवल कमला अपछर सुन्दर, मिंदर आप ही आवै ॥अ०॥२॥

कवल नयन आनन तें सुललित, ललित वचन सुणावै ।

चतुरा चख कटाख पात तें, ज्ञानसार पद पावै ॥अ०॥३॥

(१५) राग—वेलावल

अलहियो कैसी वात कहूँ, करम की कैसी ०

मैं हूँ चेतन चेतनवंता, एते दुख क्यों सहूँ ॥कै०॥१॥

कबहूँ नाटक कबहूँ चेटक, साटक कबहूँ रहूँ ।

कबहूँ फाटक कबहूँ हाटक, काटक कबहूँ कहूं ॥कै०॥२॥

उदय उपाय करम थित बंधे, आतम दुख सहूं ।
पर गुण रुंधे निजगुण सुंधे, संधे सुख गहूं ॥कै०॥३॥
औसर पाय प्रगट परमातम, आतम जोग वहूं ।
ज्ञानसार शुध चेतन मूरत, नाथ अनाथ लहूं ॥कै०॥४॥

(१६) राग—कनड़ी

चेतन बिन दरियाव दी मछरी रे ॥चे०॥
कोह लतारयो माने मारयो वे, मंग अनंग रंग बिछुरी रे ॥१॥
आप धूतारी मेरी आकूं वे, कंठ पकर कर पछरी रे ॥२॥
आप ही धारो आप पधारो वे, ज्ञान अनंत गुण गुंछरी रे ॥३॥

(१७) राग--काफी

कैंड मरडंता स्यानैं हींडो छौ, जोवो नैं आप विचारी रे ॥कैं०॥
काज आहड़ा केई पड्यो छै, मारस्यै थाप नो मागे रे ॥कै०॥१॥
जे तुझ नें छै प्यारी नारी, न्यारी थास्यै नारी रे ॥कै०॥२॥
पर नी रमणी हवणा मारी, परभव लागस्यै खारी रे ॥कै०॥३॥
चेत चेत तूं चित में चेतन, नहिं तो थारी ख्वारी रे ॥कै०॥४॥
ज्ञानसार कहे प्रभु सेवा, छै सहु नैं सुखकारी रे ॥कै०॥५॥

(१८ राग - सामेरी

औगुन किनके न कहिये रे भाई ॥औ०॥
आप भरे सब औगुन ही से, और न कूं क्या चहिये रे भाई ॥१॥

डूंगर बलती देखे सबही, पगतल कौन बतइये।
लागी पगतल लाय बुझावो, जो कछु तन सुख चहिये रे भाई ॥२॥
आप बुरे तो है जग सबही, आप भले तो भलेहि है।
ज्ञानसार जिन गुन जप माला, निसदिन रटते रहिये रे भाई ॥३॥

(१६) राग—विहाग (पपीहा बोल्या रे)

दरवाजा छोटा रे, निकला सारा जगत उनीसें। द०॥१॥
क्या वधू क्या माई बाबू, क्या बेटी क्या धोटा रे ॥द०॥२॥
गय हय करणी दो इक चरणी, क्या कोई छोटा मोटा रे ॥द०॥३॥
क्या पूरब क्या उत्तरपंथी, दक्षिण पच्छिम भोटा रे ॥द०॥४॥
ज्ञानसार दरवाजै नाए, यातैं सिद्ध सनोठा रे ॥द०॥५॥

(२०) राग—सोरठ

आलीजा ने थांरी चाह घणी छै, महिलां वेग पधारो ॥आ०॥
आयु करम विन सातूं की थिति,
कोड़ि सागर इक कोड़ि गुणी छै ॥आ०॥१॥
केतै दिन चितवतां अबकै, ज्यूं त्यूं प्रीत बणी छै।
निरवाहन नहीं प्रीतम हाथे,
निरवाहन भवपाक बणी छै ॥आ०॥२॥

भलो बुरो तोही चल आयौ, अंत तो घर केरो धणी छै ।
ज्ञानसार जो ढील न कीजै, प्रीते अंतर कौन भणी छै ॥३॥

(२१) राग—सोरठ

है सुपनो संसार, प्रभु क्रूं जन भूल बावरे ॥है०॥
या जग कहूं विष समान है, सकल कुटुंब को प्यार ॥१॥
दुनिया रंग चहरबाजी ज्यूं, क्यों सोचै न गिंवार ।
ज्ञानसार घट भीतर साहिब, खोजै क्यूं घरबार ॥२॥

(२२) राग—सोरठ

धूंधरी दुनिया ओ धूंधरी दुनिया ।
आशा धार फिरै ज्यूं घर घर, शिष्टत करन मुनियां ॥१॥
बाहिरातम मूढा जगवासी, ज्यूं जंगल मुनियां ।
ज्ञानसार कहै सब प्रानी की, बहिर बुद्धि बानियां ॥२॥

(२३) राग—काफी

मनड़ा नी अमे केनै कहिये वातो ।
खिण जोगी खिणखिण मन भोगी, खिण सीरो खिण तातो ॥१॥
गुपत चिंतवन ताहरूं परगट, लाजै नथी रे कहिवातो ॥म०॥
चैत्य वदने तूं न प्रवर्त्तै, ते मुझ नथी रे सुहातो ॥२॥
जोरावर थी जोर न चालै, तेहथी सहूं थारी लातो ॥म०॥
रूसण तूसण ताहरूं[1] खिणखिण, गिणती नथीय गिणातो ॥३॥

---

१ वाहरौ

डूंगर बलती देखे सबही, पगतल कौन बतइये।
लागी पगतल लाय बुझानो, जो कछु तन सुख चहिये रे भाई ॥२॥
आप बुरे तो है जग सबही, आप भले तो भलेहि है।
ज्ञानसार जिन गुन जप माला, निसदिन रटते रहिये रे भाई ॥३॥

(१६) राग—विहाग (पपीहा बोल्या रे)

दरवाजा छोटा रे, निकला सारा जगत उनीसें ॥द०॥१॥
क्या वधू क्या माई बाबू, क्या बेटी क्या धोटा रे ॥द०॥२॥
गय हय करणी दो इक चरणी, क्या कोई छोटा मोटा रे ॥द०॥३॥
क्या पूरब क्या उत्तरपंथी, दक्षिण पच्छिम भोटा रे ॥द०॥४॥
ज्ञानसार दरवाजै नाए, यातैं सिद्ध सनोठा रे ॥द०॥५॥

(२०) राग—सोरठ

आलीजा ने थांरी चाह घणी छै, महिलां वेग पधारो ॥आ०॥
आयु करम विन सातूं की थिति,
कोड़ि सागर इक कोडि गुणी छै ॥आ०॥१॥
केतै दिन चितवतां थयके, ज्यूं त्यू प्रीत वणी छै।
निरवाहन नहीं प्रीतम हाथे,
निरवाहन भवपाक वणी छै ॥आ०॥२॥

अंग सुरंग समार साथ ले, सरवा सुबुधि सहाई ॥सो०॥
प्राणपियारी सुमति तिया की, ज्ञानसार गलबांहि ॥सो०॥४॥

(३०) राग—वेलावल

चेतन खेले नौ कंकरी री, नौ कंकरी री, नौ० ॥चे०॥
चरसो चय भर सो भव पावन, याति आति ज्यु 'कर'[१] चकरी री ॥१॥
अंगुरी घेरन[२] कर्म को प्रेरयो, याति आवति इक गय पकरी री ।
भर सें[३] चर अरु चर तें पुनि भर, दोरी पकरन क्रम जकरी री ॥२॥
घर भर भव चर भर को करवो, खेलवो नांही इत कंकरी री ।
पास प्रभु अव चर भर वारो,[४] ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥३॥

३१ राग—धमाल

आये मोहन मेरे, आज रंग रली ॥आज०॥आये०॥
सिद्ध सुहागन प्रीत बनाई, समता सरधा की कौन चली ॥१॥
लरका तें बहू पाय परी जब, देर दिरानी लिली ।
सास सभी सभासरस[५] दीनी, जेठ जिठानी दौर मिली ॥२॥
खंती मद्दव अज्जव मुत्ती, लरकी चार चली ।
सम दम विनय निरीह पियाले, धाई माई गल लाय लिली ॥३॥
सब परिवार संभार साथ ले, चेतनता सु चली ।
ज्ञानसार सु सुगत महिल में, खेलें धमाल की आस फली ॥४॥

---

१ कर यें । २ प्रेरन । ३ भर तें । ४ हारो । ५ शुभाशिस ।

निज स्वरूप निरचै नय निरखे, तो में कुछु न समाया।
तूं तो तेरे गुण को भोगी, ज्ञानसार पद राया ॥क्षू०॥४॥

(२८) रागिणी—भैरवी

आये हो भये भोर, भले ही ॥आ०॥
सौतन संग रैन रंग सोते, आते आरस मोर ॥भ०॥१॥
चौगति महल खाट ममता पें, क्यों छोरी कर जोर ॥२॥
रात विभाव विहानो उदयो, सूर सुभाव सकोर ॥३॥
तब पीतम तुम सुमति संभारी, अब वहा करूं अ निहोर ॥४॥
पै कुल कन्या की मरजादा, अपने रत की ओर ॥५॥
तातें ज्ञानसार कै आगै, ऊभी वेकर जोर ॥६॥

(२६) रागिणी—वेलाउल

सोई ढंग सीख लै सोई ढंग सीखलै गी, जो पिया रहे घर मांहि॥
नींम सयानी हूँ समझाऊं, तुम कहा समझो नांहि ॥सो०॥१॥
घर आये तें आदर पइये, सो चहिये तुम मांहि ॥सो०॥
ः कहा जानूं प्रानपियारे, कैसें राजी नांहि ॥सो०॥२॥
(तो मन तन वचन तें तेरी, चोरी विन दामां ही ॥सो०॥
.. अपमान [illegible] मान कै, आई वीर पठांई ॥सो०॥३॥

अंग सुरंग समार साथ ले, सरधा सुबुधि सहाई ॥सो०॥
प्राणपियारी सुमति तिया की, ज्ञानसार गलबांहि ॥सो०॥४॥

(३०) राग—बेलावल

चेतन खेले नौ ककरी री, नौ ककरी री, नौ० ॥चे०॥
चरसो चय भर सो भव पावन, याति आति ज्यु कर[1] चकरी री ॥१॥
अंगुरी घेरन[2] कर्म को प्रेरयो, याति आवति इक गय पकरी री ।
भर सें[3] चर अरु चर तें पुनि भर, दोरी पकरन क्रम जकरी री ॥२॥
चर भर भव चर भर को करवो, खेलबो नांही इत ककरी री ।
पास प्रभु अब. चर भर वारो,[4] ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥३॥

३१ राग—धमाल

आये मोहन मेरे, आज रंग रली ॥आज०॥आये०॥
सिद्ध सुहागन प्रीत वनाई, समता सरधा की कौन चली ॥१॥
लरका तें बहू पाय परी जब, देर दिरानी लिली ।
सास सभी सभासरस[5] दीनी, जेठ जिठानी दौर मिली ॥२॥
खंती मद्दव अज्जव मुत्ती, लरकी चार चली ।
सम दम विनय निरीह पियाले, धाई माई गल लाय खिली ॥३॥
सब परिवार संभार साथ ले, चेतनता सु चली ।
ज्ञानसार सु सुगत महिल में, खेलें धमाल की आस फली ॥४॥

---

१ कर पें । २ प्रेरन । ३ भर तें । ४ हारो । ५ शुभाशिस ।

इक सामाइक ज्यूं एकान्ते, ज्यूं ही दिन ज्यूं रातो ॥म०॥
तिण वेला उपगटौं तूं तिण, संयम नी करै घातों ॥४॥
सुर पुरंदर नर तिर धूजावै, वेद नपुंश कहातो ॥म०॥
ज्ञानसार जो निज घर होतो, जोतो जे ख्याल खिलातो ॥५॥

(२४) राग—वसन्त

घर आवो ढोलन पर संग निवार,
तुमरो परसौं कहा प्यार यार ॥घ०॥१॥
नहीं जाति पांति कुल को स्वभाव,
एतो उनसौं क्या राग भाव ॥घ०॥२॥
छांडौ क्यों न उनकौ संग मीत,
जग में भव भव करिहै फजीत ॥घ०॥३॥
चलिये अपने कुल की मरजाद,
कुल छांड कहा काढौ सवाद ॥घ०॥४॥
आदै पर अंतै निज न होय,
निज पर सौं पर कबहु न समझ जोय ॥घ०॥६॥
अन्ते घर बिन सरहै न कन्त,
जिहि ज्ञानसार खेलै वसन्त ॥घ०॥६॥

(२५) राग सोरठ—सामेरी

आम थयूं छै काम रे भाई ॥आ०॥
वचन रु काया इक ठीक नांहीं, चित चंचल नहिं ठाम रे भाई।
कहूं हूँ भेष भेषधर हूँ ही, करूं हूँ अनेरा काम रे ॥२॥
आतम विषये अगम मगन हूँ, कहूँ हूं निरगत काम रे ॥३॥
चित अंतर पर छलबल चितवूं, मुख लेऊं भगवंत नाम रे ॥४॥
ऐसें खूनी ज्ञानसार की, सरम राखियो सांम रे भाई ॥५॥

(२६) रागिनी—पूरबी

भये क्यों, आप सयान अयान ॥आ०॥भ०॥
पर संगति पर परणित परणिम, रूप रहे विसरान ॥भ०॥१॥
मेट विभाव सुभाव संभरिके, सत्ता थल पहिचान।
मोह जंजाल जाल के नाग्न, पायो पद निरवाण ॥भ०॥२॥

(२७) राग—सोरठ

झूठी या जगत की माया, क्यों भरमाया।
कबहूं मृगतृष्णा तें मृग की, पानी प्यास बुझाया ॥झू०॥१॥
जैसे रांक स्वप्न भयो राजा, हाल हुकुम फरमाया।
जागे तें कछु नजर न देखे, हाथ ठीकरा आया ॥झू०॥२॥
झूठा तन धन झूठा जोबन, झूठी माया काया।
मात पिता सुत वनिता झूठे, झूठे क्यूं विरमाया ॥झू०॥३॥

(३२) रागणी—सोरठ

रसियो मारू सौतन रै जाय हेली, रसियो०॥
मेरो कह्यो मानत नहीं सजनी, बहुत रही हमभ्राय ॥हे०॥
चौगति महिल खाट ममता पें, रमतें रैन विहाय ॥हे०॥१॥
सौतन संग घूमतो डोरे, भ्रांखित मृदु मुसकाय ॥हे०॥२॥
सरधा समता ज्ञानसार कूं, ल्याई जाय मनाय ॥हे०॥३॥

(३३) रागणी—सोरठ

की करां में रैन विहांनी, नींद न यावै ।
नींद न श्रावै नींद न आवै, नींद न आवै ॥की०॥टेर॥
उदयें आतम ज्ञान अरक कै, रात विभाव विहावै ॥की०॥१॥
रचि सुद्ध भावें सहिज पसरतें, भ्रम तम थम न रहावै ।
चकवा चकवी भोर भये तें, हिलमिल प्रीत चढ़ावै ॥की०॥२॥
लोभ लूक जब अंध भयो तब विसई चंद छिपावै ।
ज्ञानसार पद चेतन पायो, यातें अलख कहावै ॥की०॥३॥

(३४)

अचरिज होरी आई रे लोको, अचरिज होरी आई रे लाला ।
लाल गुलाल उडत आटें की, एहि[1] मिथ्यात उडाई रे ॥१॥

---

१ इह ।

पिचकारिन की झड़सी लगी है, वाणी रस[1] वरसाई रे ।
चंग मृदंग वाजत ख्यालन की, अनहद नाद घुराई रे ॥२॥
वह[2] मिथ्यामति होरी गावत, इह भवि जिन गुण गाई रे ।
काठखंड की होरी जगाई, इह कछु करम जलाई रे ॥३॥
मद पानी जन मदिरा पीवत, केइ सुद फेरे न भाई रे[3] ।
ज्ञानसार के ज्ञान नयन में, अनुभव सुरखी छाई रे ॥४॥

(३४) राग—होरी

आज रंग भीनी होरी आई ।
अनिवृत करण प्रीतम आगम की, सरधा न्याई वधाई ॥१॥
पिय प्यारी की सुचि रुचि चितवन, दहीय गुलाल चलाई ।
वाणी पय पिचकारी सुख की, दंपति झरिय मचाई ॥आ०॥२॥
चंग मृदंग अनादि धुनि की, धुनि मिलमिल धुनि नाई ।
आप सरूप आनंद रस भीने, सोहं होरी गाई ॥आ०॥३॥
शुक्ल ध्यान की शुक्ल तरंगे, मृदु मुसकान मुसकाई ।
ज्ञानसार मिल कर्म काठ की, सहिजै होरी जगाई ॥आ०॥४॥

१ जिनवाणी । २ ओही । ३ केई मुफरिन खाई रे ।

(३६)

होरी रे आज रंग भरी रे, रंग भरी रस से भरी रे।
आज अगम आतम पिय कीनी, आगम पदरी हरष भरी रे ॥१॥
विरह मिट्यौ तनु ताप घट्यौ मन, शीतलता व्यापी सगरी रे।
पुत्र भये चिन पिता मात कै, बींदी लागत घर बिखरी रे ॥२॥
पुत्रें प्रीतम आंख्यां आगैं, देखत प्यारी नयन ठगी रे।
तीच जीवन इन ज्ञानसार तें, पिय प्यारी की सब सुधरी रे ॥३॥

(३७) राग—होरी-काफी

माई मति खेले तूं माया रंग गुलाल सूं ॥मा०॥
माया गुलाल गिरन तें मूंदी, आंख अनंते काल सूं ॥१॥
जल विवेक भर रुचि पिचकारी, छिरके सुमति सुचाल सूं।
उघरति ज्ञान नयन तें खेलैं, ज्ञानसार निज ख्याल सूं ॥२॥

स्तवनादि भक्ति-पद संग्रह

——※०※——

(१) श्री शत्रुंजय तीर्थ स्तवनम्

ढाल—आव्यो आयजो रे, ए देशी

गायज्यो गायज्यो रे हो, विमलाचल गुणगान । भविकजन ।
इण गिरि आदि जिनेसरू रे, पूर्व निवाणूं वार ।
समवसरया रायण तलैं रे हो, जगगुरु जगदाधार ॥भ०॥१॥
नेमि विनां तीर्थंकरा रे, समवसरया तेवीस ।
तिण वलि चौमासो रह्यारे हो, अजित शांति जगदीश ॥भ०॥२॥
पांचे पांडव इण गिरे रे, पाम्या पद निरवांण ।
मुगति वहू वरवा भणी रे हो, ए गिरि चौंरी जाण ॥भ०॥३॥
सल्ल मुनि दस कोड़ि सुं रे, नमि विनमि वलि तेह ।
दोय दोय कोड मुगते गया रे हो, प्रणमीजे धरि नेह ॥भ०॥४॥
के सीधा इण गिरवरैं रे, सीझस्यै केई जीव ।
सिद्धक्षेत्र ए सासतौ रे हो, नमिये सुखनी नींव ॥भ०॥५॥
एहवो नहीं इण कलियुगे रे, तीरथ पृथ्वी मांहि ।
पाप ताप समवा भणी रे हो, ए गिरि सुरतरु छांहि ॥भ०॥६॥

एक जीभ इण गिरि तणा रे, गुण केता कहिवाय ।
जथामगति भगतें करी रे हो, ज्ञानसार गुण गाय ॥म०॥७॥

(२) श्री शत्रुंजय यात्रा स्तवनम्

आजयो आयजो रे हो प्रीतम परम पवित्र सुगुण नर आयजो रे;
म्हे चाल्या सेत्रुंजे भणी रे, पिउ पिण चालै साथ ।
आदनाथ दरसण करी रे हो, करियै शिवपद हाथ ॥सु०॥१॥
फूल चंबेली चंगेरियां रे, भर भर नाना भांत ।
पुष्प वादलि पूजा करां रे हो, वादल[१]नव नवी जात ॥सु०॥२॥
मुगता मुगताफल भरी रे, सुन्दर सोवन थाल ।
बधावी कण्ठे ठवां रे हो, अनुपम फूल नी माल ॥सु०॥३॥
तीन प्रदत्तणा जिम करां रे, तिम वलि तीन प्रणाम ।
भाव पूजा करवा भणी रे हो, वैसूं वैसण ठाम ॥सु०॥४॥
शक्रस्तव शक्रे कयो रे, तिम कर करिय प्रणाम ।
ऊभा थई थूई[२] कही रे हो, औमरिये जिन धाम ॥सु०॥५॥
इम जात्रा सेत्रुंज तणी रे, करिये कंत कृपाल ।
ज्ञानसार पदवी वरी हो, भरिये मुगत नो फाल ॥सु०॥६॥

(३) श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

राग—कहिरवो

नाभिजी के नंद से लागा मेरा नेहरा ॥ना०॥

१ (हो) वाला । २ थूही ।

वदन सदन सुख, मदन कदन मुख,
प्रभु को वदन किधूं, समरस मेहरा[1], ॥ना०॥१॥
अमल कमल दल, नयन उजल जल,
मींन युगल मानुं, उछलत सेहरा ॥ना०॥२॥
भाल विशाल रसाल अकल द्युति[2]।
शरद शशि मानु आठमी को जेहरा ॥ना०॥३॥
नासा चम्प दीप कली, मरली सींगी फली।
दन्त पंति कान्ति मानु[3], चंद का सा उजेरा ॥ना०॥४॥
केतलो वर्णन करूं, [4]उपमा कहां ते धरूं।
ज्ञानसार नाम पायो, ज्ञान नहीं गेहरा[5] ॥ना०॥५॥

(४) श्री बीकानेर मण्डन ऋषभ जिन स्तवनम्

राग—काफी

मूरति माधुरी, ऋषभ जिणंद की ॥मू०॥
विक्रम सब पुर मुकुट मनोहर,
ता बिच कौस्तभमणि प्रतिमा जरी ॥मू०॥१॥
भाग विभाग शास्त्र परसम कर,
सुघर कारीगर सुन्दर या घरी।

१ नेहरा। २ दुति। ३ मनु अठमी। ४ ओपमा। ५ माहिरा।

अंगी विध विध रंग सुरंगी,
देखत छवि अति नयन कमल ठरी ॥मू०॥२॥
शान्त सुधारस मुख पर बरसत,
हरषत मुहि मन मोर नवल भरी।
ज्ञानसार जिन निजरे निरख्यो,
निरखत सिद्ध थानक स्थिति सांभरी ॥मू०॥३॥

(५) श्री नेमिनाथ होरी गीतम्

नेमिकुमार खेलें होरी वे, लाल गुलाल भरी झोरी ॥ने०॥
इत थे आए नेम नगीना, उत थे कृष्ण की सब गोरी ॥ने०॥१॥
अबीर गुलाल की भरि भरि मूठें, डारे मुख पें दोरी दोरी।
भर पिचकारी नीर सुगंधे, छिरके मुख कर टकटोरी ॥ने०॥२॥
पेट भरण डर तिय नहिं परखों, सब मति मिल करे ठमठोरी।
कारे सें व्याह सो कौन करेगी, समझे नहिं सखि ते भोरी ॥ने०॥३॥
ऐसे सबन की बतिया सुनके, जोर रहे मुख खल जोरी।
राजुल नेम सगाई जोरी, पिय मेरे मैं पिय तोरी ॥ने०॥४॥
तोरण आय चले रथ फेरी, बिन औगुन पिय क्यों छोरी।
संयम गहि वो मुक्ति पधारे, ज्ञान नमे दो कर जोरी ॥ने०॥५॥

(६) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—तोडी

पिय बिन मैं बेहाल खरी री ॥पि०॥

छिन मुरझानी सुध बिसरानी, धरर धूज धरणीय परीरी ॥१॥

दौर सखि सब मिलिय सयानी, सीत समीर झकोर करी री।

पलनि उघार नजर भर पेखे, बिन पीय विधना काहि घरी री ॥२॥

रातें नीर झरयो आंखनि तें, मुख पै कजरा रेख परी री।

मोल कला संपूरन ससि को, राहु गह्यो ज्यूं सिचांन चिरी री ॥३॥

संयम गहि गिरिनार गिरी पर, पिय प्यारी दो मुक्ति वरी री।

भव जल तारी पार उतारो, ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥४॥

(७) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी ख्याल

तोरण वांदी प्रभु रथड़ो रे वाल्यो, एकरस्युं घरि ल्यावोरे

में वारी सहियां प्रीतम नें समझावो रे ॥१॥

हेली रूठड़ो जादव ल्यावो रे मैं वारी।

पशुवन परि प्रभु किरपा रे कीनी, मोपरि महिर धरावीरे ॥२॥

नव भव चो प्रभु नेह न छोड़ूं, नेह नवल कर जोड़ूं रे।

गढ गिरिवर प्रभु सहसा रे वन में, संयम लाधो शुभ दिन में ॥३॥

नेमि राजुल प्रभु मुगति महल में, खेल खेलत निसदिन में ।
ज्ञानसार प्रभु दास तुमारो, इह भव पार उतारो रे ।।मैं०।।४।।

(८) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वो दिल लग्गा नाल तिहारे ।।नाल० (२) वो०।।
फिर पीछे रथ चाले यादव, तब पीउ पीउ पुकारे ।।वो०।।१।।
मोकूं छारि मुगती कूं चाहो, मैं क्या अवगुन प्यारे ।।२।।
अठभव प्यारी नारी तेरी, टुक इक वार निहारे ।।वो०।।३।।
तीय तज हो पीय पिय नहिं तजहुं, तिय पीतम की लारे ।
ज्ञानसार पीय तिय के नामैं, वारीयां वार हजारे ।।वो०।।४।।

(६) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वालिम मोरा ने समझावो रे, साहेलड़ी प्रीतम मोरा०।।
राजुल कहै सुन सखिय सयानी, दौर दौर तुम जावो रे ।
पालव झाली कहिज्यो पीउने, एक वेर घर आवो रे ।।२।।
विन औगुन क्यों तजहो पियारे, औगुन इक वतलावो रे ।
सहिसावन जइ संजम लीनों, केवल लह्यो भले भावो रे ।।४।।
नेम राजुल मिल्या मुगति मझारे, ज्ञानसार गुन गावे रे ।।५।।

(१०) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

मेंडा नेम न आये, पीय बिन क्यों दिन जाय ॥में०॥
क्यों दिन जाये क्यों निशा आये,
हा प्यारे तरफ तरफ जिय जाय । में०॥
दामनि चमके हीरा धमके,
हा प्यारे कारी घटा गहिराय ॥में॥०१॥
पिउ पिउ पिउ पपइया बोले,
हा प्यारे मो जियरा अकुलाय ॥में०॥२॥
बिन औगुन क्यों तजहो पियारे,
हाँ प्यारे कहियो सब समझाय ॥में०॥३॥
पिय नाये तिय चढिय गिरी पर,
हा प्यारे ठम ठम ठवती पाय ॥मे०॥४॥
पति पत्नी दो मुक्ति पधारे,
हा प्यारे ज्ञानसार गुण गाय ॥मे०॥५॥

(११) श्री नमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी—पट मिश्रित

जावंतरौ पीयु वारो, मेरो पियु जावतरौ कोऊ वारौ ॥मे०॥
तोरण से तुम फेर चले रथ, मोपे काको आधारौ ॥मे०॥१॥

† हियडा

पशुवन से तुम करुणा जाणी, हम अबला निरधारो ॥मे०॥२॥
राजरिद्ध सब छोड़ी राजिंद, जैसे कांचरी कारो ॥मे०॥३॥
सहिसावन जइ संयम लेके, नेम चढया गिरनारो ॥मे०॥४॥
ज्ञानसार मुनि की ए वीनति, महिर करी अवधारो ॥मे०॥५॥

(१२) *श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्*

राग—काफी

[ढाल—कोई चूरियां ल्यौरे चूरियां; गली गली मनिहार पुकारे
सांचे यो गांठरियां कोई० ए० देशी]

मोहि पीयू प्यारे प्यारा ॥मो०॥
अठ भव प्यारी नारी थारी, नवमें वयों भया न्यारा रे ॥१॥
तोरण आय चले रथ फेरी, अब हम कौन आधारा रे ॥२॥
छोर दई रोती राजुल कूं, आप भये अणगार रे ॥मो०॥३॥
घोरी जाऊँ तेरे नांमै, वारियां वार हजारा रे ॥मो०॥४॥
ज्ञानसार निज गुण नो समरण, करहुं वेर सवारा रे ॥५॥

(१३) श्री समेतशिखर तीर्थयात्रा स्तवनम्

[ढाल—मिसरी री, थे दिल्ली म्हे आगरे था म्हा किसो सनेह
थे चमराई०]

समेतशिखर सोहामणो, जिहां पुंहता जिन वीस।
मुगति रमणी सुख वालहा हो, प्रभुजी सिद्धे पहुंता ईश ॥१॥

अजित आदि अंतिम प्रभु, पारस पारम सार।
अश्वसेन कुल दीपता हो प्रभु, माता वामा सुखकार ॥२॥
प्रभु शरणे हूं आवियौ, भय भंजन भगवंत।
लख चौरासी हूं भम्यौ हो प्रभु, दरसण विन तुम कंत ॥३॥
आज भलो दिन ऊगीयो, भेट्या श्री जगनाथ।
कारज सीधा मांहरा हो प्रभु, मेट्यो भव दुख माथ ॥४॥
मुझ आंगणि सुरतरु फल्यो, सुरघटि मिलियो आय।
कामधेनु घर ऊपनी हो प्रभु, तुम चरणे सुपसाय ॥५॥
चिंतामणि मुझ कर चढ्यौ, नवनिधि सिद्ध सरूप।
अष्ट सिद्धि सुख सम्पदा, हो प्रभु चित्रावेलि अनूप ॥६॥
मुझ मन तुझ चरणे वस्यौ, पंकज षटपद जाण।
चंद चकोरा जिमि लग्यो हो प्रभु, चक्रवाक जिम जाण ॥७॥
पोयण कै मन में वसै, चंद सदा सुखकार।
मोरा मन जिमि घन वसै हो, प्रभु जलदायक जगसार ॥८॥
संवत अठारै इकावनै[१], माह सुदि पंचम सार।
ज्ञानसार कर जोडिनै हो प्रभु, प्रणमैं वारंवार ॥९॥

इति श्री समेतशिखर तीर्थ स्तवनम्

१ पाठान्तर—न व्यासिये,

(१४) श्री समेतशिखर तीर्थयात्रा स्तवनम्
[ढाल—भविका सिद्धचक्र पद वंदो०]

सेत्रुंज साध अनंता सीधा, सीझस्यै वलिय अनंता ।
पूरब जो आचारिज हुआ, कहि गया ए कहंतारे ॥१॥
प्राणी, शिखर समो नहीं कोई ।
तिहां किण पिण इक ऋषभ जिणेसर, समवसरया नहीं सीधा ।
एहवैं मोटै तीरथ एक जिन, पूधा नहींय प्रसिद्धा रे ॥प्रा०॥२॥
अष्टापद इक आदि जिणंदा, निश्चय पदवी पाया ।
रेवयगिर नेमीसर सुखकर, सीधा श्रीजिनराया रे ॥प्रा०॥३॥
आबूगिर पर एक न जिनवर, सीधा नहीं जगचंदा ।
तिहां वलि कोई नही तीर्थंकर, केवलज्ञान दिणंदा रे ॥प्रा०॥४॥
इम अनेक तीर्थे तीर्थंकर, किहां सीधा केहां नाहीं ।
एहवो परगट ठामें ठामें, पाठ छै आगम मांहि रे ॥प्रा०॥५॥
समेतशिखर पर वीसें टूंके, सिद्धा जिनवर वीस ।
तिण नहीं एहवो तीरथ जगमें, नमोंअ नमावी सीस रे ॥प्रा०॥६॥
मरत अठारैं उगणपचासे, महा सुद बारस दिनमें ।
संघ सहित भली यात्रा कीनी, ज्ञानसार सुजगीसे रे ॥प्रा०॥७॥

(१५) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

[ढाल-धन धन संप्रति साचो राजा]

पास प्रभु अरदास सुणीजे, दास थी करुणा कीजे रे।
पापी जीव ने शिक्षा दीजै, एटलु'कारज कीजै रे ॥पा०॥१॥
कोय कहै जे वचन निरासी, तो तेहनी करे हासी रे।
पिण पोतानी मतिनी फासी, ते तो कां न निकासी रे ॥पा०॥२॥
श्रीठाई मेलै नहिं धीठो, ते मैं निजरे दीठो रे।
सुगुरु कहै हित वचनै जे मीठो, गुरुनो वांक अपूठो रे ॥पा०॥३॥
पोतानी, भूंडाई न जाणे, परनो तुरत पिछाणै रे।
आपणपै हजिं पहिलै टाणौ, सत्तम भोजां माणै रे ॥पा०॥४॥
होय रह्यो ए करम नो वासी, छतो ऊंधे पासी रे।
कहो किम कर्म ने सामो थासी, अंते अचानक जासी रे ॥पा०॥५॥
एहनी रीत अछै नित एही, इक मुख कहिये केही रे।
श्रीजिनराज हिव जस लेई, एहनें शिवसुख देई रे ॥पा०॥६॥
तूं सरबे सुख दुख नो ज्ञाता, तूं त्रिभुवन नो त्राता रे।
रत्नराज मुनि द्यौ साता, ज्ञानसार गुण गाता रे ॥पा०॥७॥

(१६) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

[ढाल—मेड़तीया भवर जी रो करहलो]

परम पुरुष सूं प्रीतड़ी, कीजे किम किम करतार जी।
निपट निरागी साहिबो, हूं रागी निरधार जी ॥१॥

म्हारी अरज प्रभूजी मानज्यो, करुणा कर करतार जी ।
हूँ सेवक प्रभु तूं धणी, हिव भवपार उतार जी ॥म्हा०॥२॥
कर जोड़ी ऊभां थकां, कीजे सेव सदैव जी ।
पिण प्रभु किमही न पालवै, एह अनोखी टेव जी ॥म्हा०॥३॥
चाकर पहुँचे चाकरी, साहिब समर्पे दान जी ।
तौ सेवक नो साहिबा, वाधै जग में वान जी ॥म्हा०॥४॥
साहिब पिण सेवक तणी, राखे नहिं जो माम जी ।
साहिब सेवक नो सदा, किम निरवहसी कामजी ॥म्हा०॥५॥
इम जाणी सेवक परै, करो महिर कृपाल जी ।
निरधारां आधार तूं, तूंही दीनदयाल जी ॥म्हा०॥६॥
पार्श्व प्रभु सूं वीनति, करी घणुं करजोड़ जी ।
ज्ञानसार पद दीजिये, सुख अनंती जोड़ जी ॥म्हा०॥७॥

(१७) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ (सहाय-स्मरण) स्तवनम्

राग—सोरठ

करी मोहि सहाय, गौडीराय करीय सहाय ।
मूलचंद की मंद विरियां, खबर लीनी आय ॥गौं०॥१॥
भ्रम प्रलाप अलाप मंदौ, त्यौर नाही जस ठाय ।
आंख कीकी चढ़ी ऊंची, घूमरी वलि खाय ॥गौं०॥२॥

नींद भंग उमंग नांही, मन ने अपनै भाय।
उछलन मिस नमा दस दिस, झाली दै जमराय ॥गौ०॥३॥
एह मेरे नांहि संगी, संगी पीव रहाय।
साथ अमचो उनहि के संग, चलेंगे उठ धाय ॥गौ०॥४॥
ए विवस्था देख मेरे, लगी उर में लाय।
जरयौ पिंजर हंस जाणी, अंस हू न रहाय ॥गौ०॥५॥
सुख घटा पर श्रोप जलधर, इतै वरषै आय।
ठरयौ पिंजर देख पंखा, रह्यो ऊड न जाय ॥गौ०॥६॥
भ्रम प्रलाप न लाप ऊंचो, त्यौर अपने ठाय।
चढ़ी आंख्यां ऊतरी तब, घूमरी नवि खाय ॥गौ०॥७॥
नींद रंग उमंग अंगे, मन्न हू ठहिराय।
चित्त पीछे नसां ठहिरी, जम्म अपने जाय ॥गौ०॥८॥
तुम हमारे नांहि संगी, पीठ हू न हराय।
काल थित परिपाक जाकी, आंधी में उठ जाय ॥गौ०॥९॥
सामि कारज करयौ सांमी, लाज राखी ताय।
मो पतित की धवल धींगे, विपद दीध धकाय ॥गौ०॥१०॥

(१८) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

राग—सारंग

हमारी अंखियां अति उलसानी।
दरसन देखत चिन्तामन को, रोम रोम विकसानी ॥ह०॥१॥

हरखित नाचत नैनन पुतरी, पलन मृदंग उपगानी ॥ह०॥२॥
घूघरिनाद घूमन मन फुंदी, अनहद नाद घुरानी ॥ह०॥३॥
मादल ताल पलनकी फरसन, रोम तार पुतरानी ॥ह०॥४॥
तू वे वीन समाज मिलत मद, ज्ञानसार रसदानी ॥ह०॥५॥

(१६)

मेरी अरज है अश्वसेन लाल सूं ॥मे०॥
सेव्यो सदा बाल साहिब कूं, मैं मेरी वय बाल सूं ॥मे०॥१॥
धन नामी पारस जिन मेरी, लगन गौवड़ी कृपाल सूं ।
ज्यूं त्यूं राखी वृद्धापन की, रहगी लाज दयाल सूं ॥मे०॥२॥
मैं सम देव रूप धन निर्धन, क्या मांगू कंगाल सूं ।
ज्ञानसार कूं संपत दीजै, ज्यूं पय माता बाल सूं ॥मे०॥३॥

(२०) श्री सहस्रफणा पार्श्व स्तवनम्

[ढाल—जग सोहना जिनराया]

अधिकारी वलि अविन्यासी, शिवपद सत्सुख सुविलासी रे ।
जगजीवना जिनराया, तोरा सुरनर प्रणमें पाया रे ॥ज०॥१॥
उज्वल गुणगण तनु मोहे, मुख मटकै मनहूं मोहै रे ॥ज०॥
पद्मपत्र वरणे प्रभु दीपै, जगचक्षु कोडद्युति जीपै रे ॥जा०॥२॥
उपशम असि हस्ते धारी, अरि उद्धति क्रोध निवारी रे ॥ज०॥
मूर्ति सहस्रफणा प्रभु वंदो, दुष्कृति नो कंद निकंदो रे ॥ज०॥३॥

सुमताधारी भ्रमचारी, मन हारी जयकारी रे ॥ज०॥
अड़ क्रम वारी भ्रमधारी, सुकृतिकारी दुखटारी रे ॥ज०॥४॥
अतीत अनागत ज्ञाता, वर्तमान स्वरूप विज्ञाता रे ॥ज०॥
शान्त दान्त मुद्राए माहै, प्रभु प्रणम्यां पाप विछोहै रे ॥ज०॥५॥
त्रिजग त्राता जग भ्रता ज्ञानादिक गुण नो दाता रे ॥ज०॥
धन धारै निरहियै धनीश, शुद्ध गुणधारक सुजगीश रे ॥ज०॥६॥
वामानंदन वरदाई, तुम सुनिजर सुख सदाई रे ॥ज०॥
ज्ञानसार कहै •आणंदे, जिन वदे ते चिरनंदै रे ॥ज०॥७॥

इति श्री पार्श्वजिन स्तवनं लिपिकृतं ज्ञानसारेण
सूरत विंदर मध्ये ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभंभवतु ॥

(२१) श्री पार्श्व जिन स्तवनम्

राग—काफी

दिल भाया मेंडे सांई, पास प्रभु जिनराया रे ॥दि०॥
तन मन मेरो तबहि उलम्यो, जिय में आनंद पाया रे ॥दि०॥१॥
अंखियन मेरी प्रभु कूं निरखत, ततथेई तान मचाया रे ॥दि०॥२॥
कर जोडी प्रभु वंदन करके, ज्ञानसार गुण गाया रे ॥दि०॥३॥

(२२) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ (आत्मनिवेदन) स्तवनम्

राग—सारंग

गौड़ीराय कहो बड़ी बेर भई ॥गौं०॥

सास उसास याद नहिं आवै,

तो घड़ीय घड़ी मतिभूति मही ॥गौं०॥१॥

साठी बुध नाठी या सब कहि है, असिय खसि लोकोक्ति यही ।

हूँ तो अठाए, मैं भूलूं, मोमें स्मृति मति कैथ रही ॥गौं०॥२॥

नाम तुमारो यादि न आवइ, पल घड़ियन की बात किही ।

खूनी छू पण दास तिहारो, ज्ञानसार मुख बोल कही ॥गौं०॥३॥

(२३) गौड़ीपार्श्वनाथ गुण दोहा—स्तुति

गौड़ी गौड़ी जे करै, विह ऊगतै विहाण ।
त्यां घर लच्छी संपजै, नित प्रति होत कल्याण ॥१॥
गौड़ी गौड़ी जे करै, अति विषमी वणियांह ।
त्यांरा संकट दूर ह्वै, सुख दै तिण घड़ियांह ॥३॥
गौड़ी गौड़ी जे करै, अति ही चित्त उदास ।
तिहां उदासी दूर कर, आपै सुक्ख निवास ॥४॥

गौड़ी गौड़ी जे करै, अति संकट में जेह।
त्यांरा संकट दूर हुँ, नौ निध वरसै मेह ॥५॥
गौड़ी गौड़ी जे करै, अति ही सुमन्ने मन्न।
त्यां घर लच्छी संपजै, अन्न सुवन्न सुधन्न ॥६॥
तो बिन मो से पतित को, लाज राखिहै कौन।
ग्रीष्म ताप को हरि सकै, बिन मलयाचल पौन ॥७॥
सिर ऊपर घूम्यां फिरै, परहरणै कू प्राण।
गौड़ीराय सहाय तै, झांट फांट सो जाण ॥८॥
नारणजी नित ही नमैं, गुणनिधि गौड़ी सांम।
दुख दालिद्र दूरैं दलण, कोड़ सुधारण कांम ॥९॥

(२४) श्री वीर जिन स्तवनम्

राग – बेलाउल

हे जिनराय सहाय करी यू ॥हे०॥
चंदनबाला बाकुल वहिरो, ज्यूं उधरी त्यूंही उधरो यू ॥१॥
शूली तें प्रभु सेठ सुदरसण, सिंहासण बड़े वेग धरयो यू।
चरण डस्यौ चंडकौशिक सांपे, करुणाकर प्रभु देव करयो यू ॥२॥
अयमत्तौ जल क्रीड़ा करतो, तारो पैले पार करयो यू।
पतितउधारण बिरुद तुमारो, नारण विरीयां क्यों विसरो यू ॥३॥

(२५) श्री सामान्य जिन स्तवनम्

[ढाल—ईडर श्रांबा श्रांबली]

सम विसमी अण-जाणतां रे, हित अहित अविचार ।
जे जे जिण भव में किया रे, तूं जाणे निरधार ॥१॥
जगतगुरु जय जय जय जिणदेव, तारी सुर नर सारै सेव ।
तारी जग जन तारण टेव, तेथी तूंही देवाधिदेव ॥ज०॥२॥
सम्यग मिथ्या दरसणी रे, सम विसमी ए वाट ।
श्राश्रव संवर निर्जरा रे, हित प्रतिकूलें पाठ ॥ज०॥३॥
नींद अज्ञान अनाद नी रे, कारण मिथ्या भाव ।
तुझ दरसण तिण नवि मिल्यो रे, उद्गत शुद्ध सुभाव ॥ज०॥४॥
एहीज आश्रव कारणी रे, भूत थकी भव भूर ।
संवर निर्जर नवि गमे रे, दीसे शिव गति दूर ॥ज०॥५॥
भव परणित परिपाक थी रे, तुझ दरसण नो जोग ।
जइयें संवर निर्जरा रे, थास्यै सुगुरु संयोग ॥ज०॥६॥
शुद्ध सरूप सुभाव मां रे, रमस्यैं आतमराम ।
ज्ञानसार गुणमणि भरी रे, लहिस्यैं शिवसुख ठाम ॥ज०॥७॥

(२६)

वो सांइ मो वीनति कैसे करूं ।
काल अनादि वह्यो मेरो तुम विन, भव वन मांहि फिरूं ।

अब तो त्रिभुवन नायक पेख्यो, हरखी पाय परूं ॥१॥
क्युंकर नाचुं तो हेतु बतारो, तेरा अंचल ग्रही हूं झगरूं ।
दरसण शुद्ध चरण अनुभव के, परचे ताप धरूं ॥२॥
तामें अनुभव चरण वान से, परचे ताप धरूं ।
ज्ञानसार प्रभु गुण मोतिन के, कंठे हार धरूं ॥३॥

(२७) राग—केदारो

तुम हो दीनबन्धु दयाल ।
करि कृपा मुहे तार तारक, स्वामि विरुद्र संभाल ॥तु०॥१॥
अधम केते उद्धरे तुम, मेरी ओर निहाल ।
मैं अधम तुम अधम उधरण, फरहो क्युं न निहाल ॥तु०॥२॥
छोड़ जग की देव सेवा, लग्यौ तेरो चाल ।
ज्ञानसार गरीब की तुम, करोगे प्रतिपाल ॥तु०॥३॥

(२८) राग—कनड़ी

मुख निरख्यो श्री जिन तेरो ॥मु०॥
समिपून्यौ[1] मिस विन मुख देखत[2],
पुहप कमलनी केरो ॥मु०॥१॥
निम[3] परैं मिम[4] पून्यं उअरी, प्रभु मुग नितही उजेरो ।

१ पुन्यूं २ दीपत ३ मिस ४ नित

पंकज अमल सब कमल होत है, पुण्टरीक प्रभु तेरो ।मु०॥२॥
चन्द उदय[५] मुख सम्मुख निरखुं, यामें बीच बनेरो ।
कुसुमित पुण्डर देख्या देख्यो, कमल कमलनी केरो । मु०॥३॥
धन्य धन्य मुझ नयना[६] निरख्यो, इमत[७] वदन प्रभु तेरो ।
करजोरी मद छोरी कहि है, ज्ञानसार[८] प्रभु चेरो ॥मु०॥४॥

(२६) श्री सीमंधर जिन स्तवनम्

राग—सारंग

सीमंधर की सरस सलूणी, मूरति अति मन भाई ॥माई॥
लोचन अमिय वचन अमृत सम, नयन अमृत भर आई ॥माई॥१॥
अंग पंग नग रंग द्युति झलकत, अनंतज्ञान छवि छाई ॥माई॥२॥
ज्ञानसार भवि भावैं परख्यौ, कौन सरूप न पाई ॥माई॥३॥

(३०) श्री वीर जिन गहूंली गीतम्

राजगृही उद्यान में सखि समवसरया महावीर ।
वारि जाऊं वीरनी सखि ॥स०॥
गणधर गोयमादिक भला सखि, इग्यारै श्रुत धीर ॥वा०॥१

---

५ बदे ६ नयनै ७ अनुपम चन्द इजेरो ८ नारण चरनन चेरो ।

केवलनाणी दंसणी सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
तेरेसें मनपज्जवी सखि, ऋजुमती विपुल प्रकार ॥वा०॥२॥
ओही नाणी मुनि छ विहा सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
पाचसयां श्रुतकेवली सखि, चवदे पूरवधार ॥वा०॥३॥
मुनिमंडल सूं परिवर्या सखि, चवद सहस अधिकार ॥वा०॥
अज्ञा सहस छत्तीस सूं सखि, परिवरिया परिवार ॥वा०॥४॥
वनपाल जाय वधामणी सखि, श्रेणिक रायने दीध ॥वा०॥
श्रेणिक नरपति वांदवा सखि, चालै अपनी रिद्ध ॥वा०॥५॥
पांचे अभिगम साचव्या सखि, तीन प्रदक्षिणा देय ॥वा०॥
पंचांगे करै वंदना सखि, वीर चरण आदेय ॥वा०॥६॥
राणी चेलण करै छै गूहली सखि, राजा श्रेणिक री घर नार ॥वा०॥
गूहली गावै गहगही सखि, सुहव सुन्दर नार ॥वा०॥७॥
चिहूंगति चूरण साथियौं सखि, सरधा पीठ बणाय ॥वा०॥
व्रतरागै कूंकू वरणो सखि, श्रीफल शिवफल ठाय ॥वा०॥८॥
ज्ञानसार गुण भक्ति थी सखि, वधावै गुरुराय ॥वा०॥
प्रभु मुख थी सुनि देशना सखि, भविजन मन हरषाय ॥वा०॥९॥

—※※—

श्री दादा गुरुदेव स्तवनम्

(१) राग—फाग

सुखकारी, जिनदत्त सुगुरु बलिहारी ।
संघ सकल नो संकट वारी, पंचनदी जिण तारी ॥सु०॥१॥
विद्यापोथी परगट कारी, थांभी वज्र विदारी ॥सु०॥२॥
मृतक गऊ जिन जिनमदिर तें, मंत्रत करीय उठारी ॥सु०॥३॥
ज्ञानसार गुरु चरनकमल की, वारी वां वार हजारी ॥सु०॥४॥

(२) राग—सोरठ

गुनहे माफ करो, सुगुरु मेरे गुनहे० ।
में तो खूनी खूनी खूनी, तो भी दास खरो ॥सु०॥१॥
नहिं हूं जोगी नहिं संसारी, ऐसे कूं उधरो ॥सु०॥२॥
नहिं हूं इतका नहिं हूँ उतका, जैसे धोबी को कुकरो ॥सु०॥३॥
मैं हूं सदगुर गुण का भूखा, मेरी भूख हरो ॥सु०॥४॥
ज्ञानसार कहै गुरुदेवा, मोसूं महरि धरो ॥सु०॥५॥

———

श्री सिद्धाचल आदि जिन स्तवनम्

[अवगुण ढांकण काज करूं जिनमत क्रिय [1], ए देशी]

आतम रूप अजाण न जाणूं निज पणुं ।
तेह थी भव अप्रमाण प्रमाणूं भव पणूं ॥
भव भमणा नौ अंत संत कहियै हुतौ ।
तौ एहवौ अणसरधी हूं कहियै हुंतौ ॥१॥

जैन धरम विण अन्य धरम सरधा नहीं ।
साची शंका रहित जेह जिनवर कही ॥
जिन-पड़िमा जिन सरिखी निहचै सरदहूं ।
तौ पिण भाव उल्लास न जिन दरसण लहूं ॥२॥

तेह थी मुझ मन भ्रान्ति अत्यन्त अभव्यनी ।
सेत्रुंज फरस्यै निहचै न थई भव्यनी ॥
आधुनकी आचारिज वचना में कहै ।
भव्य विना नहीं फरस्यै पिण शंका रहै ॥३॥

खुहा पिवासा सीत उसनता में सही ।
वृद्धवयै पग पंथ खंधोपगरण रही ॥

---

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी के वज्रधर जिन विहरमान स्तवन की तीसरी गाथा में ।

कंटक पीड़ा पग तल धास्यैं दुस्मही ।
इत्यादिक बहु वेदन थी केती कही ॥४॥
जयणा पाली चरण दया नें कारणें ।
नवि पाली में जीवनी हिंसा वारणें ॥
वरज्या उन्नत निमत असण दूसण वली ।
आतम अर्थे संयम जतना नवि पली ॥५॥
आलस थी पडिकमणादिक विध नाचर्यूं ।
पूछ्यां थी चतुराइयैं उत्तर ऊचर्यूं ॥
वरजी सर्व सचित्त सर्वथा चित्त थी ।
पिण दूषण तिह लागौ मन वच वृत्ति थी ॥६॥
अभिग्रहोत पण घरनी भिक्षा आदरी ।
चौं घर लाभालाभैं ममता नादरी ॥
सरस निरस आहारैं सम वृत्ती पणूं ।
अति नीरस आहार कदेक विसमपणूं ॥७॥
देव द्रव्य खावानी मनसा नवि रही ।
अन्य अखातौ देख हरप मायो नहीं ॥
सेत्रुंज गिर वासी श्रावक साधु घणा ।
कोई मन वल्लभ केता असुहामणा ॥८॥

थापक ऊथापक जिनवादी सम गिणूं ।
पूछ्यै प्रश्नैं जथातथ्य वचन भणूं ॥
फूल कली कतरण बींधण कहो किह कह्यो ।
जैणा नांमैं पूजापद जैणा ग्रह्यौ ॥९॥
थापक जिनवादी श्रावक व्रत ऊचरैं ।
लिंगी भाषी संयत वंदन परिहरैं ॥
सफगी ग्रहतैं साधु श्रेणक वंदन करयूं ।
तुम तेहनैं सम्यक्तवंत नहिं आदरयूं ॥१०॥
इम कहिसौ तौ जिण पड़िमा पाषाण नी ।
भाव शुद्धता थी ते जिन सम माननी ॥
श्रेणक नूं वंदन ए पखैं समवै ।
ते विण वीर छतैं किम वंदन संभवै ॥
बाह्य कष्ट देखाडी मुछभू सरिखा घणा ।
वंचै मुगध नैं दे उपदेस सुहामणा ॥
जिन वचनें अविरुद्ध शुद्ध सहू उपदिसैं ।
जिह किण मत नूं कथन तिहां ममतैं फसैं ॥१२॥
मत ममती श्रावक नैं सम्यक्ती कहै ।
अममत्वी नैं मिथ्यात्वी कहि सरदहै ॥

भाखै जिन मत चोर आपण मत में नहीं।
तेहना कटका करण अजैणा नवि कही ॥१३॥
ऊथापक जिनवादी प्रकट कहै इसी।
अंत्यम आचारिज कहै ते अममें हुसी॥
उदर भरण कारण जिन दिखा संग्रही।
पेट भरयै अग नीत ठसक आवै सही ॥१४॥
मत अविरोधी देख आतम अवि ऊलसै।
ममती थी वतलाऊं पिण मन नवि हुसै॥
जिनमत वचन विरुद्ध मनसा भाखूं नहीं।
इम कहितां दूहवायै गिणतनमन मई ॥१५॥
जिनरागी सूं न राग, राग जिन वचन थी।
जिन वच अविरोधक न विराधक जैन थी॥
जिण जिन मेंनैं अविरोध विराध्यौ वचन नैं।
तिण जिण अनंत विराध विराध्यौ जैन नैं ॥१६॥
आश्रव करणी इण सरिखी एके नहीं।
आराधिक सम संवर करणी नवि कही॥
ए विन संवर करणी मुझ थी नवि सधै।
तेथैं शब्द प्रमांण प्रमांणू ए सधै ॥१७॥

संग्रह नय थी आतम सत्ता अनुभवूं ।
तद्गत गुण पर्याय पणैं मन परणवूं ॥
गुण पर्यायैं धर्म सुभाव समाधि थी ।
आतम साता वेदूं अव्याबाध थी ॥१८॥
कालादिक पण कारण नीं सद्भावता ।
थास्यैं आतम सरूपैं आतम सुभावता ॥
तइयै ते गत आतम उलास निश्चै हुसी ।
भव्य हुस्यूं तौ आस्या माहरी सिद्ध थसी ॥१६॥
तौ पिण अपराधि पर किरपा राखज्यौ ।
अपराधी जाणी मति अंतर दाखज्यौ ॥
सम निजरैं जिनराज सेवक निरखै सहू ।
भव भव चरण सरण देज्यौ एहवूं कहूं ॥२०॥
निध रस वारण ससि (१८६६) फागुण वद चवदसैं ।
सिद्धगिरी फरस्यौ मन वच तन उल्लसैं ॥
ग्यांनसार निजचर्या आतम हित भणी ।
ऋषभ जिणंद समीपैं अति रति थुय थुणी ॥२१॥

इति श्री सिद्धाचल जिनस्तवन संपूर्णम् ।
॥ सं० १८७६ लि० प० लछ ॥

[पत्र ४

ज्ञानसार ग्रन्थावली-खंड २

भाव षट्त्रिंशिका

छतीसी संग्रह

॥ दोहा ॥

क्रिया असुधता कछु नहीं, भाव अशुद्ध अशेष ।
मरि सत्तम नरकैं गयौ, तंदुल-मच्छ विशेष ॥१॥
भाव शुद्धता जौ भई, कहा क्रिया कौ चार ।
दृढ़पहार मुगतैं गयौं, हत्या कीनी च्यार ॥२॥
साधुक्रिया कछुहु न करी, ऋषभदेव की माय ।
भाव शुद्ध की सिद्ध तैं, सिद्ध अनंत समाय ॥३॥

---

१ क्रिया नी असुद्धपणो लिगार मात्र नहीं हुतो समस्तपणे भाव नी अशुद्धता थी 'मर' नाम=मरी नै (मच्छ नी जाति) तंदुल मच्छ सातमी नरकैं गयो ।

२ तेथी क्रिया नौ स्युं ? भाव नी सुशुद्धता थी सिद्धता छै । एतलै भाव शुद्धता थयै क्रिया नी प्रवर्तन स्युं, एतलै क्रिया हो न हो, जिम दृढप्रहारी ४ हत्या क्रिया नी कारक भाव शुद्धता थी मुगते पुहतो, एतलै बापड़ी क्रिया नौ स्युं ? भाव शुद्धता मुख्य कारणीभूत मुक्ति नी छे, तेज लिखे ।

३ साधु नी तप संजमादि क्रिया 'अणकरती' नाम=न करती, मरुदेवा भाव शुद्धनी सिद्धता थी अनंत सिद्धो में 'समाय' नाम=तदाकार थई ।

साठ सहिस बरसें करी, क्रिरिया अतिहि अशुद्ध ।
भरत अरीसा भौंन में, भाव शुद्ध तें सिद्ध ॥४॥
नमुक्कारसी व्रत नहीं, करतो कूर अहार ।
भाव शुद्ध तें सिद्ध ह्वै, कूरगड्ड अणगार* ॥५॥

४ नै जो अशुद्ध क्रिया सिद्ध बाधिका ह्वै तो साठ हजार बरस ताईं आश्रव कारणीभूत सिद्ध अकारणीभूत क्रिया करतै काच महिल में भाव नी शुद्धता थी भरत चक्रवर्ती सिद्ध थयो । पुनरपि ।

५ सिद्ध सानुकूल तप क्रिया, तेमां तो नवकारसी बिना व्रत करणों नहीं तो छट्ठ अट्ठमादि नी बात ही सी ?

क्रियारुचि केइक इसो कहवा लागा तें पाठ में इसो सुंण्यौ 'नमुक्कारसी व्रत नहीं' पर साधु नें नवकारसी मात्र व्रत करेई न ह्वै ? जद में कह्यो म्हारे तो मैंण रो नाक छै, हा तो 'नमुक्कार विन व्रत नहीं,' इसो पाठ कर देखू, किण किहां कथन ही छै ? जद उणे कह्यो भगवती जी में पाठ छै तद मैं कह्यौ तहत्ति । पर तिहां देख्या सू तो थो पाठ छै—क्षुध गिलायत्तेरि–क्षुध बिना ग्लायति ग्लानो भवति क्षुध ग्लायक प्रत्यय कूरादि निष्पत्तिं यावत् बभुक्षातुर तया प्रतीक्षितु मशक्नुवत् य पर्युत कूरादि प्रातरेव भुक्ते कूरगड्डूक प्राय इत्यर्थ चूर्णिकारेण तु निस्पृहत्वात् । सीय कूर तोइ इत्यादि कथानक च पुष्पमाला प्रकरणे उक्त ।

यथा—सव्वेसु' पि तवेसु' कसाय निग्गह सम तवो नत्थि
ज तेण नागदत्तो सिद्धो बहुसोवि भुंजंतो १

* महामुनिराज

क्रिया भाव सुध असुध तें[1], मेल्यो नरक समाज[2]।
भाव सुद्ध तें सिध मयौ[3], प्रसनचंद ऋषिराज[4] ॥६॥
केवलि सी करणी करै, अभव लिंग संपन्न।
पै गंठी भेदै नहीं, भाव शुद्ध तें शून्य ॥७॥
पूर्व कोड़ देसोनता, क्रिया कठिन जिन कीन।
कुरड़ अकुरड़ नरक गति, अशुद्ध भाव तें लीन ॥८॥

---

६ १ शुद्ध साधु क्रिया अशुद्ध भाव थी।

२ संघातन नाम समूह, कर्‌यौ एतलै बंधण-पन बांध्यौ। नें संघातन पर्णे कर्मवर्गणा नौ नरकगति संबधी, समाज नाम सामग्री करी

३ भावनी शुद्धता थी परम पद पाम्यो।

४ राजा, ऋषीश्वर।

७ केवलचरिया नाम=करणी करै। पुनः किदृश अभव्य लिंगेन साधुवेषेन संपन्न-युक्त। पैनाम तथापि, मिथ्यात्व ग्रन्थी भेदं न, प्राप्नोति। कथं नाम क्युं न पामै? तिहां लिखै—क्रिया तो निमित्त कारण छै। असाधारण कारण भाव। ते शुद्ध भाव थी, शून्यपणा थी गंठी भेद न थाय।

८ सित्तर लाख कोड़, छप्पन हजार क्रोड़, वर्षे १ पूर्व, इसा कोड़ पूर्व १ देशोन, अत्यंत असहनीय क्रिया करते दोनूं ही नरक गया।

यथा—वर्षति मेघ कुणालायां, दिनानि दश पच च।
मूसलधार प्रमाणेन, यथा रात्रो तथा दिवा ॥१॥
अतः—शुद्ध भावेव मुक्तिकारणं नतु क्रियेति।

वंस खेल[1] किरिया करी, साधु क्रिया नहीं लेश[2] ।
इलापुत्र केवल धरै, कारन भाव विशेष[3] ॥९॥
चरण क्रमण किरिया करी,[4] गुरु कूं खंध चढ़ाय ।
भाव शुद्ध केवल भजै,[5] नव दीक्षित मुनिराय[6] ॥१०॥
कपिल दुमक अति लोभवस, लालच क्रिय लयलीन ।
शुद्ध भाव तबही भज्यौ, आतम पदवी लीन[7] ॥११॥
पनरैसै[8] तापस प्रतैं, गौतम[9] दीक्षा दीध ।
ते केवल कमला वरै, कौन क्रिया तिन कीध[10] ॥१२॥

---

९ १ नट किरिया, २ साधु क्रिया न करी किंचित्, ३ अत्रापिइहा पिण भाव नी आधिक्यता ।

१० ४ पाद नी चलावणौ तद्‌रूप क्रिया एतलै साधु किया न करी ५ इहां पिण भाव नी उज्वलता थी केवल पामै तत्काल दीक्षावंत मुनि राम ।

११ दुमक रांक नाम कंगाल, नाम भिक्षुक यथा—

"जहा लाहो तहा लोहो,, लाहा लोहो ववड्‌ढइ ।
दोय मास कणय कज्जं कोडीएवि न निट्टई ॥"

६ पाम्योमुक्ति पदवी लीधी

१२ ७ पनरैसै तीन उपर, ८ गौतम गोत्रीय इन्द्रभूत, ९ ते तत्काल दीक्षित केवल कमला-लक्ष्मी वरै-पामै केठ ए समवसरण में पोंहचता सुधी साधु किया सी कर लीनी, तौ किया नौ स्युं ?

कृत अपराध खमावती, निज गुरणी के साथ।
मृगावती शुद्ध भाव यूं, सिद्ध सुरूप सनाथ ॥१३॥
साध क्रिया कैसें सधै, पाणी में पीलंत।
शुद्ध भाव तें शिव लहै, खंदक शिष्य महंत ॥१४॥
नाच नचन किरिया करी, साव क्रिया नहीं कीध।
आषाढ़भूतें भाव सुध, सिद्ध सुधारस पीध ॥१५॥

१३ पोताना किया अपराध नैं पोतानी गुरणी साथै खमावतोयैं महानिष जातैं केवल लह्यौ ते तिण टाणैं सी साधु किया कीनी? पिण शुद्धभाव सूं सिद्ध स्वरूपै सनाथ पवित्र थई। यथा नाम दर्शयति—

अनृत¹ साहसं² माया³ मूर्खत्वमति⁴-लोभता⁵।
अशौचं⁶ निर्दयत्वं⁷ च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥१॥

एहवी स्त्रीजात भाव शुद्ध थी सिद्ध थई। तो मोक्ष गमनें भाव नी अधिकयता छै।

१४ परमेश्वरैं इसौ कह्यौ—

"विवहार नयच्छेए तित्थच्छेओ जओ भणिओ।"

तेथी आगल क्रिया नैं थापी छै, पिण पाणी में पीलीजतां अति दुष्कर मुनि करणी ते टाणे सी बणी आवैं पिण असाधारण कारण-(निर्मल स्वरूप संबन्धी) भाव शुद्ध थी शिव मुक्ति लहैपामै, खंदक-सूरजी ना पांचसै चेला महंत महात्मा।

१५ नाचनो नचन नाचवौ तेनी क्रिया ताथेई ताथेई ए क्रिया करी। तेमां साधु नी क्रिया सर्वथा प्रकारें नहीं। तेन कर्यें जअषाढभूतें सिद्धस्वरूपै सुधा अमृत रस पोष-पान कर्युं, तौ ए रीते सिद्धपणुं पाम्यो।

तेहिज दिन दीक्षा ग्रही, क्रिया कौनसी होय ।
पै शुद्ध भावै सिद्धता, गजसुकुमालैं जोय ॥ १६ ॥
गुणसागर केवल लह्यौ, सांभल पृथवीचंद ।
पोतै केवल पद लहै, शुद्ध भाव शिव संध ॥ १७ ॥
सिहण भखै सरीर जब, मुनि करणी किम होय ।
साधु सुकोशल शिव लहै, कारण अन्य न कोय ॥ १८ ॥

१६ तइयें क्रिया नी आधिक्यता किम मानी जाय फिरी क्रिया नो किंचत् आधिक्यता हुवै तो तेहिज दिन दीक्षा ने तेहिज दिन मुक्ति, तौ इहा प्रश्न गुप्त छै । हूं तुमने पूछूं छू कहोनी तेज दिन मे साधु क्रिया सी बणै ? तेथी क्रिया नौ स्यु ?

१७ तौ ज्ञान कारणीभूत छै सिद्ध नौ, नें जो क्रिया सिद्धकारका हुव तो पृथवीचदै गुणसागर ने केवल ऊपज्यो सुणनें पोतै केवल पाम्यो तिहां साभलण रूप क्रिया थई ते सांभलण रूप क्रिया साधुक्रिया मे गुणो तौ भला । नहीं तो साधुक्रिया नौ तौ लेश हो नहीं ।

१८ फिरी कहोनी सिंह शरीर ना मांस प्रमुख ना खंड करी करी नै भक्षण करे तइयें मुनि करणी सी थाय नैं ए रीते सुकोशल साधु शिव पामे तौ मुक्ति पामवा नै अन्य शब्दै भाव व्यतिरिक्त । कारण, न कोय नहीं कोई । एतलैं-व्याकरण वालै अनुभूतस्वरूपाचार्ये विचारी नैं ज एह वचन कह्यु यथा- "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" ज्ञानात ऋते नाम ज्ञानाभावे मुक्ति न स्यादितिभावः" एतलै क्रिया न

कृत अपराध खमावती, निज गुरणी के साथ।
मृगावती शुद्ध भाव सूं, सिद्ध सुरूप सनाथ ॥१३॥
साध क्रिया कैसें सधै, घाणी में पीलंत।
शुद्ध भाव तें शिव लहै, खंदक शिष्य महंत ॥१४॥
नाच नचन किरिया करी, साव क्रिया नहीं कीध।
आषाढ़भूतें भाव सुध, सिद्ध सुधारस पीध ॥१५॥

---

१३ पोताना किया अपराध नैं पोतानी गुरणी साथै खमावतीयें महानिंद जातैं केवल लह्यो ते तिण टाणैं सी साधु क्रिया कीनी ? पिण शुद्धभाव सूं सिद्ध स्वरूपैं सनाथ पवित्र थई। यथा नाम दशयति—

अनृत[1] साहसं[2] माया[3] मूर्खत्वमति[4]-लोभता[5]।
अशौचं[6] निर्दयत्वं[7] च स्त्रीणा दोपा स्वभावजा ॥१॥

एहवी स्त्रीजात भाव शुद्ध थी सिद्ध थई। तो मोक्ष गमनें भाव नी अधिकयता छै।

१४ परमेश्वरै इसौ कह्यौ—

" विवहार नयच्छेए तित्थच्छेओ जओ भणिओ।"

तेथी आगल क्रिया ने थापी छै, पिण घाणी में पीलीजतां अति दुष्कर मुनि करणी ते टाणे सी बणी आवै पिण असाधारण कारण (निर्मल स्वरूप संबन्धी) भाव शुद्ध थी शिव मुक्ति लहैपामै, खंदक सूरजी ना पांचसें चेला महंत महात्मा।

१५ नाचनो नचन नाचवो तेनो किया ताथेई ताथेई ए किया करी। तेमां साधु नी क्रिया सर्वथा प्रकारैं नहीं। तेन कर्यें जआषाढभूतैं सिद्धस्वरूपै सुधा अमृत रस पीय पान कर्युं, तो ए रीतै सिद्धपणुं पाम्यो।

तेहिज दिन दीक्षा ग्रही, क्रिया कौनसी होय ।
पै शुद्ध भावै सिद्धता, गजसुकुमालैं जोय ॥ १६ ॥
गुणसागर केवल लह्यो, सांभल पृथवीचंद ।
पोतै केवल पद लहै, शुद्ध भाव शिव संध ॥ १७ ॥
सिहण भखै सरीर जब, मुनि करणी किम होय ।
साधु सुकोशल शिव लहै, कारण अन्य न कोय ॥ १८ ॥

१६ तइयै क्रिया नो आधिक्यता किम मानी जाय फिरी क्रिया नो किंचत् आधिक्यता हुवै तो तेहिज दिन दीक्षा ने तेहिज दिन मुक्ति, तौ इहां प्रश्न शुभ छै । हूं तुमने पूछूं छू कहोनी तेज दिन में साधु क्रिया सी बणै ? तेथी क्रिया नौ स्यु ?

१७ तौ ज्ञान कारणीभूत छै सिद्ध नौ, नैं जो क्रिया सिद्धकारका हुवे तो पृथवीचंदै गुणसागर ने केवल ऊपज्यो सुणनै पौतै केवल पाम्यो तिहां सांभलण रूप क्रिया थई ते सांभलण रूप क्रिया साधुक्रिया मे गुणो तौ भलां । नहीं तो साधुक्रिया नौ तौ लेश ही नहीं ।

१८ फिरी कहोनी सिंह शरीर ना मांस प्रमुख ना खंड करी करी नैं भक्षण करै तइयें मुनि करणी सी थाय नै ए रीते सुकोशल साधु शिव पांमे तौ मुक्ति पामवा नैं अन्य शब्दै भाव व्यतिरिक्त । कारण, न कोय नहीं कोई । एतलै-व्याकरण वालै अनुभूतस्वरूपाचार्ये विचारी नै ज एह वचन कह्यु यथा-"ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" ज्ञानात ऋते नाम ज्ञानाभावे मुक्ति न स्यादितिभावः" एतलैं क्रिया न

खंदग खाल उतारता, साधु क्रिया सी कीध ।
भव निवास तज भाव सुध, सिद्ध शुद्ध पद लीध ॥१६॥
ऊपजतौं इक पहुर में, केवल ज्ञान अनंत ।
भाव अशुद्ध तें नवि लहै, श्री दमसार महंत ॥ २० ॥
असंख्यात दृष्टान्त कूं, कौलूं वरणै जाय ।
पै जेते बुधि में चढे, वे ते दीध बताय ॥ २१ ॥

हुवै तो पिण मुक्ति, पिण ज्ञान नै अभावै तो मुक्ति नौ अभाव हीज छै एतलै असाधारण कारण मुक्ति नौ ज्ञान छै ।

१६ नै जो ज्ञानाभावे क्रिया मुक्ति कारिका हुवे तो खंदग ऋषिनी खालउतारी तिवारै साधुकरणी सी कीधी ? पिण भावशुद्धताथी भव-संसार नौ निवास-वसवो तेज मुंकनै शुद्ध ऊजलौ सिद्धपद लीध=लाधौ

२० नै जो ए नहीं हुवै नाम=भाव शुद्धता मुक्तिकारणीभूत न हुवै, तो एक पहुर उपरान्त केवल दमसार महंत महात्मा ने उपजवौ छतो मूल कारणीभूत जे शुद्धभाव तेनैं अनुदये नैं अशुद्ध भाव नैं उदयै निक्केवल निरावरणीय अनंत पदार्थावलोकी केवलज्ञान सर्व ज्ञान मां मुख्य उपजतो रही गयौ, तेथी भावएव मुक्ति कारण ।

२१ न संख्या असख्या-ऽसरा एवऽसख्यात, नहीं संख्या गिनती न थाय एतलै गिनती ही न गिणाय तेतला दृष्टान्तो नो वर्णन करता किम पार पामियै, न ज पामियै । तेथी मैं मंदबुद्धि नी बुद्धै चढ्या तेतला बतावी दीधा ।

भाव शुद्धता सिद्ध कौं, कारण तीनूं काल+ ।
क्रिया सिद्ध कारन नहीं, निश्चै नय संभाल ॥ २२ ॥

२२ तेथी भाव नी सुद्धता तेज सिद्धनूं परम कारणी भूत पणै तीने ही काले छै नै क्रिया सिद्ध नो कारण नथी। निश्चै नय नै स्मरण कर, चितवन कर निश्चै नय अपेक्षायैं क्रिया सिद्धकारिका नथी। × तमे भाव कह्यु ते जगत जंतु नैं अनेक भाव नी प्रवृत्ति प्रवृत्ति रही छै केईक स्त्रीजन नूं तदाकारी पणै विषय भावैं प्रवृत्ति रह्या छैं तिमज दृष्टिरागी छता तदाकार तदगव भावी पणै प्रवर्त्ति रह्या छै इत्यादि भाव नूं ग्रहण इहां नथी। इहां तौ जड़ थी भिन्न पणैं आत्मस्वरूप अछेद्य, अभेद्य अविना भावी जे शुद्ध आत्मस्वभाव नूं भावन चिंतवन ते भाव नूं इहां ग्रहण छै।

× इहां दोहे में एहवुं—'भाव शुद्धता सिद्ध कौ, कारन तीनूं काल'—ते जो विचारी नै जोइयें तो अनादि कालैं अनंता सिद्ध थया ते सर्व ने भाव शुद्धता रूप, मुख्य असाधारण कारण थया, थायै ते पिण मूल कारणैं सिद्ध थास्यै नैं वर्तमान कालै पिण एज कारणै सिद्ध थई रह्या छै नै सिद्ध नै विषै पिण अनंतज्ञान पणूं छै, अनंत क्रिया पणूं नथी, कां नथी ? तौ आत्मा नौ ज्ञान लक्षण छै नै क्रिया जड़ नौ लक्षण छै। तेथी दूहाना उत्तर दल में कह्यूं—'क्रिया सिद्ध कारण नहीं' तेहथी निश्चै नयनी अपेक्षायें संभालीनैं व जोइये तो क्रिया सिद्ध नूं कारण तीनूं कालै नहीं, तेथी सिद्ध नूं मूलकारणी भूत ज्ञान छै।

ज्ञान सकल नय साधियें, करणी दासी प्राय।
शुद्ध भावना सिद्ध की, कारन करन सहाय ॥ २३ ॥
ज्ञानातम समवाय है, क्रिरिया जड संबंध।
याते क्रिरिया आतमा, तीन काल असंबंध ॥ २४

२३ तिमज ज्ञान नें नेगमादि सात नयें साधी जोइयें तो राना प्राय स्थान, नें दासी नाम वादी प्राय करणी नाम क्रया, तेथी शुद्धभावन चितवन ते सिद्ध नो रण कारण छै यथा-असाधारण कारणं कारण,

कोई इहा इम कहिसी सिद्धांत मा एहवू कथन छे यथा— ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष तथा "हय नाण क्रियाहीण, हया अन्नाणो कया, पासतो पगलो दट्ठो, धावमाणोय अधलो १' एहवू सिद्धान्त मा कथन छे। तइयें कोई इहा इम कहसी, तू सिद्धान्त थी विपरीत भाषण किम भाषे छे ? तिहा लिखू छू । सिद्धान्तानुजाइए पिण विवहार नय नी मुख्यतायें ए गाथा नू कथन छे। तेज आगे दूहाओ मा कथन में पिण कह्यू छै । इहा निश्चै नयनी आधिक्यता छै।

२४ तेथी ज्ञान छै तेतो आत्मा नें समवाय सबन्ध छै यथा— यत् समवेत कार्य मुत्पद्यते तत समवाय तेथी आत्मा मा मिल्यो छतो ज्ञान छै क्रिया नो जड थी सबन्ध छै। आत्मा रै तीने कालें क्रिया थी असबन्ध छै एतलें आत्मा जेतले ज्ञान गुणें परणम्यो नही तेतले ज क्रियानी मुख्यता मानी रह्यो छै, विचारी नें जोइयें तो इमज छै।

धर्मी अपने धर्म कूं, न तजै तीनूं काल।
आत्मज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल ॥२५॥
प्रकृति पुरुष की जोड़ है, सदा अनादि सुभाव।
भव थित की परिपाक तें शुद्धातम सद्भाव ॥ २६ ॥

२५ धर्मी पोताना धर्म नैं न छोड़े, तेथी आत्मा ज्ञानधर्मी, जड़ क्रियाधर्मी नी चाल-रीति न छोड़े । यथा नाम दर्शयति—जे दोहे में कह्या धर्मी अपने धर्म कूं, न तजै तीनूं काल । ते सीतातप वारणरूप पट नूं धर्म, तिम जलाद्यधारणरूप घट धर्म । ए धर्म जेहूं मां रह्या छै तेहू नैं धर्मी कहियै, तेहथी पटधर्मी सीतातप वारण धर्म नें न तजै नाम न मेलै, नाम न छोड़े । तिमज घटधर्मी जलाद्यधारणरूप धर्म तीनूं काल मां न छोड़े । घट पटो न भवति, पट घटो न चेति वा तिम, तिम आत्मज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल" तेथी आत्मा तीने ही कालें धर्म ने न छोड़े "अक्खरस्स अणंतमो भागो, निच्चुग्घाड़ियो चिट्ठई' इति जिनवचन प्रामाण्यात् नैं तिमज जड़ क्रिया धर्म, न मेलै ।

हिवै शुद्ध आत्म सुभावी पणुं आत्मा पामै ते रीति लिखैं—कर्म प्रकृति नैं जीव नी अनादि सुभावैं जोड़ी छै यथा—कनकोपलवत सोना नी पाषाण नी खान मा जोड़ी तिम जीव नैं प्रकृति नी जोड़ी । पछी भव नी थित नौ काल तेनी परिपाकावस्था थयें दोष टलैं, मली दृष्टी ऊघड़ैं पछी अनुक्रमें शुद्धात्मा नी छतापणो थाय, रहस्यार्थी—आत्मा, आत्मा स्वरूपवंत थाय ।

शुद्धातम सद्-भावना, शुद्ध भाव संजोग।
भाव शुद्ध की सिद्ध ह्वै, पाक काल परिभोग ॥ २७ ॥
काल पाक कारन मिलैं, किरिया कछू न काम।
पातन किरिया बिन पड़ै, बाल दसन अभिराम ॥ २८ ॥

२७ ते आत्मा शुद्ध स्यै थी थाय ? शुद्ध जे आत्मा स्वरूप नो भाव तेना संयोग थी नाम मिलाप थी ते भाव नी सिद्धता काल पाक्यां विना नहीं

२८ जिम कालपाक नी सिद्धता थयें विना पाडण क्रियायें अभिराम-मनोहर बालक ना दांत पड़ी जाय।

कालो सहाव नियई पुव्व कयं पुरसकारणे पंच। समवाए सम्मतं एगंते होई मिच्छतं १ ए गाथा सर्व नयनी अपेक्षायें जोइये तो ए पांचेई समवाई कारण मिलियां विना कार्य नी सिद्धता नहीं, पिण विचारो नें जोइयें तो ए पांचेइ कारणो मां मुख्यता काल कारण नी छै। तेथी आनन्दघन सुसाधुअें एहवुं कह्यु :—काललब्धि लहि पंथ निहालस्युं" तेथी काल परिपाक मुख्य कारण मिलू जोइयें यथा – मरुदेवा, दृढप्रहार, भरतादिक ने काल परिपाक कारण नी सिद्धता थी सिद्ध थई नें बीजूं साधु क्रियादि नूं कारण तौ कारणीभूत विशेषें न हुंतूं काल पाक कारण मिलै तौ विशेषें क्रिया कार्य कांई नथी।

जिम लव सप्तमिया देव नें ही कालपाक कारण न मिल्यौ, नहीं तौ केवल पामी ने सिद्धे ज जाता। तेथी ज मुख्य कारण जाणी नें ज गाथा में प्रथम 'कालो सहाव नियई' एहवुं गुंथ्युं।

काल पाक की सिद्ध तें, सहिज सिद्ध ह्वै जाय ।
विन वरषा फूलै फलै, ज्युं वसंत वनराय ॥ २६ ॥
भवपरिणति परिपाक विन, भाव शुद्ध नहि होय ।
मुनि करणी कर नरक गति, कुरड़ वकुरड़ दोय ॥ ३० ॥
क्रिया उथापी सर्वथा, वंछक किरिया चार ।
पै वंछक लक्षण रहित, सो सब शुध आचार ॥ ३१ ॥

२६ तेथी कालपाक नी सिद्धता थयै सहज निःप्रयास सिद्ध नी सिद्धता ह्वै जाय ना० ह्वै ॥ यथा विना वरषा -मेह वारस्यां बिना फूल फलै सहित एक वृक्ष ही नहीं सर्व वनराय ह्वै ते वनराजी नै फूल फल थावान् कारण वर्षा नें अभावै कां फूल फलै पिण कालपाक कारण मिल्यो तिमज कालपाक नी सिद्धता विना ३२ दिवस तांई स्त्री नें पुरुष संयोगै पुत्रोत्पत्ति कां न थई नै ३३ मौ १ दिवस तेनें विषै पुत्रोत्पत्ति कां थई। पिण पाक काल नौ दिवस मिल्यै सिद्धता थई, इत्यादि केतला एक लिखूं, दृष्टान्त घणा लिखवानै पानौ ओछो ।

३०, ३१ तिमज भवस्थिति नौ परिपाक कारण मिल्यां विना अन्य कारण नी सिद्धता नहीं, शुद्ध भाव करणी नी सिद्धता किहांथी, तेहथीज मुनिकरणी अति दुस्सह प्रवर्तता थेई मुनि नरके कां गया,पिण काल पाक कारण न मिल्यो तेथी मूल कारण ए छै। इहां कोई इम कहिस्यै 'एकंते होई मिच्छत्तं' पिण इहां जे मैं क्रिया उथापी ते वांछा सहित किया उथपती छै। किम वांछा सहित क्रिया निष्फल छै ने वांछा रहित क्रिया शुद्ध आचरण छै

शुद्धातम सद्-भावना, शुद्ध भाव संजोग।
भाव शुद्ध की सिद्ध है, पाक काल परिभोग॥ २७॥
काल पाक कारन मिलें, किरिया कछू न काम।
पातन किरिया विन पड़ै, बाल दसन अभिराम॥ २८॥

२७ ते आत्मा शुद्ध स्यें थी थाय ? शुद्ध जे आत्मा स्वरूप नो भाव तेना संयोग थी नाम मिलाप थी ते भाव नी सिद्धता काल पाकां विना नहीं

२८ जिम कालपाक नी सिद्धता थयें विना पाडण क्रियायें अभिराम-मनोहर बालक ना दांत पड़ी जाय।

कालो सहाव नियई पुव्व कयं पुरसकारणे पंच। समवाए सम्मतं एगंते होई मिच्छतं ? ए गाथा सर्व नयनी अपेक्षायें जोइये तो ए पांचेई समवाई कारण मिलियां विना कार्य नी सिद्धता नहीं, पिण विचारो नें जोइयै तो ए पांचेइ कारणो मां मुख्यता काल कारण नी छै। तेथी आनन्दघन सुसाधुयें एहवुं कह्युं:—काललब्धि लहि पंथ निहालस्युं" तेथी काल परिपाक मुख्य कारण मिलू जोइयें यथा–मरुदेवा, दृढप्रहार, भरतादिक ने काल परिपाक कारण नी सिद्धता थी सिद्ध थई नें बीजूं साधु क्रियादि नूं कारण तौ कारणीभूत विशेषें न हुंतूं काल पाक कारण मिलै तौ विशेषें क्रिया कार्य कांई नथी।

जिम लव सत्तमिया देव नै ही कालपाक कारण न मिल्यौ, नहीं तौ केवल पामी ने सिद्धे ज जाता। तेथी ज मुख्य कारण जाणी नें ज गाथा में प्रथम 'कालो सहाय नियई' एहवुं गुंथ्युं।

काल पाक की सिद्ध तें, सहिज सिद्ध ह्वै जाय ।
बिन वरषा फूलै फलै, ज्युं वसंत वनराय ॥ २९ ॥
भवपरिणति परिपाक विन, भाव शुद्ध नहि होय ।
मुनि करणी कर नरक गति, कुरड़ वकुरडू दोय ॥ ३० ॥
क्रिया उथापी सर्वथा, वंछक किरिया चार ।
पै वंछक लक्षण रहित, सो सब शुध आचार ॥ ३१ ॥

२९ तेथी कालपाक नी सिद्धता थयैं सहज निःप्रयास सिद्ध नी सिद्धता ह्वै जाय ना० ह्वै ॥ यथा विना वरषा -मेह वारस्यां बिना फूल फलै सहित एक वृक्ष ही नहीं सर्व वनराय ह्वै ते वनराजी नैं फूल फल थावान् कारण वर्षा नें अभावैं का फूल फलै पिण कालपाक कारण मिल्यो तिमज कालपाक नी सिद्धता बिना १२ दिवस तांई स्त्री नैं पुरुष संयोगै पुत्रोत्पत्ति कां न थई नैं २३ मो १ दिवस तेनैं विषै पुत्रोत्पत्ति कां थई । पिण पाक काल नौ दिवस मिल्यै सिद्धता थई, इत्यादि केतला एक लिखूं, दृष्टान्त घणा लिखयानै पानौ ओछो ।

३०, ३१ तिमज भवस्थिति नौ परिपाक कारण मिल्यां विना अन्य कारण नी सिद्धता नहीं, शुद्ध भाव कारणी नी सिद्धता किहांथी, तेहथीज मुनिकरणी अति दुस्सह प्रवर्तता बेई मुनि नरके कां गया,पिण काल पाक कारण न मिल्यो तेथी मूल कारण ए छै। इहां कोई इम कहिस्यै 'एगंते होई मिच्छत्तं' पिण इहां जे मैं क्रिया उत्थापी ते वांछा सहित क्रिया उत्पती छै। किम वांछा सहित क्रिया निष्फल छै ने वांछा रहित क्रिया शुद्ध आचरण छै

निश्चै सिद्ध जौ लूं नहीं, विवहारें जिय मेल।
जौलूं पिय फरसै नहीं, तब गुढियां स्यूं खेल ॥ ३२ ॥

निश्चै हू भी सिध नहीं, विवहारै द्यै छोड़।
इक पतंग आकाश मैं, फिर दौरी द्यै तोड़ ॥ ३३ ॥

---

३२ तेथी मूल कारणी भूत जे निश्च तेहनी सिद्धता नहीं तितरै विवहार थी जीव मिलाय, नाम रुचि राख ! क्युं जितरै भरतार सूं मिलाप नहीं तितरै कन्या गुदियां सुं खेले, तिम जितरै आतम स्वरूप भर्त्तार नौ मिलाप नाम प्राप्ति न थाय तितरै विवहार रूप जे गुढी-दूली नौ खेल खेलै ए सदा नी रीत छै । जिम जेतलें सम्पूर्ण अक्षर वांचवानौ ग्यान नहीं तेतलें मात्रा पाठ मां विशेप वृत्तियें जीव रमावें तेहनै अक्षर वांचवौ वहिलो आवें नें जिवारें अक्षर वांचवा रूप कार्य नी सिद्धता थई तदुपरांत मात्रा पाठ भले ना पाठ नौ फेर स्मरण नहीं तिम जेतलें निश्चै स्वरूप नी सिद्धता नहीं तेतलै 'विवहारै जिय मेल' नाम विवहार मां जीव मिलाय, विवहार थी अरुचि मत ल्यावै, नै निश्चै सिद्ध थयां उपरांत भलेना पाठ नी परें विवहार नें भूली जाजै जिम भर्त्तार नैं फरस्यां कन्या गूढी नौ खेल भूली जाय तेहथी—'जोलूं घट में प्राण है तोलूं वीण बजाय' एतलै निश्चै नी सिद्धतायें विवहार (नी) वीण वजाय।

३३ निश्चै नाम आत्मा स्वरूप जड़ थी भिन्न पणें लक्षणे लख-वाथी ए निश्चै हू नाम निश्चै संघातै । भी पुनः सिद्ध नहीं, सिद्धता

जौ लूं भाव न शुद्धता, तौ लूं किरिया खेल।
घाणी जौलूं पील है, तौलू' निकमैं तेल ॥३४॥
ज्ञान धरौ किरिया करौ, मन सुध भावौ भाव।
तौ आतम में संपजै, आतम शुद्ध सुभाव ॥३५॥

न थई छै एतलै आत्मा नै ए रीतै जड़ थी न्यारौ निश्चै न कियौ, ते किम? हूँ आत्मा ए जड़। हूँ चेतनधर्मी ए जड़धर्मी, हूँ अविनश्वरी ए विनश्वरी, हूँ अछेद्य अभेद्य एनौ छेद्य भेद्य, ए संसार निवासी हूँ सिद्धवासी, ए जड़रूपी हूँ सिद्धस्वरूपी इत्यादि लक्षणै जड थी भिन्नपणैं निश्चै नी सिद्धता न थई। तेहथी पहिलाज विवहार नैं छोडी दै। इहा ए दृष्टांत कै एक तौ पतंग आकाश में नाम हाथे नथी नें फिरि पतंग थी संबंधित जे दोरी तेहनैं तोड़ी दीनी तइयें मूल थी पतंग खोयो, तिम निश्चै नी सिद्धता रूप पतंग ते तौ भवस्थिति परिपाक विना हाथै नथी। नें तेहथी संबंधित विवहार नैं मूकी दै तो मूलग था निश्च खोयौ।

३४ तेथी जेतलै आत्मिक भाव संबंधी सिद्धता नहीं तितरै ताई क्रिया नौ प्रवर्त्तन, तेनै खेल प्रवर्त्ततौ कहै ए बात साची छै जेतलै तेल न निकलै तितरै घाणी पीलै हीज छै।

३५ ज्ञानधरौ—तेथी अहो भव्य प्राणी तूं मुख्य वृत्तियें ज्ञान नें धारा; ते ज्ञान शब्दें स्वरूप ज्ञान, जे म्हारै जड थी सी सगाई इत्यादि चिंतवतौ छतौ क्रिया मा प्रवर्त्तशून्य ज्ञानी छतौ इकेली क्रिया नौ रुचि थईस तौ कोई मुक्त जेहवी वचक क्रियाकार नी क्रिया जाल मा फसी नै तेनौ दृष्टिरागी छतौ मत ममत्वी थई ने मतवादै

जौलूं कारज सिद्ध नहीं, तौलूं उद्यम खेद।
घट कारज की सिद्धि तें, उद्यम खेद निषेध‡ ॥३६॥
भाव छत्तीसी भविक जन, भावे भज निज भाव।
निज सुभाव भवदधि तिरन, नई भई सी* नाव ॥३७॥
सर रस गज ससि संवतैं, गौतम केवल लीन×।
किसनगढ़ें चौमास कर, संपूरन रस पीन+ ॥३८॥
अति रति श्रावक आग्रहे, विरचौं भाव संबन्ध×।
रत्नराज गणि सीस+ मुनि, ज्ञानसार मतिमंद ॥३९॥
॥ इति भाव षट्त्रिंशिका समाप्ता: ॥

प्रवर्त्तौ आर्त्त रौद्र ध्यान म प्रवर्त्तसी तेथी जो समावै, समपरणामी छतौ १२ भावना रूप धर्मध्यान थी मन शुद्ध आत्म स्वभाव तेनें भावजे, चिन्तवजे। तो आत्मा नौ शुद्ध स्वभाव आत्मा मां सहिजै निःप्रयासैं सपजसी, पामसी।

३६ ‡ घट कार्यरूप उद्यम खेद नौ निषेध, नाकारौ।

३७ * तुरत री हुई।

३८ + गौतम गोत्री इन्द्रभूतें केवल पाम्यौ×दीपमालिका दिनें।

३९ अत्यन्त रागी जे श्रावक-नें आग्रह थी विशेषें गूंथ्यौ भाव नौ कथन ‡ शिष्य मंदबुद्धियें।

- जैनगरें गोलछा गोत्रे सुखलाल श्रावके आजन्म जिनमत अराधियें शुद्ध वृत्तें जिनदर्शन आदर्यौ। पछी हूँ किसनगढ़ आयौ तिवारें समयसार जिनमत विरुद्ध वांचतौ सुण ए रची नें मूंकी तेऊए ए वांची नें वांचवू मूंकी दीधूं ॥

जिनमताश्रित आत्मप्रबोध
छतीसी

अथ मंगल कथन रा दोहरा

श्री परमातम परम पद, रहे अनंत समाय[1]।
ताकों हूं वंदन करू, हाथ जोर सिर नाय ॥१॥

अथ शुद्धात्मा वर्णनम् ॥ यथा:—

आतम अनुभव अमृत को, जिन जिय कीनौ पान।
ताकौं हौं बरनन करूं, अनुभव रस की खान ॥२॥

*अथ शुद्ध स्वरूपी वर्णनम्। यथा:—

सवैया इकतीसा

जाकै घट भीतर ज्ञान भान भोर भयौ,
भरम तम जोर गयौ, जागी शुभ वासना।
काम को निवारी, मान माया कौं उखार डारी,
लोभ क्रोध कौं विडारी, अंदर प्रकाशना ॥
आतम सुविलासी,[2] शुद्ध अनुभौ को अभ्यासी,
शुभ्र रूप[3] कौं प्रकाशी, भासी ऐसी वासना ॥
ज्ञान दशा जागी, पर परणित हू अशुद्ध त्यागी,
ज्ञानसार भयौ रागी करत उपासना[4] ॥३॥

पाठान्तर—*भावना

१ एकीभूत २ स्वरूपचितनी ३ उज्वल ४ सेवा।

सवैया अठाइसा

धर्म को विलासी जड संग सों उदासी,
तजी आस दासी आतम अभ्यासी है।
अल्प आहार हारी‡ नैनहू की नींद टारी,
कर्म कला जारी आपा प्रकाशी है॥
प्राणायाम को प्रयासी[1] पचेन्द्री जय काशी[2]
ध्यान को विभासी ऐसी दशा भासी[3] है।
साधु मुद्रा धारी ध्रुव[4] धर्माधिकारी,
ज्ञानसार बलिहारी शुद्ध बुद्ध सासी[5] है॥४॥

अथ अशुद्ध[6] शुद्धात्मा वर्णनम् यथाः—

सवैया तेतीसा[7]

मुंड के मुंडइया वनवास के वसइया,
धूम्रपान के करइया, अज्ञान विस्तारयो है।

‡ आहारी। १ प्राणायाम 'प्राणयम श्वास प्रश्वास रोधनं २ जीत्या छै जिण ३ प्रगटी ४ स्वभाव सम्बन्धित धर्म ना० लक्षण, आत्म तत्त्वनो अधिकारी, धारक ५ तत्वज्ञ साहसीक ६ प्राप्त धर्मात् प्रथम अशुद्ध धर्म धारक पश्चात शुद्ध धर्मप्राप्ति लक्ष्य ७ केई आचार्य इकतीसे सूं सवैये नै कवित्त कहै नै केई छप्पय छंद नै कवित्त संज्ञा कहै नै और

घाम के सहइया भस्म भूर[1] के चढ़इया,
राम नाम के रटइया भ्रम पूर तैं भरयौ है।
ताकौं भ्रम रूप तम भूर[2] दूर करिवैं कौं,
आपा शुद्ध ज्ञान भान निराबाध रस वरयौ है।
ज्ञान दशा जागी जब अशुद्ध परणित त्यागी,
ज्ञानसार भयौ रागी समता रस भरयौ है ॥५॥

अथ अध्यात्म मत कथन

दोहरा—

जो जिय[3] ज्ञान रसैं भरयो, ताकैं बंध नवीन[4]।
होंहि नहीं ऐसौ कहैं, सो दुबुद्धि मति छीन[5] ॥६॥
सोऊ कहि विवहार मैं, लीन भयौ ज्यौं जीव।
ताकौं मुक्ति न होंहिगी, सही दुबुद्धी जीव ॥७॥

अथ शुद्ध जिनमत कथन

दोहरा

निश्चै अरु व्यवहार द्वै, नय भाषी जिनराज।
सापेक्षा इक[7] एकसौं, करै जिनागम माझ[8] ॥८॥

चौतीसैं तांइ सब नैं सवैयों ज कहै। १ प्रचुर २ समस्त ३ ज्ञानी कौ भोग कर्म, निर्जरा कौ हेत हैं एहवौ कहै नै जड़ में मगन रहै, ते ऊपर कथन ४ अयोगी अबन्धक ५ तुच्छ ६ समैसार मती कहै ७ अपेक्षा वांछ ८ रहस्य।

अथ निश्चय व्यवहार नयोपरि दृष्टान्त कथन सवईया इकतीसः—

जैसें कोऊ मथानहू की दोऊ दौर अँच रहे,
मांखन कूं चहै पैं कैसें हू न पइयैं।
दोऊं दोर छोर जांहि तांहू दधि मथै नांहि,
एक अँच एक ढीलैं मांखन कौ लहियैं॥
तैंसें जैनी प्रश्न धरैं विवहारैं कथन करैं,
ता वेर निश्चै दोरी छोरी हू न चहियैं।
निश्चै नय कथन वेर विवहारैं न देत घेर,
ऐसें शुद्ध कथन तैं आपा लखइयैं॥९॥

अथ ज्ञान क्रिया कथन चौपाईः—

जैसें अंध पांगुरौ[1] कोऊ, आंख पाउतैं नर गए दोऊ।
पंगु खंधधरि अंधक चाल्यौ, आप निकरतैं पंगु निकाल्यौ॥१०॥
अंध क्रिया अरु पंगु ग्यान, इकतैं सिद्ध न होय निदान।
ज्ञानवंत जो करनी करैं, मोख पदारथ निहचै वरैं॥११॥
शुद्ध सरूप धरौ तप करौ, ज्ञान क्रिया तैं शिवगति वरौ।
एक ज्ञानतैं मानैं मोख, सो अज्ञान मिथ्यामति पोष॥१२॥

पुनः तदेव मत कथन चौपाईः—

अपनौ[2] शुद्धातम पद जोवैं, क्रिया[3] विभावैं[4] मगन न होवैं।
मोख पदारथ मानैं ऐसे, जिनमत तैं विपरीत विशेषैं॥१३॥

---

१ पांगुलो २ आपनौ, आपणो आत्मारो शुद्धपद मारो आत्मा जड़ थी भिन्न छे पतलौ मुखें कहै पर सुखमें दुखमें सुखी थाय दुखी थाय तइई कहिवारूप ठहिरयौ तेथी सी सिद्धवा ३ आत्म स्वभावाभाव ४ प्रेत

अस्य प्रत्युत्तर कथन दोहरा:—

स्यादवाद[1] जिनमत कथन, अस्तिनास्तिता[2] रूप ।
ता विन को कैसैं लखै, आतम शुद्ध सरूप ॥१४॥

पुनरपि तदेव मत कथन चौपई:—

जो करता[3] भुगता नहीं मानौं, आतमरूप अकरता ठानौं[4] ।
सुखदुखरूपक्रियाफल हो है, विन आतमफल भुगता को है ॥१५॥

अस्योपरि जिनमत प्रत्युत्तर कथन चौपई:—

करता करम करमफल कामी, भाखी त्रिभुवन जनके सांमी ।
क्रिया करै अकरता मानै, सो जिनमत कौ मरम न जानै ॥१६॥

अथ स्याद्वाद कथन सवईया इकतीसः—

शुद्ध[5] साधु भेष धरै, अवंचक क्रिया करै,
खंत्यादिक दशौं विधि, यति धर्म धारी है ।

की सी पुरी, मधुलेपी सी छुरी । एहवू समयसार वालो कहे छै क्रिया नै । १ स्याद्वदनं स्याद्वाद २ स्यादस्ति नास्ति ।

३ थे जो आतमा नै कर्त्ता भोक्ता न मानौ तो शुभकर्मे तुम्हे क्यूं प्रवर्त्तो छौ । एना शुभ फल नौ, आतमा नै तौ शुभ फल नो भोग छैज नहीं तौ शुभ करणी करण जड ताडन नी परै निषद्ध ठहरी । अकारणत्वात् ४ स्थापौ, तेथी जैनी नूं प्रश्न, तौ क्रिया क्यूं करौ ५ शुद्ध शब्दैन-'न रंगिज्जा न धोएज्जा' इत्याचारांगे सक्तत्वात् । रक्तश्याम पट

पांचूं महाव्रत धरैं, छहूँ काय रचा करैं,

महा मैले वस्त्रधारी, ऐसे जो मिथ्यारी हैं।

पाय लों विहारी, परीसह सहैं भारी,

जीवन की आशा टारी¹ मरण भय निवारी हैं।

ज्ञानानल कर्म जारी, शुद्ध रूप के संभारी²,

ऐसे ज्ञान क्रियाधारी, सिद्धि अधिकारी हैं ॥१७॥

दोहरा

ज्ञान क्रिया द्वै सिद्ध के, कारण कहे जिनंद।

एक ज्ञान तैं सिद्ध ह्वै, भावै सो मतिमंद ॥१८॥

ज्ञान क्रियोपरि दृष्टान्त कथन दोहराः—

ज्ञान एकहू सिद्ध कौ, कारण कदे न होय।

एक चक्र रथ नां चलै, चलै मिलैं जब दोय ॥१९॥

पुनरपि तदेव मत कथन दोहरा

सदा शुद्ध तिहुँ काल मैं, आतम कर न अशुद्ध।

हम तुम हैं संसार सो प्रत्यक्ष विरुद्ध ॥२०॥

नौ निराकरण कर् यु । १ जीवी आस मरण भय विप्पमुक्के

२ प्रत्यक्षकारी।

३ थे सदा आत्मा नै शुद्ध मानौ छौ तौ थांहरै म्हांरै आत्मारै

नाम अध्यातम थापना, द्रव्य अध्यातम छोर।
भाव अध्यातम जिन मतैं, साधैं नाता जोर ॥२१॥

(चौपाई

आतम बुद्धि गह्यौ कायादिक, बहिरातम जानौं अघ रूपक।
काया साखी अंतर आतम, शुद्ध स्वरूपमई परमातम ॥२२॥
सदा शुद्ध जो आतम होय, तौ आतम त्रय भेद न होय[1]।
यातैं सदाकाल नहीं शुद्ध, करम नाश तैं होय विशुद्ध ॥२३॥

पुनरपि तदेव मतोपरि जिनमत कथन दोहराः—

पुद्गल संगी[2] आतमा, अशुम ध्यान में लीन[3]।
तितो वेर सुख मांनिहौ, सो मिथ्यातम लीन ॥२४॥

पुनरपि तदेव मत कथन दोहरा सोरठाः—

कदे न[4] लागै कर्म, कहै आतमाराम सौं।
इह मिथ्यामति भर्म, बंध मोख है आतमा ॥२५॥

कर्म न लागा हुँत तो ससार में रुपै कारण थी आवता, तो ए बात प्रत्यक्ष विरुद्ध प्रत्यक्षे प्रमाणाभावात्। तेथी तारो कीधो सदा शुद्ध आत्मारूप सिद्धान्त पिण विरुद्ध ठहिरयो। यथा—आत्मातु पुष्कर पत्र वन्निरुपलेप। कथं ? प्रत्यक्ष विरुद्ध वात्

१ तो आत्मा नौ एक परमात्मा भेद ही ज हुतौ। २ मिल्यौ छतौ। ३ विषय सेवन कालै, हिंसा प्रवर्तन कालें।

४ "सिद्ध सनातन जौ कहूँ तौ उपजै विनसै कौन।" पुनरपि—"शुद्ध स्वरूपी जो कहूँ, बंधन मोख विचार। न घटै संसारी दसा, पुण्य

जीव कर्म की जोड़[1], है अनादि सुभाव माँ।
इह मिथ्यामति छोड़, जीव अकर्त्ता कर्म कौ ॥२६॥

अथ अन्य पक्षोपरि जिनमत कथन दोहराः—

कर्म करै फल भोगवै, जीव द्रव्य कौ भाव[2]।
शुभ तैं शुभ अशुभैं अशुभ, कीने कर्म प्रभाव[3] ॥२७॥

अन्य सर्वमत किंचित कथन दोहराः—

नित्यानित्य केई कहै, स्वपर तैं केईक।
के[4] ईश्वर प्रेर्यो कहै, केई कहै अलीक[5] ॥२८॥
यदृच्छा केई कहै[6], भूत-मई कहै कोय[7]।
असहाई आतम दरव[8], नित्य अरूपी सोय ॥२९॥

अथ शुद्ध स्याद्वाद प्रवर्तन कथन कुण्डलियाः—

घर में या वन में रहौ, भेष रूप बिन भेष।
तप संयम[9] करणी विना, कोई न लखै अलेख[10] ॥
को न लखै अलेख, विना तप संयम करणी।
ज्ञान क्रिया ए दोय, उदधि संसार वितरणी[11] ॥

पाप श्रीता"

१ "कनकोपलवत् पयड पुरुष रथी, जोडी अनादि सुभाव।" २ स्वभाव ३ कारणै। ४ ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गंवा स्वभ्रमेववा ५ केई कहै ईश्वर प्रेर्यो कहै सो असत्य ६ केई स्वर्गं जावु' आत्मानी इच्छा नावै विण।

७ केई कहै आत्मा इसौ पदार्थ छै ज नहीं, चेतन सत्ता तौ पंचभूत मई छै। ८ एजैनी नूं वाक्य, सहाय कोई रो नहीं आत्मा द्रव्य रै ९ ज्ञानें इन्द्रियां रो दमन १० अलक्ष्य ११ नाव।

एक ज्ञान हू मोख, मान कारण क्यों भरमें।
तप संयम द्वै धर्म, लखौ अनलख[1] घट घर में ॥३०॥

(दोहरा)

घट घर में अनलख लखौ, स्यादवाद तें शुद्ध।
स्याद कथन विन अलख कों, लखै कौन विध बुद्ध[2] ॥
रूप लखै कछु वस्तु नहीं[3], अलख लख्यौ क्यों जाय।
स्याद्वाद षटमत मयी,[4] यातें प्रगट लखाय ॥३२॥

अथ जिनमत प्रशंसा कथन दोहरा—

जिन मत त्रिन त्रयकाल में, निराबाध[5] रस रूप।
लखै[6] कौन विध आवमा, आतम शुद्ध सरूप ॥३३॥

चन्द्रायणौ—

पूरण पुण्य संयोगे जिन मत पाइयो।
स्याद्वाद[7] परसाद, शुद्ध पद गाइयो ॥

---

१ अलख आत्मस्वरूप त्रिखै, कालें न लखाय २ हे तत्त्वज्ञ! कथं?
३ "रूपी कहुँ तो कछु नहीं" ४ सतनयाश्रितत्वात्—"षट दरसण" जिन अङ्ग भणीजे" एनलै यही जैन दर्शन यह छए ही मत।

५ निराबाध नाम व्याबाधा—पीड़ा रहित एहवो छतो आत्मिक-स्वरूप रूप रसें भरयो। एहवो शुद्धात्मता धर्म स्वरूप नूं लखवुं
६ आवै ७ जैनादि स्यात्पुरस्सरं वदन्ति।

स्याद कथन विन[1] शुद्ध, रहिस को जांनिहैं।
परिहां या विन कहि हम जांन्यौ, सो नहीं मानि हैं ॥३४॥

दोहरा—

कोय कहै सब आपनै, मत की करैं प्रशंस।
निमता[2] विन शुद्ध वचन रस, पावै नहीं निरस[3] ॥३५॥
श्रावक आग्रह सौं करैं, दोहादिक षट्तीस।
ज्ञानसार दधि सार[4] लौं, ए आतम छत्तीस ॥३६॥

॥ इति श्री आत्मप्रबोध छत्तीसी*सम्पूर्णम्॥

---

१ तेन विना २ निर्ममत्व ३ निर्गतोऽशो यस्मात् स निरश समस्तेत्यर्थ ४ माखण नी परैं।

* हूं बाहिर बगीची उपाश्रय छोड़ नैं आय बैठो जद श्रावगी कालो जातैं ऋषभदासै मनें कह्यु थे सिद्धात वांचो तो दोय घड़ी हूं मी आवूं, जद मैं कह्यो हूं तो उत्तराध्ययन सूत्र वांचूं छूं जद तिणे कह्यु समैसारजी सिद्धान्त वांचो। जद मैं कह्यु समैसार जिनमत नो चोर छै तिवारै कह्यु—है! समयसार में चोरी छै तो मनै दिखावो तिवारै आश्रव संवर द्वारैं "आसवा ते परीसवा परीसवा ते आसवा" ए सिद्धान्त नूं एक पद अठै नें जे चोरी हुती ते छत्तीसी में कही ते सुणी मगन थइ गयो इति ॥

॥ चारित्र छत्तीसी ॥

(दोहा)

ज्ञान धरौ किरीया करौ[1], मन राखौ विश्राम[2]।
पैं चारित्र कै लैण कैं, मत राखौ परिणाम ॥१॥
जो लौ सो हम पूछ कैं, लेज्यौ संयम भार।
सयम करणी नहिं सुगम, संयम खैंडा धार ॥२॥
चारित बिन जो सिद्ध की, करणा पूछै कोय।
तौ विन चारित सिद्ध कौ, कारण अन्य न होय ॥३॥
यो चारित व्है सिद्ध कौ, कारण सो कछु और।
औ[3] चारित तौ सिद्ध कौ, बाधक[4] कारन ठोर ॥४॥
तातैं इन चारित की, म धरो मन मैं प्रीत।
जिन चारित तैं सिद्ध व्है, सो नहीं इनमें रीत[5] ॥५॥

---

* जैसलमेरे सिंघवी जातें मोतुजीयें चारित्र लेवानो अत्याग्रह कर्यै, ए छत्तीसी रची। पछी जेनी संचक क्रिया भी परिणाम करता था, तेनो प्रचकपणो आख्या देखी लीधो, तेथी चारित्र न लीधो!

१ स्वरूप ज्ञान धरौ, अवंचत क्रिया करौ २ ठाम राखौ

३ आजकाल सम्बन्धी ४ सिद्ध जातां ने रोक ५ आजकालीन में

श्री चारित[1] सो श्रौर है, श्री चारित तौ भिन्न।
दन्त दुरिद[2] देखन जुदे, खाने के सो श्रन्य ॥६॥
दीसै परगट श्राप ही, इन उन चारित वीच।
श्रन्तर रैनी धौसको, उज्वल जल श्ररु कीच ॥७॥
नारन शुद्ध चारित्र की, कैसैं लहियैं शुद्ध।
शुद्धातम श्रनुभौ सदा, श्रातम गुण श्रविरुद्ध[3] ॥८॥
शुद्धातम श्रनुभौ मई[4], ज्यौं सद्भाव[5] विशुद्ध।
सो चारित इन काल में, पावै नहीं प्रसिद्ध[6] ॥९॥
जो जिन[7] कालै नीपजै, सो उन कालैं होय।
विन वरषा वरषामई[8], पादप वृद्ध न होय[9] ॥१०॥
तातै इन कलिकाल[10] मैं, उन चारित की शुद्ध।
करियै पै कैसे हुवै, जो इन काल विरुद्ध[11] ॥११॥

१ श्रातम स्वरूप प्रत्यक्षता, २ द्विरद = हाथी, ३ सामायकादि पांचेही श्रातम गुण श्रापक ४ शुद्धात्मा नौ श्रनुभौ बीस्तौ रह्यु, पण श्रमे कुण छियें स्यु प्रवर्तियै छिये, ९६ न दीसै ५ सत्तुभाव ६ श्राधुनकी चारित्रियां में प्रत्यक्ष तौ न दीसै। नें परमेश्वर नौ वचन छै, पर एहवो तो वचन न छै। चारित्रियो मां ज चारित्र पात्यै ते तौ न थया, तेमां गृहस्थियो मां हस्यें। ७ चौथे श्रारै ८ वर्षाकाल सम्बन्धी ९ रूंख वधे नहीं, उगा तौ थाइ, इण कालें सामयकादि चारित्र जीव पावै तौ सही पर सद्भाव बिना श्रातम गुण वृद्धि मथी न थाय। इति सटक ॥ १० पंचम काल में ११ इण कालै सामायक

जा पै सीखन जाइयै, चारित कै आचार।
सो आपा भूल्यौ फिरै, संयम को व्यवहार ॥१२॥
तातै नहिं इन काल में, संयम लैनें ठौर।
घर बैठे किरिया करो, म करो दौरा दौर[1] ॥१३॥
पहिली याकौं जानियै, गौतम को अवतार।
आसेवन[2] कर देखियै, अति अशुद्ध आचार ॥१४॥
चौथे आरै की क्रिया, चौथे ही में होय।
पै पंचम में चाहियै[3], सो कैसैं नहिं होय[4] ॥१५॥

चारित्र ही शुद्ध पालवौ कठिन, ते किम तिहां लिखूं। समइय सामाइयं होई। काल नी विरुद्धता थी मुझ जेहवा संजमियों में प्रत्यक्ष समता परणामी पणौ मंद दीसै छै। नै परमेश्वरे कह्यु पामियै। ते निश्यै पामीजै। पा' परमेश्वरे पचमकालीन चारित्रियोने कलहकरा इत्यादि कह्या—वली "अप्पे समणा बहुमो मुण्डा।" तेथी कोई हुसी प्रत्यक्ष तो न दीसै। वलि इम पिण छै जे हस्यै ते मुख थी न कहस्यै नें जे एहवू कहै छट्ठे गुणठाणै प्रवर्तियै छै ते वृथा प्रलापी, निश्चयेन। जैन सम्बन्धा चारित्राचरण चौथे आरै रे काल सूं सम्बन्धित छै अन्य काल सूं नहीं। १ धर्म लूटल्यु २ आसमंतात् सेवन। भेला रहि देखीजै ३ वांछियै। ४ मनोबल वचनबल कायबल ना अभाव थी एनौ पिण अभाव। कोई कहिस्यै ए कालें पिण, केई तेहथी मिलती सी क्रिया दिखावै छै। तौ कै—ते क्रिया लोकां ने वचवी करणै वा

चौथे आरे की क्रिया, ढूंढै पंचम मांही।
सो कबहूँ पावै नहीं, ज्यूं खग पद नभ मांहि[1] ॥१६॥
लकड़ी ढूंढै आग में, मच्छी पद जल मांहि।
मकरी[2] पद ज्यों जाल में, तीनूं में इक नांहि[3] ॥१७॥
ढूंढै चारितियां घरे, सयम को खुर[4] खोज।
उवां[5] तो दीवै ही कीयां, अंधारै की मौज ॥१८॥
पंडित "नारण" सीख दी, आपा[6] पर समझाय।
सुगुणै सब ही जाणजो, आतम बोध[7] उपाय ॥१६॥

मतना प्रवर्तन उद्यातादि निमित्तै तेथी क्रिया ना कारक कारणै औधौ अस्त्र बणावी लड़ता जोया छै। उपरिय में औघा नो डांड देइ मारया ते पड्या जोया छै। इति सटक ॥

१ पंखी पग आकाश, पुनरपि। २ मकड़ी ३ ए ४ दृष्टान्तो नी परै जैन चारित्र नूं ए कालै अभाव। ४ खुर नाम चारित्र क्रिया नूं खोज प्रवर्त्तन एतलै कोई प्राणी इम चिन्तवै। आज पंचमकाल ना चारित्रियो मां ते चारित्रयो मां चारित्र नूं लेश ही छै तो कहै 'नहीं' किम? तेतो "जियकोहा जियमाणा" इत्यादि गुणे सहित।

५ उवां तो नाम अम जेहवा चारित्रि नी चारित्र प्रवर्तन नै ते अनुमौ रूप दीवौ कियां ही सकोड़ी इत्यादि अधारै री मौज छै।

आपणै आत्मा नै। ७ स्वरूप नो बोध ज्ञान तेहनै।

साधु धरम की सीख दै, करैं धर्म की पुष्ट।
यातौ सीख विचारियै (तौ) करै धर्म सौं भ्रष्ट[1] ॥२०॥

आपा गुन परगट करन, औ चारित आचार।
आतम शुद्ध विचारियैं, तासौं भिन्नाचार[2] ॥२१॥

आतम गुन परगास कूं, ओ चारित रवि रूप[3]।
जो शुद्धातम अनुभवी,[4] आतम शुद्ध सरूप[5] ॥२२॥

या चारित्र अनंत गुन, आतम समति अखेद[6]।
वरणीजै सिद्धान्त में, सतर भेद दश भेद ॥२३॥

---

१ साधु तो धर्म वृद्धिनी सीख दै, तौतें धर्म शब्दे चारित्र धर्म सूं भ्रष्ट होय री सीख क्यूं दीधी। तिहां लिखूं में आप चारित्र रा चरित्र देखनें साच लिख्यो छै। साच समान धर्म परमेश्वर न माख्यौ तेथी।

२ स्वरूप प्रापक चारित्र सूं भिन्नाचरणी छै।

३ ओ नाम चौथे आरै रो चारित्र आतमरूप प्रकाश नें रवि रूप सूर्य होज छै।

४ जो नाम जो चारित्र शुद्ध उज्वल आत्मा नौ अनुभवी चिन्तक छै—स्मृते भिन्न ज्ञानमनुभव।

५ ते चारित्र नथी मानूं। आतम नूं शुद्ध स्वरूप होज छै।

६ आत्मा रे चारित्र रूप गुण स्वरूपें प्रगटवापी अखेद।

ओ चारित जो पाईयै, सफल फलै तौ खेद[1] ।
उन चारित को खेद सौं, आतम करै अखेद[2] ॥२४॥

उग्र संयम विन प्रेम ज्यौं, बाह्य लिंग की पुष्ट ।
क्षायक भावे क्यौं हुवै, अंतर आतम दृष्ट ॥२५॥

अन्तर आतम दृष्ट सौं, क्षायक भाव विरुद्ध ।
सो पंचम कालै नहीं, आतम गुण अविरुद्ध[3] ॥२६॥

यथाख्यात चारित्र की, कैसे वरनी जाय ।
अनंतकाल या जीव[4] कूं, एक वेर ही थाय[5] ॥२७॥

सरवविरत प्रति रूप ज्यौं, देशविरति अनुरूप ।
गिही जई[6] पै ज्यो हुवै, सो चारित्र अनूप ॥२८॥

नाण दरस विण जीव कौं, पूरण फल की सिद्ध ।
या विन कबहूँ हु नहीं, सो सब शास्त्र प्रसिद्ध ॥२९॥

आयौ ताहि निभाइयै, नवै न करियै हौंस ।
इनमें कछु नफौ[7] नहीं, देव धरम की मौंस ॥३०॥

हम हूँ तौ अनजान में, लीनौ संयम भार ।
संयम कछू पल्यौ नहीं, आपा मार्यौं[8] मार ॥३१॥

---

१ तौ चारित्र सम्बन्धी जे प्रयास कीजै तौ।
२ कर्मरूप खेद भी ३ अविरोधी ४ जीव मात्र नें ५ परमावर्त्तन चरम करण भव परिणति परपाकी पणु' ए कारणाभावे ए चारित्र नज पाय। ए कारण जीव नें अनंतकालैं बीजी वार न मिलै ६ गृहस्थ यती ७ म्हारै चारित्र में नफौ नहीं ८ सहित करयौ

तातैं पंचमकाल में, म करौ चारित बात।
घर बैठे संयम[1] धरो, ज्यूं ही दिन ज्यों रात ॥३२॥
पंचेन्द्रिय कौ जीतवौ, मन राखणौं विशुद्ध।
सो जिनराजै उपदिश्यौ, संयम सदा सुशुद्ध[2] ॥३३॥
सो संयम जौलौं नहीं, तौलौं निष्फल खेद।
बाह्य[3] क्रिया तौ कष्ट है, यह जाणौं ध्रू वेद ॥३४॥
क्रोध मान माया तजै, लोभ मोह अरु मार[4]।
सोई सुर सुख अनुभवी, 'नारन' उतरै पार ॥३५॥
विन विवहारैं निरवई, निष्फल कह्यौ जिनेश।
सो तौ इन विवहार में,[5] वाकौ[6] नहीं लवलेश ॥३६॥

॥ इति श्री चारित्र छत्तीसी* सम्पूर्णम् ॥

---

१ इन्द्रिय दमन २ सुष्ठु शोभना शुद्ध सुशुद्ध ३ बाह्य कष्ट थी ऊँचूं चढवूं, तेतौ जड़नौ भाव। संयम श्रेणि शिखर पर चढ़वू, ते निज आत्म भाव १ योग क्रिया वलि तेह एहवूं १२ भावना में कह्यु छै तेथी बाह्य वृत्ति नो करणो आश्रव भणी छै तेथी 'आसवा ते परीसवा, परीसवा ते आसवा' सिद्धान्तोक्तत्वात् ४ काम ५ म्हारै चारित्राचरण रूप व्यवहार में ६ वाकौ शुद्ध चारित्रनौ।

* जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी मोतू चेनां नन्दलालजी री संवेगपा पासै चारित्र लेतीनै निवारी ते वरणै करी।

(जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी नन्दलालजी की स्त्री मोतू, चेना संवेगपा पासैं दिक्षा लेती कुं योग्य नहीं जाण के निवारण करी, उत्साह दूर करणे कुं तिणदुं समझावण नें ए चारित्र छत्तीसी करी।) (उप० सं०)

ओ चारित जो पाईयै, सफल फलै तौ खेद[1]।
उन चारित को खेद सौं, आतम करै अखेद[2] ॥२४॥
उश संयम विन भेस ज्यौं, बाह्य लिंग की पुष्ट।
क्षायक भावे ह्यौ हुवै, अंतर आतम दृष्ट ॥२५॥
अन्तर आतम दृष्ट सौं, क्षायक भाव विरुद्ध।
सो पंचम कालै नहीं, आतम गुण अविरुद्ध[3] ॥२६॥
यथाख्यात चारित्र की, कैसे वरनी जाय।
अनंतकाल या जीव[4] कूं, एक वेर ही थाय[5] ॥२७॥
सरवविरत प्रति रूप ज्यौं, देशविरति अनुरूप।
गिही लई[6] पै ज्यो हुवै, सो चारित्र अनूप ॥२८॥
नाण दरस पिण जीव कौं, पूरण फल की सिद्ध।
या विन कबहूँ ह्वै नहीं, सो सब शास्त्र प्रसिद्ध ॥२९॥
आयौ ताहि निभाइयै, नवै न करियै हौंस।
इनमें कछु नफौ[7] नहीं, देव धरम की मौंस ॥३०॥
हम हूँ तौ अनजान में, लीनौ संयम भार।
संयम कछू पल्यौ नहीं, आपा मार्यो[8] भार ॥३१॥

---

१ तौ चारित्र सम्बन्धी जे प्रयास कीजै तौ।
२ कर्मरूप खेद थी ३ अविरोधी ४ जीव मात्र नें ५ चरमावर्चन धरम करण भव परिणति पराकी पछूं ए कारणाभावै ए चारित्र नज थाय। ए कारण जीव नें अनंतकालैं बीजी वार न मिलै ६ गृहस्थ यती ७ म्हारै चारित्र में नफौ नहीं ८ सहित कर्यो

तातैं पंचमकाल में, म करौ चारित बात।
घर बैठे संयम[1] धरौं, ज्यूं ही दिन ज्यों रात ॥३२॥
पंचेन्द्रिय कौ जीतवौ, मन राखणौं विशुद्ध।
सो जिनराजै उपदिश्यौ, संयम सदा सुशुद्ध[2] ॥३३॥
सो संयम जौलौं नहीं, तौलौं निष्फल खेद।
बाह्य[3] क्रिया तौ कष्ट है, यह जाणौं ध्रू वेद ॥३४॥
क्रोध मान माया तजै, लोभ मोह अरु मार[4]।
सोई सुर सुख अनुभवी, 'नारन' उतरै पार ॥३५॥
विन विवहारैं निरवहै, निष्फल कह्यौ जिनेश।
सो तौ इन विवहार में,[5] वाकौ[6] नहीं लवलेश ॥३६॥

॥ इति श्री चारित्र छत्तीसी* सम्पूर्णम् ॥

---

१ इन्द्रिय दमन २ सुष्ठु शोभना शुद्ध सुशुद्ध ३ बाह्य कष्ट थी ऊँचूं चढ़वूं, तेती जइनी माव। संयम श्रेणि शिखर पर चढ़नूं, ते निज आत्म भाव १ योग क्रिया नलि सेह पुहनु १२ भावना में कह्यु छै तेथी बाह्य वृत्ति नी करणी आश्रव भणी छै तेथी 'आसवा ते परीसवा, परीसवा ते आसवा' सिद्धान्तोक्तत्वात् ४ काम ५ म्हारै चारित्राचरण रूप व्यवहार में ६ वाकौ शुद्ध चारित्रनौ।

* जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी मोतू चैनां नन्दलालजी री संवेगण पासै चारित लेतीनै निवारी ते करणै करी।

(जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी नन्दलालजी की स्त्री मोतू, चेना संवेगण पासै दिक्षा लेती कुं योग्य नहीं जाण के निवारण करी, उत्साह दूर करणे कुं तिणकुं समझावण नै ए चारित्र छत्तीसी करी।) (ज्य० मं०)

मतिप्रबोध छत्तीसी

(दोहा)

तप[1] तप तप (तप) क्यों करो, इक तप आतम ताप।
जिन तप संजमता भजी, कूरगडूजी आप ॥१॥
इक तप तैं इक ज्ञान तैं, कारज सिद्ध[2] न होय।
ज्ञानवंत करनी करै, तौ कारज सिद्ध होय ॥२॥
यथा सकति तप पड्वजै[3], सयम पालै शुद्ध।
क्यों इत[4] उत ढूंढ़त फिरै, घटमें प्रगट प्रसिद्ध ॥३॥
खंध* चढ़ायें तनय कुं, हेरत फिरी विदेश।
सुरत भई तब संभर्यो, पूत खंध परवेश[5] ॥४॥
खंध चढ़ायै फिरत हूँ, हेरत मत मत देश।
आतम खोजै आप में, शुद्ध रूप परवेश ॥५॥

---

१ ढुंढक सम्बन्धी कथन २ महा मुनिराज २ आत्मा स्वरूप रूप
३ अंगीकार करे ४ श्वेत रक्त पटियो प्रमुख में ५ प्रवेश।

* धन्यासरी—ढुंढत हारी रे, सुनियत याहूँ गाम। ढुं०
जिन ढुंढ्या तिन पाइयौ रे, गहिरे पानी पैठ।
हूँ मूंढी डूबत डरी. रहिय किनारे बैठ। ढुं० ॥

आतम खोजैं पाइयै, शुद्धातम को रूप।
तप तीरथ नहीं योगमें, आतम रूप अनूप ॥६॥
है तप तीरथ योग में, शुद्ध आतम कै रूप।
पैं जब है तब ममत विन, भावै आतम रूप ॥७॥
धरम नहीं मत ममतमें, ममत मांहि तप नांहि।
दया नहीं मत ममत में, धर्म न पूजा मांहि ॥८॥
धरम नहीं जिन पूजना, धम न दया मझार।
है दोनूं में ममत विन, जिन आगम अनुसार ॥९॥
है तप पूंजा पुनि दया, मांहि जिनेश्वर धर्म।
निमता विन शुद्ध वचन रस, को पांवै मत मर्म ॥१०॥
अपनी अपनी उक्ति की, युक्ति करैं सब कोय।
मैं बलिहारी संत की, जो शुद्ध भापक होय ॥११॥
विरला शुद्ध भापै वचन, विरला पालै शील।
निर्लोभी विरला जगत, विरला संत सुशील ॥१२॥

(सोरठा)

निर्लोभी विरलाह, निष्कपटी विरला निपट।
क्षमावन्त उच्छाह, बरजै सो विरला प्रगट ॥१३॥

क्या पंचम चौथे अरै, ए विरला ही जोय ।
शीतकाल में घन घटा, कोइक वरषै होय ॥१४॥
तैसे निरपेक्षक वचन, अपनी मति अनुसार ।
भाषै जिनमत तै विरुद्ध, तसु बहुलौ ससार ॥१५॥
सूत्रऽनुसार कहै वचन, सापेक्षक निरधार ।
ते सुधवासी संत जन, ज्ञानसार बलिहार ॥१६॥
भाषै उत्सूत्रक वचन, क्रिया दिखावै कूर ।
वाकौ तप संयम सरव, कयौं करायौ धूर ॥१७॥
हम सरिखे इह काल में, क्रिया दिखावै शुद्ध ।
पै वंचक करणी जिती, तेती सरव असिद्ध ॥१८॥
निरवंचक करणी करै, सो तौ संवर भाव ।
हम वंचक करणी करैं, सो आश्रव सद्भाव ॥१९॥
किरीया बड़के पान ज्यौं, भाखी त्रिभुवन सांम ।
स्वतारक वंचक विना, वंचक सो निकांम ॥२०॥
निरवंचक करनी करै, ज्ञान गुणै गम्भीर ।
बलिहारी उन संत की, सम दम सरल सधीर ॥२१॥

ज्ञान क्रिया दो सिद्ध कै, कारण कहै जिनंद।
एक एक तै सिद्धता, भापै तो मतिमंद ॥२२॥
क्रिया करै संयम धरै, निरविकार निममत्त।
भाखै सापेक्षक वचन, हुँ बलिहारी नित्त ॥२३॥
आतम अनुभौ के रसिक, ताकौ यह स्वरूप।
ममत छोर निममत कहै, जिनमत शुद्ध स्वरूप ॥२४॥
जे ममत फन्दे फंसै, ताकै बन्ध नवीन।
होंहि नहीं कैसे कहै, जे मत ममत प्रवीन ॥२५॥
मारे मत के ममत के, करै लराई घोर।
जे अपने मत में नहीं, कहै जिनागम चोर ॥२६॥
पै कठोरता कौ वचन, कासौं कहिनौ नाहिं।
विना ज्ञान शुद्ध असुध मति, कैसेहू न कहाहिं ॥२७॥
तू काहू सै कठिन अति, वचन कहित क्यों वीर।
विना ज्ञान को जान है, कैसो जिनमत * वीर ॥२८॥
केइ जीव दयामती, पूजमती केईक।
निर ममत्तता कौ वचन, कौन कहै तहतीक ॥२९॥
यातै कैसे पाइयै, जिनमत शुद्ध सरूप।
जिनमत विन कैसे लखैं, आतम रूप अनूप ॥३०॥

* यति जिन वीर।

पुरस जिकै परभात, दीठा ते दीसै नहीं।
विषम कालरी वात, न कही जावै नारणा ॥९॥

जणणी जाया जाय, जाया फिर जणणी हुवै।
मर पिय थायै माय, नातौ अनियत नारणा ॥१०॥

नहिं जोन नहिं जात, नहीं ठाम फिर कुल नहीं।
जोवन फरस्यौ जात, न मुंआ जाया[1] नारणा ॥११॥

जूपै दीवै जोत, सब घर में संध्या समैं।
उदयो अरक उदोत, न रहैं तम जग नारणा ॥१२॥

गुडै तवे गाडाह, धोरी जब जूपै धवल।
पलटै दे पाडाह, न चलैं इक पग नारणा ॥१३॥

मुड़ै न मोड्यौ मूल, मृगपति मारग मालतौ।
अजा रहे न अडूल, नर घुघकायो नारणा ॥१४॥

मुगता चुगै मराल, गंडसरा विष्टा भखै।
लिखिया अंक लिलाड, न मिटै मेट्यां नारणा ॥१५॥

वडपण तजे वडाह, जगमें नर क्यूं कर जीयें।
उभर्लै उदधि अथाह, नित परलौ[2] हुवै नारणा ॥१६॥

---

१ जनम्या २ प्रलय

अगनी देत उलाय, पांणी एक पलक में।
लागी वडवा लाय, न वुझै जल सूं नारणा ॥१७॥
वांनर तणो विनोद, कदे न कीधो कांम रौ।
प्रगटै नहीं प्रमोद, नीच लडावण नारणा ॥१८॥
ऊंडौ उदधि अथाह, थाग न पावैं तेरुआं।
राजवियां रौ राह, नर कुण जाणैं नारणा ॥१९॥
धन गाडै घर¹ मांहि, खरचैं नहीं खावण निमत्त।
ममत लीयै मर जाहि, न दिये कोडी नारणा ॥२०॥
दोय कला हुवै दोज, वलि दिन दिन वधती वधै।
सरवर हसैं सरोज, निसपति दीठैं नारणा ॥२१॥
पावक तजै न पांण, सो वरसा जल में सड़ै।
मूरख तजै न मान, नित अधिको ह्वै नारणा ॥२२॥
बाजीगर बाजार, दुनियां सगला देखता।
नर सूं करदै नार, निजर बंध कर नारणा ॥२३॥
सीयाले अति सीत, पालो घण ठंठर पड़ै।
पांख² करै धरि प्रीत, न भरैं दूभर नारणा ॥२४॥
जल में वैठ जहाज, पर दीपैं पेरैं पवन।
करै मरण रौ काज, न भरैं दूभर नारणा ॥२५॥

१ घर, २ पांख

आतम शुद्ध सरूप को, कारण जिनमत एक।
हम से भेंसे भेष धर, कीन्र कियौ इक मेक ॥३१॥

परभव डर सूं है निडर, मव सब दिनी डारि।
खयै सीस पट डार कै, निरभय खेलै नारि ॥३२॥

आतम .शुद्ध सरूप बिन, कैसे पावै सिद्ध।
किन बिन कारण कार्य की, पाई माई सिद्ध ॥३३॥

यातें मत धर संग तैं, धरम रूप ज्यो रत्न।
कैसे हू नहिं पाइयै, कोटि करौ को यत्न ॥३४॥

यातैं घर बैठे करो, आतम निंद्या आप।
सम दम खम की खप करौ, जपौ पंच पद जाप ॥३५॥

एहि जिनमत कौ रहिस, दया पुञ्ज निममत्व।
ममत सहित निफ्फल दऊ, यहैं जिनागम तत्त्व ॥३६॥

मतप्रबोध षट्त्रिंशिका, जिन आगम अनुसार।
"ज्ञानसार" भाषा मई, रची बुद्ध आधार ॥३७॥

॥ इति मतप्रबोध छत्तीसी समाप्ता ॥

संबोध अष्टोत्तरी

अरिहंत सिद्ध अनंत, आचारिज उवझाय वलि ।
साधु सकल समरंत, नित का मंगल नारणा ॥१॥
परमातम सूं प्रीति, कहौ किसी पर कीजियै ।
वीतराग भय वीत, निभै केण विध नारणा ॥२॥
सूतौ कांय सचेत, भयो प्रात भगवंत भज ।
चिडीया कीनो चेत, नहीं रैण अब नारणा ॥३॥
सूतां समर्यौ नांहि, जाग्यां धंधे सुं जग्यौ ।
मातो ममता मांहि, निरंजन भज्यौ न नारणा ॥४॥
आवै कदे न याद, मरणो मगलां ज्यूं मनैं ।
इल सूनौ आबाद, नहीं खबर तुझ नारणा ॥५॥
छाया मिसें छलेह,, काल पुरष केडै पडयौ ।
ज्वान वाल वृद्ध जेह, नितका निगलै नारणा ॥६॥
इल में कौन इलाज, नहीं कला ओषद नहीं ।
अड्यो काल अहिराज, न बचैं काया नारणा ॥७॥
छिन छिन छीजै आय, पांणी ज्युं पुसली तणौ ।
घडी घडी घट जाय नित की छीजण: नारणा ॥८॥

पुरस जिके परभात, दीठा ते दीसैं नहीं।
विषम कालरी वात, न कही जावैं नारणा ॥ ६ ॥
जणणी जाया जाय, जाया फिर जणणी हुवैं।
मर पिय थायै माय, नातौ अनियत नारणा ॥१०॥
नहिं जोन नहिं जात, नहीं ठाम फिर कुल नहीं।
जोवन फरस्यौ जात, न मुंआ जाया[1] नारणा ॥११॥
जूपै दीवै जोत, सव घर में संध्या समै।
उदयो अरक उदोत, न रहें तम जग नारणा ॥१२॥
गुड़ै तवे गाडाह, धोरी जव जूपै धवल।
पलटै दे पाडाह, न चलैं इक पग नारणा ॥१३॥
मुड़ै न मोड्यौ मूल, मृगपति मारग मालतौ।
अजा रहे न अद्दल, नर घुघकायो नारणा ॥१४॥
मुगता चुगै मराल, गंडसुरा विष्टा भखै।
लिखिया अंक लिलाड, न मिटै मेट्यां नारणा ॥१५॥
वढपण तजे वडाह, जगमें नर क्यूं कर जीयें।
उभलें उदधि अथाह, नित परलौ[2] हुवै नारणा ॥१६॥

---

१ जनम्या २ प्रलय

अगनी देत उलाय, पांखी एक पलक में।
लागी वडवा लाय, न बुझै जल सूं नारणा ॥१७॥
वांनर तणो विनोद, कदे न कीधो कांम रौ।
प्रगटै नहीं प्रमोद, नीच लडावण नारणा ॥१८॥
ऊंडौ उदधि अथाह, थाग न पावें तेरुआं।
राजविया रौ राह, नर कुण जाणें नारणा ॥१९॥
धन गाडै घर[1] मांहि, खर्चैं नहीं खावण निमत्त।
ममत लीयै मर जाहि, न दिये कोडी नारणा ॥२०॥
दोष कला हूवै दोज, वलि दिन दिन वधती वधै।
सरवर हसैं सरोज, निसपति दीठैं नारणा ॥२१॥
पावक तजै न पांण, सो वरसा जल में सडै।
मूरख तजै न मान, नित अधिको है नारणा ॥२२॥
वाजीगर वाजार, दुनियां सघला देखता।
नर सूं करदै नार, निजर बंध कर नारणा ॥२३॥
सीयालै अति सीत, पालो घण ठंठर पडै।
प्रांण[2] करै धरि प्रीत, न भरें दूभर नारणा ॥२४॥
जल में बैठ जहाज, पर दीपैं पेरैं पवन।
करै मरण रौ काज, न भरें दूभर नारणा ॥२५॥

१ घर २ पांण

अति दुर्गन्ध आहार, वरतै वलि मैला वसन।
मूत पियै मन मार, न भरे दुभर नारणा ॥२६॥
विण खेवटियैं वाय, चाल्यां नाव न चालवें।
कारण काज थाय, नीत जगत में नारणा ॥२७॥
करिवर केरी कान, तरल पूंछ तुरियां तणी।
पीपल केरौ पान, निचल्या रहै न नारणा ॥२८॥
मरै न मेलै मांन, बाबहियौ जलहर विणां।
पडौ रहौ वा प्रांण, न पियै धर जल नारणा ॥२९॥
सब संसार असार, सार नहीं जिण सोधतां।
भरियै दुख भंडार, नहीं सुख खिण नारणा ॥३०॥
कटारी रो काम, कद होवै किरपांण सूं।
नगपति हंदौ नाम, न रहे गेडा नारणा ॥३१॥
जण जण आगैं जाय, रात दिना रीरी करै।
कवडी मिलै न काय, निरभागी नै नारणा ॥३२॥
कीनौ होय कुकांम, सो भोगवतां सोहिलौ।
विण कीधे बदनांम, नित डर लागे नारणा ॥३३॥
हड़ हड़ जिहां हसंत, पुरस तियां बैठी प्रबल।
नागो होय निचंत, निरलज जाणै नारणा ॥३४॥
मारग में मिलियांह, बनता बतलावै मवि।
गूझीली गालयांह, निमष न मेलै नारणा ॥३५॥

मोला भैंस तणाह, भेडां सूं भाजै नहीं।
धन विण अरट घणाह, न भरै सरजल नारणा ॥३६॥
उद्यम विहूणी आथ, आफे घर आवै नहीं।
धोण धम्यां विन धात, न गले कदे न नारणा ॥३७॥
कांणी निपट कुरूप, कलहण कुटल कुलछणी।
इस्यौं पुरुप अनुरूप, नहीं पाप विन नारणा ॥३८॥
कीडा परै कपाल, नासा ईलड नीसरै।
कठै फिर कंठमाल, नहीं पाप विन नारणा ॥३९॥
ताता चढण तुरंग, भांत भांत भोजन भला।
सुधरा चीर सुरंग, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४०॥
आदर करै अपार, जन सगला जी जा करै।
अति सुन्दर आकार, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४१॥
अति ऊंचा आवास, चतुर चितेरे चीतरया।
धवल उजल आगास, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४२॥
निपट निरोगी काय, पान खान सब ही पचै।
अति लम्बी हुवै आय, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४३॥
पूत घणो परिवार, सानुकूल सुन्दर सहू।
निपट 'कह्यै' में नार, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४४॥

पोले ऊंचा बोल, नीची कद ताकै नहीं ।
रात दिना रंगरोल, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४५॥
घडिम तुलै घडियांह, गिणिया जावै नहीं गिणिम ।
जविहर घर जड़ियांह, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४६॥
लाखं ग्यानें लोक, कर जोडै आस्या करै ।
सदा सुखी नहीं सोक, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४७॥
आटो देवै अन्नं, घृत मीठो देवै घणा ।
कैइक इसा कृपण, नहिं दियै दाणौं नारणा ॥४८॥
सुख बूझवै सुजाण, अति दुख हूंत अयांण नै ।
पढियौ क्युंक पुरांण, नर समझै नहीं नारणा ॥४९॥
सिंह सदूला माथ, बाथां भर झूझै वलि ।
भोग करम भाराथ, न हुवै किण सुं नारणा ॥५०॥
माया मिलै न मूल, काया सौ कसणौं कर्यौ ।
अंक लिख्या अणडूल, निहचै जाणौ नारणा ॥५१॥
ऊगै सूरज एक, लाखै गांनै लोयणा ।
निरख्यो जाय निमेष, नहीं तेज सौ नारणा ॥५२॥
पहरीजै पर प्रीत, खाइजै अपनी खुशी ।
राखीजै ए रीत, नित का सुख व्है नारणा ॥५३॥

फरिवर कुंभ प्रहार, सींह जएया सिहरा करै ।
नग जनम्यां सुर नार, न धरे धर पग नारणा ॥५४॥
आरत न करौ एक, रातै भूखौ ना रहै ।
परमातैं भर पेट, नहीं दुक्ख अब नारणा ॥५५॥
अब फाटौ आकास, कहि कारी कैसी करां ।
प्रकट भिखारी पास, नरपति जाचैं नारणा ॥५६॥
इक नरपति इक नार, स्वास्थ रा दौनूं सगा ।
विण स्वारथैं विगार, न करैं संगति नारणा ॥५७॥
नरपति हंदौ नेह, स्वारथ विण श्रवणैं सुण्यौ ।
दीठौ किण घर देह, नहीं जगत कहि नारणा ॥५८॥
नरपति तणो निराठ, आसंगो आछो नहीं ।
विसमायारी वाट, न्यारौ पैंडौ नारणा ॥५६॥
नीचां तणौ निमेष, संगत न करै साधु जन ।
दीठौ नहिं तौ देखि, नाहर गाडर नारणा ॥६०॥
संपति विण संसार, मानै नहीं मणीस नै ।
परत न लाभै प्यार, निरधन सेती नारणा ॥६१॥
बगला ज्युं अणबोल, मौनी हुय मांयत रहै ।
मन में दया न मूल, निक्रमौ मगलौ नारणा ॥६२॥

निकमी पर घर नार, फिरत न लागै फूटरी ।
विसनैं लहै विगार, नीच संग सूं नारणा ॥६३॥
पर नारी सूं प्रीति, कीधी कदै न कामरी ।
और न इसी अनीति, नित डरतौ रहै नारणा ॥६४॥
भरियै पेट भंडार, सुनौं ही लागै सुरस ।
अण कीधे आहार, नहीं वसती जग नारणा ॥६५॥
मत बतलावे मूल, मूरख सूं मतलब विना ।
मरम न कहि मां मूल, निकमौ जाणै नारणा ॥६६॥
राजा रांमा रंग, वादल सु विणसै वर्णै ।
समझी करज्यौ संग, निज मन सेती नारणा ॥६७॥
आवै आथ अखेद, मुकती सकजां माणसां ।
निगुणा और नखेद, न मिलैं किम ही नारणा ॥६८॥
कुंजर तणैं कपाल, घण मोला मोती घणा ।
मुगताफल गलमाल, न मिलैं पहिरन नारणा ॥६९॥
चितारौ चित्रांम, कवियण घण कविता करै ।
ठीक नारकी ठांम, निहचै जामी नारणा ॥७०॥
दीधौ जाय न दांम, धम कारण धन मांगतां ।
नांवणियारै नांम, नहि नाकारौ नारणा ॥७१॥

नीचा नेह निवार, वैर न कीजै विविध विध।
ऊनौ दहै अंगार, नहीं श्याम रंग नारणा ॥७२॥
आरविंत अखेह *, तिन सूं दिल नहि तोड़ियैं।
दीजैं धीरज देह, नरपण कहिजै नारणा ॥७३॥
सुगणां तणो सनेह, नित नित नवलौ नीपजैं।
निगुण हंदौ नेह, निभै न कीनौ नारणा ॥७४॥
आथ तणौ अहंकार, कदै न कीनौ कांम रौ।
रावण रौ परिवार,† न रहयौ राख्यौ नारणा ॥७५॥
संपद तणौ सनेह, कीजै छै पिण कारमौं।
छेहडै देसो छेह, न चलें माथै नारणा ॥७६॥
आवै आपणैं गेह, देखंतां दोड़ी मिलै।
तत समपण रौ तेह, निकमौ दूजो नारणा ॥७७॥
सुन्दर रूप सुहात, मन मेलौ§ महिला मिलै।
कुलटा कुलज कुपात, निजर न मेलै नारणा ॥७८॥
आरतिवंत अयांण, सरखा दोनूं समझियैं।
पर दुख री पहचान, निपट न होवै नारणा ॥७९॥
संपद तणौ सनेह, विण संपद में विणमियैं।
निरधन हंदो नेह, न मिटै कदे न नारणा ॥८०॥

* अछेह † घरबार § मेलू

पंडित सु अणप्यार, मूरख सू मनिकरि मिलैं।
उलटो जस आचार, निमष न मिलैं* नारणा ॥८१॥
प्यार करैं अणप्यार, कपटैं मन मैलो किमन।
नित प्रति संग निवार, नीच जांण नैं नारणा ॥८२॥
हाथी हूंत हजार, लाख पाथ रिरि लौंडतैं।
लंपट और लबार, न करै संगति नारणा ॥८३॥
मरम न भाखैं मूल, परहरि निंदा पारकी।
सोवैं सायर सूल, न हुवैं दुख किम नारणा ॥८४॥
फटकैं थोथो फूस, उड़ी जाय आकास में।
सांच कहूँ करि सूंम, न मिलैं कण इक नारणा ॥८५॥
मोटा पेटां मांहि, राखें जो सोई रहै।
सरभी पेट समाय, नव मण नीरयो नारणा ॥८६॥
बैठे धर वे हाथ, ऊठतां आलस करैं।
भाजें देख भराथ, न रहै अधखिण नारणा ॥८७॥
वसियैं जिण रे वास, तिन सूं कदे न तोड़ियैं।
अणवणियैं आवास, नां रहि सकीजै नारणा ॥८८॥
हांसा मांहि हजार, कोइ क्युं कवचन† कहो।
विरचैं मन जिणवार, न सुणैं एको नारणा ॥८९॥
हाथ्यां हाजर होय, नव मण चांध्यौ नाज नित।
लिखियो पावैं लोय, न घटै रती न नारणा ॥९०॥

---

* मलिजै † कुवचन

अमल न कीजै एक, नफौ मूल जिण मैं नहीं।
छीजैं काया छेक, निजरा दीसैं नारणा ॥९१॥
सुवरण तणों सुमेर, अलगौ कीधौ ईसरैं।
हरता संपद हेर, न कियौ नेडौ नारणा ॥९२॥
काचौ काया कुंभ, फोड्यां बिण ही फूटसी।
आउ अंजली अंभ, मित पूरौ हुवै नारणा ॥९३॥
काया किणरे काज, मूआं सूं माणस तणी।
निरखो निपट निकाज, नरकी काया नारणा ॥९४॥
हियड़ां मांही हेत, झाख्या बिन न पडै झलक।
दिल दिखलाई देत, नयणां देख्यां नारणा ॥९५॥
कागां तणा कपाल, क्या मै ज्यां* हीं छूटवै।
वारण सिहअख्याल, निरख्यां थिरके नारणा ॥९६॥
नैनां हदो नेह, कीजै नहीं कुमाणसां।
सपुरस तणौ सनेह, नित को कीजै नारणा ॥९७॥
निगुणौ अपणौ नाह, सांमी दुख्य न सास हैं।
चाहै बिण रौ चाह, निकमां तोनूं नारणा ॥९८॥
अपजस हूआं आथ, होम्यां घर सीरथ हुवै।
सरग मूयां रे साथ, निहचै निकमा नारणा ॥९९॥
नीचां हंदो नेह, खारतणी खेती खड्यां।
बिण रित बरस्यौ मेह, निपट निकांमा नारणा ॥१००॥

* क्यामेत्यां

सबलां सूं संसार, दाब्यां विण आफे डरै।
पुण्य तणौ परकार, निभरम जांणौ नारणा ॥१॥
सबला तणो सनेह, निबला सूं सोहै नहीं।
जविहर लोह जड़ेह, निंदै कुण नहीं नारणा ॥२॥
लंपट चौर लबार, कूट्यां ही कारज करैं।
गूजर ढोल गंवार, नवि कूट्यां विन नारणा ॥३॥
वडौ अरोपै वंस, चटकै सैं नटनी चढै।
हद सबौ भयहंस, न मरै दूमर नारणा ॥४॥
आयां आऊंकार, जान कहै घर जावतां।
नित कौ संग निवार, निकमौ जांणैं नारणा ॥५॥
नीर न्याव इक रीति, मोहै ज्यूं त्यूं ही मुड़ै।
न गिणैं नीति अनीति, नरपति लूंटै नारणा ॥६॥
स्वारथ तणौ सनेह, विण स्वारथ में विणसियै।
नांचणिया रौ नेह, नांणैं बाधै नारणा ॥७॥
हृदयैं ऊपजी रीझ, अट्ठारै अट्ठावनैं।
जेठ सुकल तिथ बीज, निरमी खरतर नारणा ॥८॥

इति श्री संबोध अष्टोत्तरी कृतिरीयं ज्ञानसारस्य
संवत् १९४१ वर्षे मिती आषाढ़ सुदि ७ रवि
शुभ भवतु। लिपिकृतं ब्राह्मणगौड काशीनाथ
नैनसुख। नागपुर नीवासी लिखतं नगर
रतलाम मध्ये समाप्त क० ॥

प्रस्ताविक अष्टोत्तरी

आतमता परमातमता, लक्षणतायें एक ।
या तैं शुद्धातम नम्यैं, सिद्ध नमन सुविवेक ॥१॥
निष्पृह राजा रङ्क सौं, बात करत न दबात ।
नगन पुरस सौं पुरस सौं, लूंध्यौ कथ न सुनात ॥२॥
मन निसल्य आलोवतां, सब अपराध समात ।
ज्यौं कांटे की वेदना, निकसत ढुक न रहात ॥३॥
जो निसदिन खायैं पियैं, याकौं याकी चूंप ।
जैसें अपने देस की, लागत चाल अनूप ॥४॥
मरणा जल मरु देस सब, ऐंचत अपनी ओर ।
जैसैं टूटे पतंग की, लूंटत सब जन डोर ॥५॥
मोल लिपत दिरप्पा दिपत, संयम कहा पलात ।
ज्यौं संध्या के मृतक कौं, कोलौं रोवत रात ॥६॥
त्रिकरण करत सुसिद्धता, कहा जंत्र अरु मंत्र ।
विना वृषभ चाले नहीं, ज्यौं गाडी कौ जंत्र ॥७॥
प्रगट करत गुन गुनिन कौं, वमत दूर तर वास ।
अंगुरी तैं निरखावही, ज्यौं तारे आकास ॥८॥

साधु संग विन साधु जन, न करैं दुष्ट प्रसंग ।
मीन सरल जल कुटल गति, उछलत तरल तरङ्ग ॥९॥
पिंगल की कवितान में, डिंगल कौन अमेज ।
तारिन में कबहु न हुवै, चंद किरन सी तेज ॥१०॥
पहिली सोच विचार कै, कीजै कारज खेद ।
पी पांनी बूझै कहा, होत जात कै भेद ॥११॥
पाछैं पिछतावा कियैं, गरजन सरिहैं कोय ।
मूंआ फिर नहीं आवही, क्या सोचैं क्या रोय ॥१२॥
आयु डोर विन तनु गुडी, उडै न धर पर जात ।
जैसें टूटी डोर की, पतंग हाथ न रहात ॥१३॥
सला लियत कारज करत, सो कबहू न ठगात ।
सीसा गलतल नींव कौं, कब प्रासाद डिगात ॥१४॥
अनुकंपा दानैं दियत, कहा पात्र परखत ।
सम विसमी निरखै नहीं, जलधर धर वरषंत ॥१५॥
विना चाहै सब ही मिलैं, चाहै कछु न मिलंत ।
बालक मुख जोरावरी, माता माता देत ॥१६॥
जोलौं मुरदा ना जलैं, तौलौं मृतक विराग ।
ज्यौं सुपने की वेदना, तौ लौं न हुवत जाग ॥१७॥

माता करै आहार कौं, बालक पोष लहंत ।
ज्यौं खिचड़ी में ढोकली, बाफ हुतैं सीजंत ॥१८॥
अति सीतल मृदु वचन तैं, क्रोधानल बुझ जाय ।
ज्यूं ऊफणतै दूध कूं, पांनी देत समाय ॥१६॥
मत मन वृत गति अति चपल, निस्पृह तैं ठहिरात ।
ज्यौं सद ओषध जोग तैं, चंचल हू जमजात ॥२०॥
क्रोध वचन क्रोधी धुखै, सुनि सुनि शीतल होय।
ज्यौं मूं से घुलगार के, अगनैं जरत न कोय ॥२१॥
रोचक बुद्धैं सग्ल नर, एक सुनैं गुर बैन ।
सीप पुटैं मोती हुवै, स्वात बूंद तैं ऐन ॥२२॥
धन घर निरधन होत ही, को आदर न दियंत ।
ज्यौं सूकै सर को पथिक, पंखी तीर तजंत ॥२३॥
बधे करम जिन जीव नैं, उदयैं आवत ताहि ।
ज्यौं सौ गौ में वछरिया, चूंघत अपनी माय ॥२४॥
पीछे प्रथम न प्रकृति जिय, है अनादि कौ मेल ।
सदा सजोगैं मिल रही, फूल सुवास चंपेल ॥२५॥
आतम रूप उदोत तैं, मोह प्रकृति खय जात ।
ज्यौं अंधियारौ रैन कौ, दीपक विनन घटात ॥२६॥

गुर कुलवासैं वसत मुनि, चूकत ही टहिरात ।
देत धधूनीं पतंग कूं, गोत खात रहिजात ॥२७॥
ज्ञान क्रिया दो मिलत ही, सिध कारज सिधु हुँत ।
ज्यौं भरता संयोग तैं, सवि तय गरम धरंत ॥२८॥
अनुपूर्वी के जोग जिग, ऊंच नीच गति जात ।
जैसैं पवन प्रयोग तैं, चिहुँ दिस धजा फिरात ॥२९॥
वरजत हूँ केवार हूं, संग न कर परनार ।
तूं रावण दृष्टांत लखि, बूझत क्यों न गिवार ॥३०॥
चाहत सोई मिलत तब, या सम खुसी न और ।
मेहागम धुनि गरज सुनि, ज्यौं चित हरषत मोर ।३१॥
राव रंक कुं सम लखै,* तिल न हरप मन कुंद ।
ज्यौं चिकणे घट पर कछू, ठहिरत नहिं जल बुंद ॥३२॥
जैसी देखत कुटल तक, तैसें जीभ फिरात ।
दोर महारै हाथ कै, ज्यौं चकरी लुटजात ॥३३॥
अंगी जेते आंख विन, सहै अंग कौ भार ।
विन काजल फीके लगै, सोरै तिम सिंगार ॥३४॥
ह्वै सुनिजर तव चौ निजर, (तू?) नृपतैं अरज करांहि ।
पतरी चदरी तैं अरक, मुख सनमुख निरखांहि ॥३५॥

* विषै

पराधीन जाकै जऊ, झूठ कहै सो सांच ।
ज्यों बाजन की गति बजत, नचति ताल पर नाच ॥३६॥
सिसु जनमत माता मरत, फिर अधार न रहात ।
हींडा टूटै गगन तैं, नर धर पर पर लात ॥३७॥
राज सेव तैं राज की, सेवा रीत लखाय ।
शब्द साधना बिन सधै, सबद अरथ न कराय ॥३८॥
तीखी चितवन चितवनैं, राग बिरागी दीठ ।
तिय रागैं माता लखै, राग निजर कर पीठ ॥३६॥
काज अकाज म लोभ वस, गिनत न दुख संताप ।
ज्यों द्विज पइसा दांन तैं, मोल लियत पर पाप ॥४०॥
नव पल्लव वनराय सब, विन जलधर हो नांहि ।
सघन सदल बादल करै, ज्यों परबत की छांहि ॥४१॥
रोस पोस नरपति बदति, अनुचर जाय न होय ।
सूर उदै अति मद दुति, ज्यौं ससिधर दग जोय ॥४२॥
खल ते सौ उपगार कर, मांनत नहि इक सोय ।
बिसहर दूध पिलाइयै, सोइ बिपमय होय ॥४३॥
मन फाटै कूं मृदु वचन, कह्यौ कारन उपचार ।
टूक टूक कर जुड़न कूं, टांका देत सुनार ॥४४॥

जठरागनि दीपति हुवति, भूख लगत तिहवार ।
करत . जुड़ाई मां गहै, कैंडां किये करार ॥४५॥

रकम टूक कर लाभ लखि, टुक टुक मांदा लेत ।
रिजगारी दरजी करत, ज्यौं सीवन के वैंत ॥४६॥

कोन दीयत काकूं कछू, करत पुण्य की भेट ।
सरिता ज्यांनैं समद कौ, हम तैं भरिहै पेट ॥४७॥

जी अचेत चेतत नहीं, छिन छिन छीजत श्राव ।
इक रंग पल ठहिरै नहीं, ज्यौं लोहै का ताव ॥४८॥

तपधन चारित पडिवजै, आतम निरमल होय ।
ज्यौं मैले वसनैं करत, धोबी ऊजल धोय ॥४६॥

डाकी डाकण पुरस तिय, प्रगट निजर नहि दीठ ।
अति सुंदर सिसु वदन पर, दिखैं दिठौना दीठ ॥५०॥

लगै प्रथम सच वचन कटु, अंति गुणनि कै हेत ।
ज्यौं माली जावा दियै, तरु निरोग संकेत ॥५१॥

उदर भरन कारन सकल, गिनत न काज अकाज ।
चेजै पर तूटत परत, ज्यौं तीतर पर बाज ॥५२॥

लघु मुख मोटी बात तैं, नफौ न देख्यौ आंख ।
मरणुपकडै आवही, ज्यौं चींटी कै पांख ॥५३॥

रंक पुरुष रिझवार तें, कहा कटै दुख फंद।
ज्यौं सूकें सर पर पथिक, पावत नहि जल बुंद ॥५४॥
फाटा चीर सिवाइयें, रूठा लेहु मनाय।
गोतें खाते पतंग कौं, जिझकी दियें बचाय ॥५५॥
बात बात सब एक है, बतलावण में फेर।
एक पवन बादल मिलै, एकें देत बिखेर ॥५६॥
चीटी चोटी लरत तउ, दीजै मुकर छुड़ाय।
अगन कणीं कौं लघु कहा, सब* वन देत जलाय ॥५७॥
मन अन्तर की प्रीत कौं, नैंन दिखाई देत।
घनमाला की स्याम कौं, वनमाला ज्यौं हेत ॥५८॥
चड़ै पुरस दुरवचन सुन, सुलट पलट दै मेट।
भर्यौ कुंभ झलकै नहीं, आधा झलकै नेट ॥५९॥
दोही केते तरक की, बात करत धर झांख।
इत उत दोऊं दिस लुटत, ज्यौं कउएं की आंख ॥६०॥
मूरखता मन घन मिटत, ह्वै सदगुर संजोग।
चंचल चंचलता घटै, ज्यौं गद औषध जोग ॥६१॥
मुगध लोक हेरत फिरत, सोना रूपा सिद्ध।
लोभ दसा मनसा मिटत, नव निध ऋद्धि समृद्धि ॥६२॥

---

* धन

शब्द न्याय अलंकार अन, मवही करत अभ्यास ।
पै परमत्र की सिद्धता, न करत ताहि प्रयास ॥६३॥

झूठी माया जगत की, पकड़ी‡ माच समाज ।
कबहु न हुय फल सिद्धता, ज्यौं सुपनैं का राज ॥६४॥

वत्तु सुभाव कबहु न छुंदे, जीव भिन्न हो जांहि ।
ऊख सुभावै मिष्टता, ह्वै कटु रस कब नांहि ॥६५॥

तीछन रुचि करतेग विन, मोह दुरंडन होय ।
करिवर कुंभ प्रहार कौ, काज हरि तें होय ॥६६॥

रागी के मन ग्रांन तैं, रागी वस्तु अथाय ।
मृग मरतैं की वांण ज्युं, गाय गाय कछु गाद ॥६७॥

वर कवि कृत कविता बहुत, नई करन को हेत ।
मरन हौंहि तें जोजना, बुद्धि परीत्ता देत ॥६८॥

बड़ै पुरस के उदर मैं, वडी वात रहिजात ।
ज्यौं करिवर के पेट में, नौ मण नाज पचात ॥६६॥

मन प्रदेश जासौं मिलत, छुटे छिनरू न छुटात ।
ज्यौं कणकण पारद करत, चिपत चिपत चिपजात ॥७०॥

लज्या जीवन मूल भय, लज्या तनु शृंगार ।
राए मीम पट डार कै, निरभै खेलत नार ॥७१॥

‡ राच्यो

अनुभौ अमृत पांन तैं, मिथ्या ताप मिटाय ।
गद सद औषद जोग बस, तनु तैं तुरत घटाय ॥७२॥
मोल मिलत नहि मन चहत, भ्रज कर हित दिनरात ।
पर नारी दृग निरखियत, कौंन नफा हुय भ्रात ॥७३॥
बाल ज्वांन पुन वृद्ध वय, भिन्न अभिन्न अभाव ।
सीतकाल में सीत कौ, भूलत नांहि सुभाव ॥७४॥
हेतु सदस लांछन रहित, हेत्वाभास कहाय ।
क्रम रहित करता कहै, अजा कृपांणी न्याय ॥७५॥
केई कछु केई कछू, कहै आतमा राय ।
जिनमत बिन सब मत कथन, अंध गयंदै न्याय ॥७६॥
एक एक हू परसपर, अपनैं मतैं अघाय ।
छेदत थल इक एक कौ, सुंदु पंसुदैं न्याय ॥७७॥
एक कथन वांमैं कथन, इह लछन है न्याय ।
पुष्ट करत थापित थलैं, कदंब मुकल*के न्याय॥७८॥
सिद्ध संसारी भाव दो, है अन्योन्य अभाव ।
देहल दीपैं ज्ञान दृग, भासै शुद्ध सुभाव ॥७९॥
माली और कडाह की, तरकारी निसपत्ति ।
संयम नांमै सजती, इह निसपत्ति विपत्ति ॥८०॥

---

* इस न्याय का जिक्र आनन्दघन चौबीसी बालावबोध में भी किया है ।

मन चाहत सो मिलत नहीं, त्रिमना तउ न बुझाय।
जो चाहत सोई मिलत, तब कब घटत बलाय ॥८१॥

आद मध्य अरु अंत वय, विसम न सम सब जात।
खांन पांन निरोग तनु, पुण्य लछन कहिलात ॥८२॥

खात न खरचत विलासयत, दांन दियन को बात।
दुरजय लोभ अचिंत गति, सचित धन मर जात ॥८३॥

एरंड बीज रु धूमगति, सहिजैं ऊंची हुंत।
करम रहित तैं सिद्ध की, ऊरध गति लोकांत ॥८४॥

नव अंग टीका अर्थ कूं, चहियत तर्क प्रसंग।
विनां खटाइ नां चढै, ज्यौं कसूंम कौ रंग ॥८५॥

विद्या सब के पढन कौ, धोची पूहै भार।
सांण चढै विन नां चलै, ज्यौं धारा तरवार ॥८६॥

पंडित मूरख बात कूं, बरन खरच इक लेख।
विना समारै नां हुवै, नैनां काजल रेख ॥८७॥

कलम करत तरु बेर कुं, तब निरोग फल होय।
खुरवातैं विन गदह की, ज्यौं मस्ती नहि होय ॥८८॥

दिखत चंद मुख की झलक, घूंघट झीनैं चीर।
ओट लियत बतलावही, तिय निणदी कौ वीर ॥८९॥

उष्णकाल में प्रात कौ, सीत समीर लखंत।
वही मध्य दिन संग तैं, अगन रूप फरसंत ॥९०॥
दुष्ट संग विन दुष्टता, कैसे हूँ न लखाय।
प्रगट देखवैकी गरल, कांजी दूध मिलाय ॥९१॥
सुरि जन फल कूं काटियै, तौ जड़तैं जल जाय।
जौ फल तैं फल विलसियै, तब तरु हरित लखाय ॥९२॥
सुकृत या भव में करत, भव भव फल दिखलात।
ज्यौं नलेर के पेड़ में, सींचत जल फल जात ॥९३॥
पुण्यवन्त नर की प्रकृत, ऊंची तक मृदु होय।
ऊंडै सर दरगंध घर, घनधारा सम जोय ॥९४॥
है ससार अनादि सिद्ध, करता कृत कहि कोय।
विन वसन्त वनराय सब, क्यौं पल्लव नहि होय ॥९५॥
देखै सोभा जैन की, धिज मन होत ससोक।
वरषा ऋतु तरु हरित लखि, जात जवासा सूक ॥९६॥
चंचल मन थिर करन कौं, निष्पृहता उपचार।
दूजौ मवथित पाक कौ, तोजौ नहि संसार ॥९७॥
जिनराज विन जैन मत, फीकौ लगत अपार।
भरता विन सोभै नहीं, ज्यौं तिय तनु सिंगार ॥९८॥

आतम अनुभौ होत ही, छूटत रंग जड संग।
ज्यों अमृत के पांन तैं, अजर होत सब अङ्ग ॥९९॥

समुद्घात केवलि करै, समक्रम आयु वसेष।
जिती चंद्र पख चांदनी, त्यौं तमपख तम लेख ॥१००॥

अप असवारी मुदित भट, नमुदित गदह चढांहि।
घर तरवर की छांहिलौं, दोनूं दिस लुट जांहि ॥१०१॥

गरभ वेदना निकसतैं, विसरत जगत तमांम।
रति समयैं पर प्रसव दुख, भूल जात ज्युं वांम ॥१०२॥

वृद्ध पुरुष हित सीख दै, सो नहि मांनत ज्वान।
कटुक लगै जुर मैं कुटक,* ज्युं गुण करत निदांन ॥१०३॥

स्वारथ के सब जगत वस, स्वारथ विन नहि हेत।
प्रसवत पय पसुजात गौ, जात मरें महि लेत ॥१०४॥

तनु दीपक हित आयुथित, वाती निसदिन मेल।
वपु दीपक उजियार मैं, तेल जहां लौं खेल ॥१०५॥

ब्रह्मा-विष्णु महेश कहि, पैदा पोषक नास।
उन विन अज हूँ हो रहे, इह विरोध आभास ॥१०६॥

हुकम विना पत्ता हिलै; पत्तैं क्या मकदूर।
क्यौं साहिब नहि कर सकै, इह पख जग मंजूर ॥१०७॥

---

* कटुक गिलोय।

जिन मूरति मन थापलै, क्या पूजा क्या भेट ।
याद कियें अन सवन कौ, क्यौं नहि भरिहैं पेट ॥१०८॥
आदि पुरुष हम राम कौ, जो चरणामृत लेय ।
सैं देही वैकुण्ठ बसे, क्यौं तुम धारी देह ॥१०९॥
जोग रोध तैं करत जिय, प्रकृत पुरुष निरभ्रंम ।
धातु भिन्न सबही करत, ज्यौं नाहरै की मूंस ॥११०॥
सत्ता प्रवचनमाय दुग, स्यौं आकास (१८८०) समाम ।
संवत आसू मास पुग, विक्रम दस चौमाम ॥१११॥
इक सय नव दोहे सुगम, प्रस्ताविक नवीन ।
खरतर भट्टारक गछैं, ज्ञानसार मुनि कीन ॥११२॥

इति प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सम्पूर्णम्

— — —

आत्मनिंदा

हे आतमा ! हे चेतन ! ऐ कुदृष्टी, ए कुश्रद्धायां, ए अकार्य प्रवृति, ए रसगृद्धीपणों, ऐ खोटी खोटी दृष्टी ! सामायक दोय घड़ी मात्र में तूं मत चिंतवन कर।

क्यारे तूं सम्यक्त्वमोहनी में, क्यारे तूं मिश्र मोहनी में, क्यारे तू मिथ्यात्व मोहनी में, क्यारे तूं कामराग में, क्यारे तूं स्नेहराग में, क्यारे तूं दृष्टिराग में, क्यारे तूं कुगुरु में, क्यारे तूं कुदेव में, क्यारे तूं कुधर्म में, क्यारे तूं ज्ञानविराधना में, क्यारे तूं दर्शन विराधना में, क्यारे तूं चारित्र विराधना में, क्यारे तूं मनोदण्ड में, क्यारे तूं वचन दण्ड में, क्यारे तूं काय दण्ड में, क्यारे तू हास्य में, क्यारे तू रति में, क्यारे तूं अरति में क्यारे तूं भय में, क्यारे तूं शोक में, क्यारे तूं दुगछा में, क्यारे तूं कृष्णलेश्या में, क्यारे तूं नीललेश्या में, क्यारे तूं कापोत लेश्या में, क्यारे तूं ऋद्धिगारव में, क्यारे तूं रस गारव में, क्यारे तूं शातागारव में, क्यारे तूं माया शल्य में, क्यारे तूं नियाण शल्य में, क्यारे तूं मिथ्यादर्शनशल्य में, क्यारे थारे तेरै काठीया दोला भ्राथ फिरै छै। क्यारे तारै अठारै पापस्थान दोला भ्रांथ फिरै छै।

रे तूं आतमा ! महादुष्टी, महा दुराचारी, अरे तुं हीण तिष रा जाया, रे तूं हीण पुणिया, रे तूं हीणदृष्टि, रे तूं अघोर पाप रा करणहार, रे तूं दुष्ट पापीष्टी जीव, प्रायें तो थारै अनंतानुबंधियो क्रोध, अनंतानुबंधीयो मान, माया, लोभ री

चोकड़ी बापड़ा थारैं तपी नहीं, गुणठाणो थारैं पालस्यो नहीं, धीर्य गुण आयो नहीं, तृष्णा दाह थारैं मिटी नहीं, आकुल व्याकुलता थारै मिटी नहीं, दरियाव वाला किल्लोल उछलै गुं थारैं तृष्णा रा किल्लोल उछल रह्या छै, तुं तो किया करैं छै सो मुग्ध मनछुं करै छै। धीर्य गुण छुं करीन सो लेखैं लागसी, शून्य पणैं करी जो किया करी सो तो छार पर लींपणैं सरीखो छै।

ए चेतन बापड़ा सौंस न लै ते पापी, लैनैं भांजै ते महापापी,। ते अणतकाय अभख, शीलव्रत, जरदो, डांठली, अमल, भांग, तमाखू रा सौंस लेले भांजिया; बापडा थारो कठे छूटणो हुसी।

हे चेतन तूं पुदगल रैं वास्तै किती एक आकुल व्याकुलताइ कर रह्यो छै, ओहो माहरै पारस पत्थर, म्हारै नव निधान, म्हारै रसकूंपो, म्हारै रसायण, चित्रावेल, म्हारै अमृत गुटकी, वा देवत नै वस करूं, वा पतस्याह होजाउ; वा राजा हुजाउ, वा सेठ हुजाउ, वा सेनापति हुजाउं, जिम तिम कर पुदगल उपार्जन करूं, रे बापडा! थारे तो ए बातां उपजेंही उपजैं। दशमें गुणठाणै वाला नैं ही लोम नौ परिहार नहीं, तौ रे बापडा थारो तौ गरज कठे हुं सरै। हे चेतन तुं युं मन में चिंतव रह्यो छै, म्हारो घर, म्हारो पिता, म्हारी माता, म्हारो पुत्र, म्हारो वसन, म्हारो पुदगल। अरे चेतन चोरासी फिरतैं लाख घर करतो फिरयो, संसार में न किण रो तूं छै न कोई थारो, रे चेतन! थारी तो तूं उत्पत्ति देख, केई वार मां पिता पणैं, केई वार पुत्र पणैं, केइ वार पुत्री पणैं, कइ वार स्त्री पणैं, ऐ थारा नाच तौ देख। ठगरी बेटी कह्यो थो हे माताजी! हे पिताजी! हूँ इतरा

पाप करू हुं सो कुण भोगवसी ? वेटी ! करसी सो भोगवसी, तूं के धिकार पड़ो इण संसार नें। संसार में कोई किण रा नहीं।

श्री मानुखो जन्म, आर्यदेस आर्यकुल, श्रावक री कोलियों, प्रभुजी री धर्म, ते पुन्यानुबंधी पुन्य सूं पायो, पायकर बापड़ा तैं ब्राह्मण कामला नें बापर खोयो, तिम तैं चिंतामण रत्न रूप धर्म खोयो, थारां आसा री गरज क्युंकर सरै, रे चेतन ! तूं करै 'हूं' रे तूं कुण' विष्टा माहिली लट तूं होज हुवै, मान रूपीयै गज बाहूबल चढ्यो, अर संजमपो मान पो माझी सुंदरी बाई मिटीत समझ वण वाला जद समझ्या, बापड़ा जिण रै श्री मान सो थारा कहिनें किसी हवालो हुसी।

ए चेतन ! देख तूं, भरथ महाराज जिणां रै किसी एक राजरिद्ध सौभाग थो, तो, कै धिकार हुवो माहरै राजनैं, धिकार हुवो माहरै पाट नैं, धिकार चक्रवर्त्त पदवी नें, धिकार हुवो माहरै विषय सुखां नैं। धन छै, जे तीर्थंकर महाराज रो देश व्रत धर्म जे पाले छै। धन जे दान दे छै, धन छै जे शीयल पालै छै, धन जे सावव्रत धर्म पालै छै, धन जे तपस्या तपै छै, धन जे भावना भावै छै, तो के भावना भावतां भरथादि केवलज्ञान केवलदर्शन पाम्या, तो के तुं आ बरावरी रे जीव मन करै, ठवे तो तेसठ सिलाका रा पुरस, चरमसरीरी, चोथा आरै रा जीव, तूं पंचम कालरो भरथक्षेत्ररो कोडलो, किसी एक बात ए चेतन ! कर्म अजीव वस्तु, रे चेतन तू जीव वस्तु, रे चेतन ! जीव सूं जीवतो सदा परचो करै पिण अजीव सुं चयुं करै, पिण तूं निबल कर्म महा सबल। रे चेतन ! कर्म तो चवदे पूर्व धारीयोनैं उठाय पटक्या, इग्यारहमें

गुणठाणे रा जीव मुरूनमानकेवलीजी, कमलप्रभाचार्यजी, महाविदेहरा मानविर्यने दिखाय दीया। तू पचमकाल रो जीव किमो एक बात।

" आठ करम अट्ठावन सौ (प्रकृति), प्रभु किम कर जीत्यो जाय।
मोह करम लारै लग्यो, किम कर जात्यो जाय।
सम लगै प्रभु थाप, हमारी विनती "

हे चेतन ! चारित्र री फौजामें रहि सन्तोष मुंहत री आज्ञा में रहि सदा आगम सुं परचै राख, संतोष गुण ग्रहण कर। तृष्णा रूपणी दाहनै पूठो मार, ज्यु थारी आत्मारी गाज सरै। धन छै साधु मुनराज, पांचे सुमते सुमता, तीने गुप्ते गुप्ता, छकाय ना पीहर, सात महा भय ना टालणहार, आठ मद ना जीपक, नवविध ब्रह्मचर्यव्रत नी वाड ना राखणहार, दस विधि यतीधर्म ना उजवालक, इग्यार अंगना भणणहार बारे उपांगना भणणहार, कुवस्त्रो संबल मलमलिनगात, चरित्रपात्र धन्य छै जे मुनि प्रभुजी नी आज्ञा प्रमाणे धर्मपाले, रे चेतन ! तनैई कदै उदै आवसी। रे चेतन ! थारै उदै कठा सुं आवै, रे बापडा ! थारै ससारो बहुलताई तिवारै तनै कठा सु उदै आवै ? धन छै जिके देस विरती श्रावक, जिके प्रभुजी आज्ञा प्रमाणे धर्म पालै, प्रभात उठ सामायक करै पडिक्कमणो करै, देवदर्शन करै, प्रभुजी नी द्वादशांग नी वाणी सुणै, देवपूजन, देववंदन, गुरुवंदन, दान, तपश्या, शील, पव्व तिथे पोतो, सज्याये देवसी पडिक्कमणो धन्य छै देसविरती श्रावक, प्रभुजीनी आज्ञा प्रमाणे जे षडावश्यक करै, मनैई कदै उदै आवसी।

रे चैतन ! तुं इसया खोटा कांम करै थारा बुरा हवाल हुसी, थारा खोटा परियाम देखतां तो थारै खोटी मत उदै आवसी।

सामायक मन शुद्धे करो निंदाविकथा पद परिहरी थारी तो समायक या छै—सामायक मन अशुद्धे करो, निंदा विकथा बहुली करो। पदो गुणो वाचण सप करो, जिम भवसागर लीला तरो । तनैं वाचण पदण री खप कठ छै, तैं तो श्रुत ज्ञान नो बहुमान न कीयो, श्रुतज्ञानजी रो गुणणो न कीयो, तरै थारै ज्ञानावरणी रो अंधकार पड़ल फिर गयो। श्रुतज्ञानजी रो आराधन करै छै, श्रुतज्ञानजी रो बहुमान करै छै, ज्यारा ज्ञान दर्शन चरित्र निर्मल हुवै छै। जिकांई रे ज्ञान री प्राप्त हुवै। जिकांई रे ज्ञान केवलदर्शन री प्राप्ति हुवै- जिकांई ज मुक्त रूपणी स्त्री पाणिग्रहण हुवै ।

"दिवस प्रतैं दियै सुजाण, कोयनीना खडी लख प्रमाण ।
तेहने पुन्न न हुवै जेतलो, सामायक कीधां तेतलो"

पिण चेतन! तुं इण भरोसे भुले मां। आ थारी समायक उवा नहीं मांई। आ सामायक तो उत्तम जीवां री मांई । आ सामायक आणंद, कामदेव, संख, पुष्कल री, पुरणदास सेठ, चद्रावतंसक राजारी। तुं इये भरोसे भुले मां। रे चेतन! थांरी तो सामायक आ छै—काम काज घर ना चितवै, निंदा विकथा कर खोज रहैं। आरत रुद्र ध्यान मन धरै, ते सामायक निष्फल करें। थारी तो समायक आछे मांई।

आप परायो सरसो गिणैं, कंचन पत्थर समवड धरैं ।
साचो थोडो गमतो भणैं, ते सामायक सूधैं करैं ॥
चंद्रावतंसक राजा जेह, सामायक व्रत पाल्यो तेह ।

रे चेतन! स्व आत्मा नो भलो चाहै, पर आत्मा नो बुरो चाह

सो तैं पर आत्मा नो बुरो न चाह्यो त्व आत्म रो बुरो हीज चाह्यो। रे चेतन! तुं कंचन री तो वांछा राखै, पथर नै दूर करै, ज्यारै छाती उपर पथर पडसी, कदेई कंचन री प्राप्त हुवै नहीं। रे चेतन, तुं तो मृषावाद ही बोल रह्यो छै।

रे चेतन! तुं थारा गुण संभारै तो अवेदी छै, अफरसी छै। अघाती छै, अलेमी छै, अविनासी छै, जे तूं थारो गुण संभारै तो छै भाई। ओहो! ओहो! ऐ मारा दुसमण, ऐ मारा सज्जन। हे चेतन! कुण थारो दुसमण, कुण थारो सज्जन. हे चेतन! थारै तो आठ कर्म रूपीया सत्रू, वैरी छै। ज्यानै तूं ज्ञान रूपीयै इंधण सुं बाल भसमकर दे, ज्युं परी आत्मा री गरज सरै। ओहो! हूं भव्य छुं-कै अभव्य छुं। कै दुरभव्य छुं। कै कोई माहरै पोतै संसार घणो हीज दीसै छे। प्रायैतो हूं भाई अभव्य दीसुं छुं, पछै तो ज्ञानीयां भाव दीठो सो खरो।

रे चेतन! तुं सामायक तो आ करै छ—

सुणै छै खाज मोडै छै कडवा। उंघ तथा लेवै सरडका।

तैंरी सामायक तो माया ज्ञानी सकामी तो लेखै लागसी।

दोहाः—आतमनिंदा आपनी, ज्ञानसार मुनि कीन।
जे आतम निंदा करै, सो नर सुगुन प्रवीन ॥१॥

इति श्री आत्मनिंदा सपूर्णम् ॥ संवत् १८७० वर्ष। शुभंभवतुः
सवत् १८८४ वर्षे चैत्र मासे कृष्ण पक्षे
लिखतुं। बीकानेर मध्ये। श्री रस्तु। श्री कल्याणमस्तुः॥

श्रीमद्ज्ञानसारजी कृत

॥ गूढ़ (निहाल) बावनी ॥

(निहालचन्द प० वीरचन्द रे चेले सुं पं० नारण रो कथन),

॥ दोहा ॥

चांच आंख पर पाउं खग, ठाढो अम्बरनि डाल ।
हिलत चलत नहि नभ उडत, कारण कौन निहाल ॥१॥
हाथ पॉव नहि पीठ मुख, भरत मृगन सी फाल ।
पीठ लगे बिन ना* चले, कारण कौन निहाल ॥२॥
धूम शिखा नहि काठहिं, जरत(:) अग्नि की झाल ।
पानी सिंचत ना बुझत, कारण कौन निहाल ॥३॥
हिलत हिंडोरा वेग तें, पहुतो तरु की डाल ।
इतउत चलत न आगुरी, कारण कौन निहाल ॥४॥
वही सरोवर जल भर्यो, वहो पथिक खग बाल ।
पानी बुंदिक नहिं मिलत, कारण कौन निहाल ॥५॥
घटा बीज जलधार लखि, दौरत★ पपियन बालX ।
घर मुख बूंद न परत इक, कारण कौन निहाल ॥६॥

---

* नहीं चलत ( ) भराते ★ धोरत X बाल ।

१ चित्रित है । २ दडो है । ३ बड़वानल है । ४ चित्रित है ।
५ पालो जमियो है । ६ चित्रित है ।

आज काल पिय आवही, सुनि बिलखी भई बाल ।
मात पिता हरषित भए, कारण कौन निहाल ॥१४॥
मात पिता सुत जनम तैं, हरषित होत कंगाल ।
सुत निरखत बिलखित भए, कारण कौन निहाल ॥१५॥
तिय सुन्दर सुकमाल गल, पीक दिखत रंग लाल ।
हाड़ मांस लोही न नस, कारण कौन निहाल ॥१६॥
हाथ पीठ पर पांव बिन, चलत वेग गति चाल ।
गेरत तरुवर घर गढनि, कारण कौन निहाल ॥१७॥
कहित हजारों कोश के, समाचार तिहाकाल ।
वदन रदन रसना रहित, कारण कौन निहाल ॥१८॥
चांच पेट पर पाँव बिन, ऊड़त ज्यों खग बाल ।
बिना सहारे नहिं उड़त, कारण कौन निहाल ॥१९॥
तीखी चितवन दृग झलक, ललित दिखाई लाल ।
लली रूस के उठ चली, कारण कौन निहाल ॥२०॥

---

१४ स्त्री रे प्रथम दिवस ऋतु रो ह्वै । १५ पुत्र खोटी । १६ पतंग रै पाणी सुं भरी काच री फाग री सीसी नाम होली समयें हुवे उण रै मूं टै अंगुली दे कै लड़का उलट सुलट सीसी नै करता सीसी रे गलै में लाल रंग पाणी दीसै सो पीक । १७ प्रलय (पाठान्तर प्रबल) पवन । १८ कागद । १९ गुड्डी । २० पुनः प्रार्थिता नायिकारो रूसनो ।

ससि वदनी मसि पूर्ण लखि, मेट दिठौना माल ।
हरख नचत दृग पूतरी, कारण कौन निहाल ॥२१॥
गौ बछरी चुंखावही, इह सुभाव सब काल ।
मात सुता न चुंखावही, कारण कौन निहाल ॥२२॥
दावानल घन वन जलै, घर* तरुवर पताडाल ।
ततखिण तृण इक ना जलत, कारण कौन निहाल ॥२३॥
फूल पान जड़ पेड़ बिन, सूकी तरु की डाल ।
फल चाखे सों को जिये, कारण कौन निहाल ॥२४॥
शीश पेट कर पांव बिन, त्रिजग सुणति÷ तिह काल ।
अन प्रेरै कबहु न चले, कारण कौन निहाल ॥२५॥
बूंद न जल मोंघा बिकत, पईसे बिकत पखाल ।
यह अचरज सब जगत गति, कारण कौन निहाल ॥२६॥

*घन ÷तिगति ।

२१ शशि स्यामता सुं सकलंक म्हारो वदन चंद निकलंक तासु हर्ष । २२ गाय सगर्भा सुं दूध सुं टल गई । २३ सघन वर्षा बरसने सुं । २४ बरछी रो फल । २५ तोप रो गोलो । २६ हीरा घणो पाणी देख मुंघे मोल ले, पाणी बूंद हो नहीं ।

प्रगट रकम घट वढ़ दिखत, जमां घटत नही याल ।
मास मिती सम विसम नहीं, कारण कौन निहाल ॥२७॥
ट्रंक किते इक नग लखै, गिड़े सघन अविसाल ।
नर नारी ठाढ़े चखत, कारण कौन निहाल ॥२८॥
गाज बीज बिन धार जल, ताल भरत तिह ताल ।
घट चढ़ बूंद न होत इक,* कारण कौन निहाल ॥२९॥
शीश पाँऊ कर पेट बिन, वेग चलति अति चाल ।
हठ कर गेरति ना+ लगति, कारण कौन निहाल ॥३०॥
चरण बीस कर पेट बिन, सिखा कान सिर भाल ।
अंगुरी एक चले नहीं, कारण कौन निहाल ॥३१॥
अठ कर इक लकरी पकर, हिलत चलत नहीं चाल ।
बोझ उठावत बहुत मन, कारण कौन निहाल ॥३२॥
पर न शीश पाँव न उदर, चलत चलाये चाल ।
तृपत होत मानिस÷ रुधिर, कारण कौन निहाल ॥३३॥

---

*घन सघन +नग ÷मानस ।

२७ श्वेत कृष्ण पक्ष चन्द्रकला । २८ मिश्री रो कूंजो । २९ ढ़ाल धोवनी बावणी रो पाणी कूंड में भरै छै । ३० प्रलय पवन । ३१ छनी बीसधर्मी । ३२ ताकड़ी । ३३ तलवार की धार ।

दिन दिनकर दीसत नहीं, त्यों निशाकर मिसी काल ।
दम दिम तारे झिगमिगत, कारण कौन निहाल ॥३४॥
ताल भरयो जल देख कैं, दौरे नर पशु बाल ।
पानी बूंदिक ना मिलत, कारण कौन निहाल ॥३५॥
बिन पांखे उड जात नभ, उतर जात पाताल ।
देत महारा तब चलत, कारण कौन निहाल ॥३६॥
आठ पाँव सुर पशु नहीं, पुरुष चलावे चाल ।
हाड़ होंहि नहीं माँस नस, कारण कौन निहाल ॥३७॥
तिय पिय के संयोग बिन, गर्भ धरयो अति बाल ।
भयो पुत्र पट् मास में, कारण कौन निहाल ॥३८॥
कठिन होंहि इक भीजतें, जल बिन* निरम निहाल ।
अति अचरज देखत हुअत, कारण कौन निहाल ॥३९॥
परब दिवस सब तिय मिली, गावत गीत रसाल ।
इक तिय चख आंसू झरत, कारण कौन निहाल ॥४०॥

* घण जल ।

३४ सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण । ३५ मृग तृष्णा । ३७ चकरी । ३७ गिड-गिड़ी ३८ शीप संबंधित मोती । ३९ लोहे रो खाण (पाठान्तर-माण) ४० प्रोषित भर्तृकाने भर्तारने स्मर्या अश्रुपात ।

जटा बीच गंगा चलत, सिंह बिछायें खाल ।
लखण शङ्कर शिव नहीं, कारण कौन निहाल ॥४१॥
चार हाथ तें मुख पकर, पानी पियत पताल ।
उलट बात उलटी करत, कारण कौन निहाल ॥४२॥
कार्तिकेय नहिं षट् वदन, च्यार तुंडतें चाल ।
खांन पांन इक इक* मुखै, कारण कौन निहाल ॥४३॥
सोल पांव छूं ना चलत, चलत चलाये चाल ।
अंगुरी एक खिसै नहीं, कारण कौन निहाल ॥४४॥
पग+ बिन उडै अकाश में, गिरत न लागे ताल ।
विद्याधर वर सुर नहीं, कारण कौन निहाल ॥४५॥
साज बजत संगीत तें, ताल चमक चौताल ।
निपुण नटी पग चुक धरत, कारण कौन निहाल ॥४६॥

---

*पांचूं +पर ।

४१ बाघंबर उपर बैठो गुर जटा धोवै शिष्य ऊभो तूंबां सुं जटा में पाणी नाखै । ४२ चडस (कोस) कोई देश कहै कोस उपरै च्यार फाकरी लकडी जिण में वरत बांधै चडस कमै उगानै कडचू कहै सो च्यार हाथ उपसुं कोसरो मुख पाणी मरीजै जिण सुं । ४३ धनमगुल गाडिरी । ४४ सोले ताडी चरखे री तिके सुं सोले पग चरखो । ४५ हवाई ४६ नटी मदिरा छकी ।

प्राण दसो सु* इक नहीं, ज्ञान घ्रद्र नहिं बाल ।
मरण जनम विन जीव हैं, कारण कौन निहाल ॥४७॥
तुरत दसन विन अन भखे, छरद करत तिह काल ।
पेट भरत नहीं पुरसतां, कारण कौन निहाल ॥४८॥
प्राण नहीं मुख इक रदन, अदन विशाल रसाल ।
हदन मृत मुख में करैं, कारण कौन निहाल ॥४९॥
च्यार लठी अठ कर पकर, उन विच वैठे बाल ।
देत सहारा नम फिरत, कारण कौन निहाल ॥५०॥
प्रात सुअत संध्या जगत, मृदु अति सुन्दर बाल ।
वंध्या पुत्र दऊं नहीं, कारण कौन निहाल ॥५१॥
विन पैड़ी चवदै चढ़ै, समयतर कर काल ।
मरण होत ही उड़ चलै, कारण कौन निहाल ॥५२॥
मध्ये प्रवचन मांय दुग, सचा आद रु अंत ।
मिगसर वदि तेरस भई, गूढ़ बावनी कंत ॥५३॥
खरतर भट्टारक गर्छै, रत्न राज गणि सीस ।
आग्रह तें दोधक रचै, ग्यानसार मन हींस ॥५४॥

— इति निहाल बावनी संपूर्णम्. —

* दसूं में ।

४७ सिद्धावस्था । ४८ घरटी । ४९ घाणी । ५० ढोलर हींडो ।
५१ कमलनी सूं कमलोत्पत्यामाव, तासूं पुत्र नहीं कमलनी सूं कमल नी उत्पति तासूं वंध्यामाव । ५२ सिद्ध ।

श्रीनवपदजी पूजा

दोहा:—च्यार घातिया क्षय करी, जेह थया भगवंत।
समवसरण ऋद्धे सहित, वन्दूं ते अरिहन्त ॥ १ ॥

देशी—सूरती महीना नी।

अनंत भवे अविसेस, ति भव थानक तप सेव।
बांध्यौ जिण जिन नाम, एण भव अंतर एव ॥
राय कुलै अवतरिया, चवदे स्वप्न समस्त।
शुभ लक्षण सूचित शुभ, गुण शुभ माता पस्त ॥ १ ॥
जनम महोत्सव करवा, दिशिकुमरी सुर इंद।
आवे एक एक थी आगल हरख अमद ॥
पग पग नाटक नाचै, सुर कुमरी ना वृन्द।
मेर सिखर नवरावै ल्यावैं जिण जिणचन्द ॥ २ ॥
लोक अछेरक देहै अतिशय होवें च्यार।
तीन ज्ञांन थी भोग खीण नौ कर निरधार ॥
तज आगारी उग्र विहारी हुय अणगार।
संत दंत अभमत्त अमाई जे ब्रह्मचार ॥ ३ ॥
शुकल ध्यान नै ध्यावै, आराम शक्ति अलोह।
खवगसेणथी हय पडिहय जिण कीनौ मोह ॥
केवल दंसण नांणी शुद्ध सरूपी ख्यात।
चोतीसे अइसय युत अरिहन्त देव विख्यात ॥ ४ ॥

प्रातिहारिज शोभित सेवित सुर विहरन्त ।
भू पीठै वांणी गुण थी भव योद्द कुणन्त ॥
जगजीवन जगवल्लभ जगचक्षु जग सांम ।
वार वार त्रिकरण-शुद्धें माहरौ परणांम ॥ ५ ॥
इति अरिहन्त स्तवना ।

दोहा:—अष्ट करम दल निरदली, अड़ गुण ऋद्ध समृद्ध ।
जन्म मरण भय निर्भयी, नमूं अनंता सिद्ध ॥ १ ॥

देशी (सूरती महींना नी)

अरिहन्त वा सामन्न केवलि कृत समुघाय ।
अकृत समुद्घाती शैलेशी करणें पाय ॥
मण वय तणु नै रोधै जोग निरोधी होय ।
जोग निरोधी केवल नांणी कहियै सोय ॥ ६ ॥
आयु क्षय थी दो इग चरम समैं रहि सेव ।
बहुत्तर तेरै प्रकृत खपावे हिव नहीं सेव ॥
चरम अङ्ग अवगाहण तीजैं भागैं ऊंण ।
पहुंता एग समय लोगंतै सिद्ध अजूंण ॥ ७ ॥
पुव्व पओग असगे सहिजै बंधण छेद ।
धूम सुभावै उर्द्धगति जेहनौ अविच्छेद ॥
इसी पभारा पुढ़वी पर जोंइण लोगंत ।
एहनी थित गौ थांनक तेहनौ आद न अन्त ॥ ८ ॥
जेय अणंवा अपुणुब्भव असरीर अबाह ।
दंसण नाण वत्ता गुण गति अणंत अगाह ॥

समय वछिन्न सरव दव्व गुण पर्याय सुभाव।
घटन[1] विघटनादिक जे जांणे पासै भाव॥ ६॥
गुण इगतीस अट्टगुण सिद्ध अणंता च्यार।
जेम अणंत अणुत्तर उपमांनौ न प्रचार॥
सासय चिद्घन आणंद सिद्ध सुणें संपत्त।
पदवा सिद्ध नैं होज्यो मम प्रणिपत्त सुनित्त॥ १०॥
इति सिद्ध स्तवना॥

दोहा:—ते आचारज नित नमूं पालें पञ्चाचार।
गुण छैंतीसें उपदिशैं भव्य भणी हितकार॥ १॥

देशी (तेहिज)

आचारता ज्ञानादिक पञ्च विधा आचार।
प्रगट करैं सहु जन नैं कारण इक उपगार॥
जे आचारिज देशादिक बहु गुण संपत्त।
तेहथी जंगम जुगपरधांनी ओपम युत्त॥ ११॥
अपमत्ता ऊवउत्ता विकथा जेह विरत्त।
कोहाई पर चत्त धम्म उवएसैं सत्त॥
सारैं जे निज गच्छैं जिण वयणैं आसत्त।
साइण वाइण चोइण पडिचोयणायैं नित्त॥ १२॥
पञ्चांगी थी जाण्या सूत्र अरथ ना सार।
पर उपगारैं दिव्य धुनि वांचैं विस्तार॥
अस्तमियैं जिन सूर केवल अत्यमियै तेम।
प्रगटैं सर्व पदार्थ आचारिज दीपक जेम॥ १३॥

१—चटन।

पाप मारे अतिशय भारी पङ्कता भय कूप।
पङ्कतां ने निसारे जे आधार सरूप॥
मातादिक हित रागी मारे हित नां कांम।
तेहथी अधिको हित कारज सारे निष्काम॥ १४॥
जे बहु श्रुत समिद्धा मातिस्या साणंद।
राय समा शासन पन हरित करण भू इंद॥
जिन शासन कुल मंडन खंडन वादीवृन्द।
ज्ञानसार नित प्रणमें अभिनव शारद चन्द॥ १५॥

इति आचार्य स्तवना।

दोहा :—द्वादशांग सुत्तत्थ नैं पढे पढावे शीश।
मूरख नैं पंडित करै, नमूं नमावो शीश॥

देशी (तेहिज)

बारसंग सुत्तत्थ ना धारग वारग जेह।
उभय विस्तार रुई उवज्झाये लक्षण एह॥
जे पाहांण समांण शीश नैं सूत्र नी धीर।
घाट घड़ो जे पूलक करद लोक मझार॥ १६॥
मोर सर्प्प डसवै नाठौ आतम ज्ञांन।
तेह अचेतन चेतन नैं करै चेतनवांन॥
व्याध घनाणैं पीड़ित जे प्राणी ना प्रांण।
ध्रुव अत्तीरै जे करै आतम स्वरूप नौ जाण॥ १७॥
गुणवर्ण भंजण मण गय दमणंकुश जे नांण।
देवें सदा भवियां नैं जीवदया मन आंण॥

सेस दांन दिन मास जीवित[1] नो जाणी अंत।
सुय नांणे जे अंत न जांणी सहु नैं दिंत ॥ १८ ॥
अज्ञानंध लोक नें ससमय सुय जे शास्त्र।
तेणें जाल उतार निरोगो करदैं नेत्र ॥
पाप ताप थी लोक तप्या जे आतम ताप।
शीत करैं यावन्न चंदन सम शीतल आव ॥ १६ ॥
जुवराजा नैं तुल्य सूरि पदवी नैं योग्य।
गण नी तातैं[2] तत्पर वायण दे शिष्य वर्ग ॥
पारद थी कंचन करैं तेहनो अचिरिज थाय।
ए पाहण थी रत्न करैं प्रणमूं तस पाय ॥ २० ॥

इति उपाध्याय स्तवना ॥

दोहा:—दोनूं विध निपरिग्रही, मैलैं मैलो गात्र।
पीहर जे छकाय ना, शुद्ध चरण ना पात्र ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

नाण दंसण चरित्त रूप रयणत्तय एक।
साधै जे मुख मर्ग साधक कहियैं एक ॥
दुष्ट ध्यांन जे आर्त रौद्रैं विगत करंत।
धर्म शुक्ल नैं ध्यायैं दुविह शिक्षा सीखंत ॥ २१ ॥
तीने गुप्ते गुप्ता गारव तीनूं गाल।
पालैं जे त्रिपदी नैं वरजी तीनूं साल ॥
चौविह (विरह) विगह विरत्ता च्यार कषाय नौ त्याग।
च्यार प्रकारैं धर्म परूपैं रस वैराग ॥ २२ ॥

१—जीवित। २—तातैं।

निर्जित पंचेन्द्री नैं इग्यारह पञ्च प्रमाद।
पालै पांच सुमति नैं आठ पहुर अप्रमाद॥
छए काय ना पीहर टाल्ये छड़ सुक।
पाणायवाय विरमणादिक पालै वय छक॥ २३॥
जे जिय सत्त भया गया अट्ट मया अप्रमत्त।
मय वय नैं पालैं, नव गुत्तीयैं गुत्त॥
खंत्यादिक दश विध जई धम्म शुद्ध पालंत।
बारस विह पडिमा नैं बक विधे कुव्वन्ति॥ २४॥
मूर्तवन्त संयम पांळीजै जेहनै अंग।
इक्कसैं धार्या अठार सहस शीलंग॥
पनर कर्मभूमि विचरंतां सूधा साध।
ते सहु साधै वांदूं मन वच तन आराध॥ २५॥

इति साधु स्तवना॥

दोहा :—कह्यौ अनंते केवली, तीन तत्व मय धर्म।
शुद्ध मनैं ते सद्दहै, सम्यग दर्शन मर्म॥ १॥

देशी (तेहिज)

जे शुद्ध देव धरम गुरु नवतत्त नी संपत्ति।
सद्दहणा रूपैं सैमयै वरणै सम्मत्त॥
कोड़ा कोड़ि सागर कम्म ठिई नहीं शेष।
तावन आतम पावे एहवी शक्ति विशेष॥ २६॥
अध पुग्गल परियट्ट भव्य भव शेष निवास।
ते विण मिथ्या गंठी नौ नहीं होवै नाश॥

ते सम्यज्ञान ना तीन भिधांन समय परिसिद्ध ।
उवसम क्षय उवसम क्षायक परिणामनी वृद्धि ॥ २७ ॥
पणवारा उवसम क्षय उवसम होय असंख ।
क्षायक एक वार थी अधिक न समयै संख ॥
धर्म वृक्ष नौ मूल धरम पुर मांहि प्रवेश ।
धर्म भवन नौ पीठ धरम आधेय विशेष ॥ २८ ॥
उपशम रस नौ भाजन जे गुण रयण निधांन ।
शुद्ध सरूप धरम जगतै आधार समान ॥
जे विण निष्फल चरण नाण जे विण अप्रमांण ।
जे विन मोक्ष न लाभै ए सिद्धन्त प्रमाण ॥ २९ ॥
जे. सद्दहणा लक्षण भूषण पमुहा भेद ।
वरणीजै सिद्धन्ते च्यार पांच पण छेद ॥
एह मोक्ष भातो जिण गाठै बाध्यौ होय ।
ते निश्चै थी सिद्ध मजै तिण वांदूं सोय ॥ ३० ॥

इति दर्शन स्तवना ॥

दोहा :- सर्वज्ञै प्रणितागमैं, जे जीवादि पदार्थ ।
भिन्न २ इक एक नै, जाणै शुद्ध परमार्थ ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

सर्वज्ञै प्रणितागम तत्त्व यथार्थ प्रमांण ।
ते शुद्धै अवबोध नांण मादरै परमांण ॥
जेणै भक्ष्याभक्ष्य जाणीजै पेय अपेय ।
गम्य अगम्य वस्तु कृत अकृत एहथी नेय ॥ ३१ ॥

सर्व क्रिया नो मूल श्रद्धा भाखी जिनराज।
श्रद्धा मूलें नांण सदा उपगारी आज॥
जेमय ओही मणपज्जव नांणी सुविशुद्ध।
केवल नांणें पञ्च विहा समये सुप्रसिद्ध॥ ३२॥
केवल मण ओही ना वयण करे व्यवहार।
तेह पहल्या मय सुय नो माहरे आधार॥
निश्चय थी सुय नांणें द्वादश अंग सरूप।
लोक आज विण पामें पहथी शुद्ध स्वरूप॥ ३३॥
तेहथी पढे पढावें दे निसुणे कृतपुण्य।
पूय लिहाय सहाय करें ते धन्य थी धन्य॥
अज्ञवि जाणें जस्म बलें तिय लोय विचार।,
करगत आंवल नी पर प्रगट पणें निरधार॥ ३४॥
होवें जेह प्रसादें पूजनीक एह लोय।
एह प्रसादें सर्व जनां नो वंदिक होय॥
तेहथी ए अप्रमांण करे ते अति मतिमंद।
ज्ञान नम मन वंछित पूरक सुरतरु कंद॥ ३५॥

इति ज्ञान स्तवना॥

दोहा :— देश सरब विरति पणें, गिही जई नें होय।
ते चारित्र सदा जयौ, शिवपद प्रापक सोय॥ १॥

ढाल (तेहिज)

देश विरति रूपें जे सर्वविरति सरूप।
होय गहीण जई नें ते चारित्र अनूप॥

नांण दर्शन पण संपूर्ण फल दाता वृद्ध।
एहथी है परिकर एहनौं सहु समय प्रसिद्ध॥ ३६॥
जब जईए जहुत्तार अधिक २.फल दित।
सामायकादि भेदु चारित्रे नै पञ्च भवति॥
जिणवर पिण आदर पाल्यौ सूधौ चारित्र।
सम्यक जेण पहूच्यो, अन्यें दीध विचित्र॥ ३७॥
छःखडाए मखंड राज छोड़ी चक्रवर्त्ती।
दुर्धर तेहवैं सुणिए व्रत पाल्यौ व्रत रक्त॥
मुझ सरिखा पण रांक चरण पालता जोय।
उच्च थानकै थापी वांदै पूजै लोय॥ ३८॥
चारित्त पालंता चारित्री नैं साणद।
पाय नमै रोमचित तनु नर वर सुर इंद॥
जे चारित्र अनत गुणी पिण सत्तरै भेद।
वरणीजै सिद्धन्ते तिम एहना दश च्छेद॥ ३६॥
सुमति गुपति जइ धम्म में आदि भावनाचार।
साधै जेहनी शुद्धै ते शुद्ध चरणांचार॥
दुर्धर दीव अठी मे जे चारित्र चरंति।
ते सहु नैं मुझ मन भावें प्रणपत्ति करंति॥ ४०॥

इति चारित्र स्तवना॥

दोहा :—दुष्ट आठ कर्म [1] काठ नै, जेह अगनि दृष्टांत।
यथा शक्ति तप पड्वजै, अममाई मति मंत॥ १॥

१—कष।

देशी (सूरती महीनानी)

बाह्य अभ्यन्तर बारै स समय भेद भणंत।
ते इग इगथी जह उत्तर गुण वृद्धि करंत ॥
जे[1] भव सिद्ध जाणंते ऋषभादिक जिनराज।
तीर्थंकर तप कीनौ कर्म निर्जरा काज ॥ ४१ ॥
अगन तपै कंचन थी माटी जिम फीटंत।
जीव स्वर्ण थी कर्म मैल तप दूर करंत ॥
केवल लब्धि अभावैं अन्या लब्धि विशेष।
तेहनौ मूल कारण ए, एहथी होय अशेष ॥ ४२ ॥
जे सुरतरू सम एहना फूल देय सुर ऋद्ध।
आत्म स्वरूप अंतर्प्राप्तियें शिवफल सिद्ध ॥
जे अत्यन्त असाध्य लोक में सरवै काम।
सीझै तुरत सहिजथी तप अवि रति पाणांम ॥ ४३ ॥
दधि दुर्वागुण मगल कारण लोक प्रसिद्ध।
ते बहु में पहिलो मुख्य मंगल सुविशुद्ध ॥
कनकावलि रतनावलि लहु गुरू सींहनिक्रीड़।
तप कारक इत्यादि नमू, भाजै भव भीड़ ॥ ॥ ४४ ॥
संवत निश्चय-नय मय तिमवलि प्रवचन माय।
परम-सिद्धे पद वांम गतैं ए अंक गिणाय ॥
भाद्रव वदि तेरस ते रस सुं नवपद लीन।
बीकानेरैं ज्ञानसार मुनि तवना कीन ॥ ४५ ॥

इति तप स्तवना ॥

॥ इति नवपद पूजा संपूर्ण ॥

१—ते।

॥ आरती ॥

जै जै नवपद आरति कीजै, सकल मंगल कल्याण लहीजै ।
पहिली आरति अरिहन्त सिद्धा, अरिहन्त सिद्ध अभेद प्रसिद्धा ॥जै०॥१॥
बीजी आचारिज गुण धारी, संघ सकल नौ जे आधारी ।
तीजी उवझाया साधूनी, समय सोलवें सोलै तेहनी ॥जै०॥२॥
तीन तत्त्व सद्दहणा रूपै, चौथी उद्धारै भव कूपै ।
पाचमो सर्वज्ञ प्रणितागम, तत्त्व रह्यो तेहनो निम अविगम ॥जै०॥३॥
छट्ठो देश सर्व चारित्री, करतां हुय काया सुपवित्री ।
बाहिर अभ्यंतर तप बारै, सातमी आरति वारै वारै ॥जै०॥४॥
जे भवि सात आरति उतारै शुद्ध मन दुर्गति दूर निवारै ।
ज्ञानसार नवपद आराधी, श्रीपालादिक शिव पद साधी ॥जै०॥५॥

॥ अथ नवपद स्तवन लिख्यते ॥

राग (वेलाउल)

भवि पूजा भावें करौ, नवपदनी सार ।
नवपद आतम भाव नै, इक निजर निहार ॥भ०॥१॥
आतम गुण आधेय नौ, नवपद आधार ।
एह अभेदोपचारियै, निज आतम विचार ॥भ०॥२॥
आतमता नवपद मई, नवपद आतमता ।
नवपद भावैं परिणम्यै, निज गुण नो करता ॥भ०॥३॥
नवपद ध्याता भवि थया, त्रिण काले सिद्ध ।
ज्ञानसार गुण रत्न नौ, नवपद नव निद्ध ॥भ०॥४॥

॥ इति नवपद स्त ॥

सं० १८६२ ज्येष्ट कृष्ण पक्षे १० तिथौ मंगलवासरे पालीताणा नगरे ॥
सं० १८७६ मि० फागुण वदि १२ दिने लि० पं० रत्ननिधान श्री
बीकानेर मध्ये ॥ पंत्र ४ सबद में ॥

सप्त-दोधक

परणामी परणांम तैं, बांधै आठ कर्म ।
करे कर्म फल भोगवै, इहै जिनागम मर्म ॥१॥
पै जैसे परणांम में, वरतै आतम रांम ।
तैसी तैसी प्रकृत कौ, बंध कहावत नांम ॥२॥
मिथ्यात्वै चो प्रत्यई, करत कर्म को बंध ।
अविरत प्रकृति ति प्रत्यई, होत बंघ की संध ॥३॥
सूखम गुण ठांणग हुवै, जोग कसायक बंध ।
करि है जोग संजोग में, होत अयोग अबन्ध ॥४॥
परणांमी परणाम कौ, कर्त्ता कारण हुँत ।
बंध कारणैं कारणौं, है परणांम सु संत ॥५॥
कर्ता जो परणांम नहि, कहि है जीव संबंध ।
तो ऽयोग गुण ठाण लहि, क्यौं न करै क्रम बंध ॥६॥
चेतन है निज रूप कौ, कर्ता तीनूं काल ।
निज सरूप अठ सिद्ध कौ, भेदाभेद निहाल ॥७॥

इति श्री ज्ञानसारजिद्वजि विरचितं सप्त दोधक

कुंडलिया

१. (जूआ)

जूआ रम धन कुं चहै, सेवा करकै मांन।
भीख मांग भोगै चहै, सबै विडंबन जांन॥
सबै विडबन जांन, भीख में भोजन चलि है।
तौ भी कुशल मनाय, मांन सेवा क्युं मिल है॥
कहि नारन कवि मीत, धुत सों धन कब हूआ।
व्यापारी व्यापर करै, क्युं, रमि है जूआ॥१॥

२. (पक्षी और मुनि)

पखी अरु मुनिजनन की, रीत एक नहि होय।
वे फिर फिर चैजो चुगै, फिरै गोचरी सोय॥
फिरै गोचरी सोय, रात दिन वन में वासा।
एक दिवस लघु बिरख, बडे तरु पंच प्रवासा॥
पुर निहचै नहि रहै, उडजे दिस बिन भंखी।
कहै नारन कवि मीत, मुनी जे आतम कंखी॥२॥

यक्षराज स्तुति

श्री चिन्तामणि पार्श्वेश सेवको यक्षनायक,
श्री मत्रिनामणि नामः शोभमाने निज श्रिया॥१॥
गजाननश्चतुरपाणि श्यामांग कूर्म वाहनः
श्री पार्श्वपर नाम्नास्तुः सेवकोयः सुखप्रदः॥२॥
यत्पसादादिह भक्ति लोको भूत सुख भाजन।
सांप्रतं विद्यासचावि सश्रियेस्तुसुधर्मणाम्॥३॥
इति यक्षराज की स्तुति

श्री जिनलाभ सूरि बारखड़ी कवित्त

स तमन माहमवंत, सा हसीकां सिर टीको ।
सि र सूरां सिर सेहरो, सी ल पालण सब नीको ॥
सु मति सुपति सहु धार, सू र गुण सिरसा राजै ।
से वक कूं सुख दयण, सै ल भ्रम मारग भाजै ॥
सो भै सदीव सोभाग धर, सौ भ सकल सुगुण सुथिर ।
सं सार पार तारण सदा, स दगुरु श्रीजिनलाभ वर ॥

इति श्री जिनलाभसूरि राजानां सकार द्वादशाक्षरी गर्भिता स्तुति
विहिता विपश्चित ज्ञानसारेण ।

सवैया तेतीसा

झलहलतो भानु किधुं, शारदा को चंद किधुं,
सुख हू को साज, मनु अवाज घनराज कौ ।
भुजन प्रचंड किधुं, सुमेरगिरि दंड चंड ॥
साहस जिनचंद किधुं, सत्व मृगराज कौ
छाती कौ कपाट किधुं, कपाट जंबूद्वीप जू कौ ।
राजहंस चाल किधुं, गमन गजराज कौ ।
सुगुननि कौ आगर यूं, सागर रत्नाकर सौ,
सूर कौ प्रताप किधुं, प्रताप गच्छराज कौ ॥१॥
कृतिरियं पं० प्र० ज्ञानसारगणेः ॥

अथ पूरव देश वर्णनम्

छंद—त्रिभङ्गी

भेई मैं देख्या, देश विशेषा, नति रे अबका सब ही में।
जिह रूप न रेखा, नारी पुरषा, फिर फिर देखा नगरी में ॥
निह्‌ काणी चुचरी, अधरी बधरी, लगरी पगुरी ह्वै काई।
पूरब मति जाउ गै, पच्छिम जाज्यौ, दक्षिण उत्तर हो भाई ॥पूरब०॥१॥
ती करै सुहोवे, वैठा सोवै, पुरुषा जोवै नेनन सैं।
पति सैं ना पालै कांन खुजालैं, वैन निकालैं वैनन सैं ॥
सरही धमकावै, सामी धावै, लाठो लोठी लै सारी ॥पूरब०॥२॥
थण लटक्या थरकै केसा फरकै अधर फुरकै अति रीस।
जे रंगे काली है ककालो, चण्डी काली ज्यु दीसैं ॥
चस जैंनी छोटी, पुदा मोटी, घाटैं घोटा ज्यु धाई ॥पूरब०॥३॥
पुदा घट घालै, बाहे झालै, टेढी हालैं जे हालै।
मदिरैं घट पेलैं मुडदौ ठेलै पांणी भेलैं अब[१] चालै ॥
फिर पाछी वलती[२], बाता करती, धम धम चलती घर आई ॥पूरब०॥४॥
घट घर निज घर मे, गमछो करमे, हित दे सिरमैंले नलमैं।
हित हलदी रगैं, अगा अगैं, सबही रगै बिन सिरमें ॥
कपडौ कर धारैं, मैल उतारैं, रगडा मारैं लोगाई ॥पूरब०॥५॥
नरनारी मिल मिल, भेला भिल भिल, बोली किल बिल सहु बोलै।

१—फिर २—फिरता

कहि सूधो काई, पूंदां ताईं, पाणी में धोती खोले ॥
क्या पुरुषा नारी, वधु कुमारी, क्या बेटी अरु क्या माई ॥पूरब०॥६॥
सब मिलि नें हेलें, हेला हेलें, रामत खेलें इक इकरें ॥
इमी हय गाधें, मूठी बांधें, घुरमा सांधें राड़ करें ।
इक नै इक पेलें इक इक ठेल, पड़वो टुच्यो लें गाई ॥पूरब०॥७॥
तट बाहिर आई, खड़ी रहाई, क्या बहूआं अरु क्या सासू ।
कड़ि चेलो लटकें कबड़ें फटकें, पाणी झड़कें केसां सूं ॥
क्या छोटी मोटी, क्या अधरोटी, केस न बांधे सोगाईं ॥पूरब०॥८॥
सिर परच सिन्दूरें, मांगन पूरें ताजू चूरें सब अगें ।
कड़ि धोती धर्में थाधी सधें, कुच न ढंकें सिर नगें ॥
कर में मंल चूरी, काच न पूरी, सोइ अधूरी बलि कांई ॥पूरब०॥९॥
कें कानें तोंटी छोटी मोटी, नकवेसर लें नाक धरें ।
बांका पग राखें, कड़लां सांखें, चलतां खड़का खड़क करें ॥
मद्याजी रीसें, निरमी दीसें, रूप न दीनै इकराई ॥पूरब०॥१०॥
मकसूदाबादें, श्री संबादें, राजगंज सूरीत सणी ।
क्या वरणूं महिला, वरणी पहिलां तिण सुं आधिकै रूप घणी ।
जे नहि निरलज्जा लज्जा सज्जा, परणी परणी जे त्याई ॥पूरब०॥११॥
कुच बाँधें तापड गोड़ा आपड़ ईस अदाई हाथ करें ।
पर गामे, जावें विच नथ आवे, खोली तापड़ सध धरें ॥
चादर की जाईं, घसें लुगाईं, पहिरें कांठें फिर जाई ॥पूरब०॥१२॥
जनपद पल मच्छी, मारैं मच्छी, क्या मोटा अरु क्या छोटा ।
क्या कोईं धीवर, क्या फुनि धिजबर, खानें पीनें सब खोटा ॥
क्या नइया दरजी, उनकै मुरजी, क्या धोबो अरु क्या नाई ॥पूरब०॥१३॥

जौ ब्रह्म विचारै, वैन उचारै, अध्यातम रूपी दीसै ।
जल कंठै जाई, न्हाई धोई, जप करतां जलचर दीसै ॥
कर धर जपमाला, मच्छी बाला, पकड़ी थैलै पधराई ॥पूरब०॥१४॥
वेदध्वनि करत मारग चलता, इक हाथी मच्छी लावै ।
विण न्हायौ भींटै, टेढो भींटै, देखौ पाछौ फिर जावै ॥
गंगा जल नाही, फिर भींटाई, फिर आवै अरु फिर जाई ॥पूरब०॥१५॥
अति रोगी देखै, आयु विशेषै, काठै खड़िया आय धरै ।
पाणीमुख चोवै, जल पगडोवै, हरिबोल हरिबोल करै ॥
आमीनू मरवै¹, रोगी कवै² बोल हरि कहि मां बाई ॥पूरब०॥१६॥
यूं करता मूऔ, कारज हुऔ, राजी संगी सब आघी ।
कर पूलौ जालै, मुहड़ो बालै, पाणी घट दै गल बांधी ॥
जल मांहि डबौवै, फेर न जोवै, कोय न रोवै जल नाही ॥पूरब०॥१७॥
रोगी नहि मूऔ, कांठै सूऔ, बाघी भूपइ तिह वैसे ।
घर के पुहचावै, भैठो खावै, नगरी मांहे नहीं पैसै ॥
मुड़दापुर ठावै, नाम धरावै, हँसै रमै तिह हुलसाई ॥पूरब०॥१८॥
श्रावक घर दाई, रहै लुगाई, झखभक्षी माई जाई ।
घर पीलैं पोवै, चून समोवै, तरकारी दै छमकाई ॥
सब झाड़ू देवै, व्यंजन लेवै, बाल खिलावै हुलराई ॥पूरब०॥१९॥
चूलौ संधूकै, फूंका फूंकै, जल भर धर दै बटलोई ।
आधण ऊकालै, दाल डालै, बाहिर आवै पग धोई ॥
इक लूण न घालै, सोई टालै, पिण चौकैरी चतुराई ॥पूरब०॥२०॥
इक धाइ ल्यावै, बाल धरावै, घर दासै कब घर जावै ।

१—मरवां । २—करवा ।

गुरु ग्यानी गावै, ज्युं पय ध्यावै, श्रावक बालक थण पावै ॥
बालक कटि ल्यावै, टेरै धावै, पाछी जावै पल माई ॥पूरब०॥२१॥
सब दूध बिछूटे, गोरां[1] ग्रूंटे, पीवैं बालक पेट भरी ।
अति शिशुता जावै, नाज दिखावै, ल्यावै बालक भेट करी ॥
निज घर में आवै साथ खिलावै, बिण हाथै माणों माई ॥पूरब०॥२२॥
को जात न जाणै, पांत पिछाणै, फिरतो आवै परदेशी ।
बाईजी दाखै, रांधन राखै, दरमाबी कपड़ा देसी ॥
घर में जीमासी पांणी पासी, कौल करी ने रहि बाई ॥पूरब०॥२३॥
क्या वर्षा काले, क्या सीयाले, ऊनाले कण गण चाले ।
सब नाज सुकावै, धूप दिखावै, पाछा ठामैं घलिवालै ॥
इम दिन दो जावै, फूलण आवै, पीड़ा ईंढा पड़जाई ॥पूरब०॥२४॥
दिन वधता पावै नाज सुखावै, सब में कीड़ा पड़ि आवै ।
तिणगासन माहै, भरैज मांहै, तौही पीढ़ै सड़ जावै ॥
घर अंगण नीलण, अंदर फूलण, सब धरती धुस धुस आई ॥पूरब०॥२५॥
धर वस्त्र बिछावै, जौ न उठावै, जमां न पावै के दिन में ।
ऊंची धर राखै, खूंटी साखै, पचरी रंग गमै छिन में ॥
पचरी ज्युं सबही साटै तबही, पुरसा तमकूं चम्म जाई ॥पूरब०॥२६॥
अति मोटा गोला, भेल समेला वांसा खूंटी धर गाडै ।
वांसां छत छावै, तेथ रहावै, राई सरसूं के गाडै ॥
धर सरदी सेती, नीचै केती, थोड़ा दिन में लग जाई ॥पूरब०॥२७॥
दुर्गन्ध विछूटै, नाक न भीटै, साधौ पाछौ फिर आवै ।
चौ पञ्च प्रमाणै शास्त्र वखाणै, ऊंचो जोजन सित जावै ॥

१—छूटे ।

मो इण देसे सुं, नहीं दूजै सुं, भगवन साची फुरमाई ॥पूरब०॥२८॥
इक चौरी नामै, तिण परणामैं, बोली बोलै फिर तैसैं ।
मुख मिश्री परखौ, कांनै सरिखौ, परखौ होवै तिण देसै ॥
नव बालक पावै, छानै जावै, फासैं बालक मरजाई ॥पूरब०॥२९॥
रगचूं कथौ गाडा, अेको आडौ, रस्सै कांटौ अटकावै ।
नर पीठ विडारी, कांटौ डारी, दोरी दूजी दिस सांचै ॥
अब इकन (?) फेरै, खाधीगेरै, ख्याली छाटा छिरकाई ॥पूरब०॥३०॥
जे कांछित कामें, केई पामैं, पीठ फड़ावै के यूंही ।
हम निजरै दीठी, तिणै न भूठी, देखी ज्युं लिख दी त्यूंही ॥
श्रीतन जिण कीधौ, तप पद सीधौ, चरख बाण अो कहिलाई ॥पूरब०॥३१॥
नर कांठै आवै, मुड़दा ल्यावै, मत्रै मंत्रो उठावै ।
हड़ हड़ हसावै, चिणा चबावै चाव्यॉ नै फिर निगलावै ॥
वलि दोय उठावै, राड़ करावैं इण मंत्रै सत्ता पाई[1] ॥पूरब०॥३२॥
को धोती धोवै, पोत निचोवै, भातै भींट्या जात गई ।
होकौ नहीं पावै, कुण जीमावै, सगपण री तो बात किह ॥
सब नात बुलाई, घर जीमाई, जात गई सो फिर आई ॥पूरब०॥३३॥
थोड़ै में जावै, वैगी आवै, हलकी में तो संक किही ।
जो ओछी जातां, तिनकी बातां, वड़ जातां में रीत नहीं ॥
पिण के अधिकाई निजरे आई, सुणो कहूँ हुं समझाई ॥पूरब०॥३४॥
घर फाड़ो पैठो, निजरै दीठो चोर वही कही कुण तैंनै ।
इक तो अधिकाई कहो सुणाई, बीजो सुण लो जो जे न ॥
सीदैं अथ बीचै, पकड़ी भींचै, रस्सी बांधै मचकाई ॥पूरब०॥३५॥

१—इण विध सत्ता न रहाई ।

यूं जो ले जावे साहिब पावे क्यो वाले सो सुनजाई ।
सुनसुन इन चोरी, नाही तोरो पलवल इनके हैं ग्याही ॥
मानी तब भागे हमरी लागे, बांध्यो मीठे विच माई ॥पूरब०॥३६॥
तस्कर तब आर्वे, मूठ न दार्वे, हम मानुल हुरमत वाले ।
इन हुरमत लीधा, चोरी दीधा, हमतौ हैं इनके माले ॥
तब साहिब बोवे, चोर न होवे, तो तुमरे हैं मदाई ॥पूरब०॥३७॥
कोई यु बोलें, इनकी भोलें, चोरी करनें को नाठो ।
वन सीदे आप, नार बुलाए, चोरी दे पकड़यो काठो ॥
यंदर ग्यु पासी, जाणे त्यासी, चोरी बाहर नहि काई ॥पूरब०॥३८॥
कोई इक घाटे वावां वाटे, जाय वणावी न मूठो ।
पहिली बुल्लाए इनके आप; घर में पैठा फिर बैठो ॥
हम कूंदी चोरी, याहां मोरी, औरें जूती जरकाई ॥पूरब०॥३६॥
कहि हुरमत लीना, हमरें दीनां, पंचू मांहि सिर जूता ।
हम साहिब देवें, सब सह लेवें, वलवल तुमरा क्या चूता ॥
तब तस्कर हाथें, साई माथे, पहके जूती पड़ जाई ॥पूरब०॥४०॥
बाजारे आवे, चोर डरावे, व्यापारी ने यूं कहिने ।
मांगौ सो देस्यां, फेर न कहिस्यां, सौदौ लेइया सब मिलनें ॥
पण अधिको लेस्यो, दूणो देस्यो, समझी लेज्यो समझाई ॥पूरब०॥४१॥
के चोड़े धाड़े धाड़ा पाड़े, नाम लिखावो दफ्तर में ।
चोरी जो लावे, आधो पावे, आधो साहिब मिन्दर में ॥
अब कोय न चिन्ता, हुआ निचिन्ता, मौजां मांणे मन माई ॥पूरब०॥४२॥
घड़ गंगा संगा, अंग पसंगा, रंग तरंगा लघु गंगा ।
भागीरथ लाई इण दिशिआई, उदधे धाई उम्मंगा ॥

तिण नामै कत्थी, भागीरत्थी, शिव शासनकी सा माई ।।पूरब०।।४३।।
जलधार पत्राई, इण दिशि वाहैं, के देशन की मल ताणी ।
गवीधर सेवी, घासा खेती, खातन नांवे को आणी ।।
पिण कण अति छोटौ, कोफल मोटौ, रस कोई मैं न भराई ।।पूरब०।।४४।।
सब नीरस खाणौ, रस नहीं दाणौ दाढ़ै चावी नैं देख्यौ ।
सब फीकौ लागै, स्वाद न जागै, परखा परखी नैं पेख्यौ ।।
इक आंबा मनहर, स्वादै, माधुर लाखे कोडे न गिणाई ।।पूरब०।।४५।।
जीतां नैं मारै, मुड़दा तारै तिण मुड़दा तिरता दीसै ।
ज्युं गीदड़ पत्ती, वलि पल भत्ती, कउआ सिकरा अति रीसै ।
इक चुंचा चारैं, इकैं पछारैं, निबला पंखी उड़ जाई ।।पूरब०।।४६।।
अब चूंचां मारै, उदर विदारै, मांसाहारै अति रत्ता ।
लंबौ मुख थोथर, मानु कोथर, पल गटकावै उन्मत्ता ।।
अब गीदड़ ऊडै, तिरै न बूडै, माठी मुड़दा भख जाई ।।पूरब०।।४७।।
दोनूं तट तारैं, नीरैं सोरैं घन वनराई पसराई ।
किण वरणी जावै पार न पावै, रायपसेणी ज्युं गाई ।।
ज्युं देखी नैना, भाखी वैना, वर्णन कर नहीं वरणाई ।।पूरब०।।४८।।
गाढ़ां बिच मिन्दर, मोटा सुन्दर, अति ऊचा पर आगासी ।
तिह बैठा सहिरी मोजी लहिरी, मिस मानुम ज्युं सुर वासी ।।
मैना घर घर घर, मानु सुरपुर गंगा दर्शन तट आई ।।पूरब०।।४९।।
जल नभ आकारैं, तिण परचारैं, देव विमानै वलि देवा ।
तिम नावा नांना, देव विमाना, सुरवर सम सहिरी लेवा ।।
ते वैक्रिय सगतैं, चालैं जुगतैं, इह डाढू मैं देही ।।पूरब०।।५०।।
रेलो घर द्वारैं, नौका धारैं, उतर अपणैं घर पसैं ।

तिम तड़ पामेले, अधरा चाले, मूल विमानें जइ बेसे ॥
इह कोमी जूती, धरती हूँती, ऊंचा पिण तिण रहि जाई ॥पूरब०॥५१॥
ए सहु परदेशी, नहीं इण देसी, जांग्यौ बंगाले जिनकें ।
सिर नाहीं पघरी, माथौ गगरी, पवन शिखा ज्यूं पट फरकें ॥
नग शिखनु गहिणौ, नाम न कहिणौं, इक धोती री ठकुराई ॥पूरब०॥५२॥
भेला जब बैसे, अैसा दीसै, जैसी कउआं की माला ।
क्या बरी कुमारी, बुड्डो नारी, कारी त्युं ही नर काला ॥
क्या शोभा कीजै, देख्यां रीझै, इक जीभेंगुण ने कहाई ॥पूरब०॥५३॥
रूपें कर नारी, वरणन भारी, तन काजल रो रस घणौं ।
क्या पुरुष नारी, रंगै कारी, रूपाली अरु गोर पणौं ॥
सौं कर्म प्रमाणें, इण दिस जाणें, सौ मांहे पिण सो कीई ॥पूरब०॥५४॥
अप अपणौ थाटें, नौका थाटें, के गज मुक्खी खिग पक्खी।
के आरामिगीं, केय कुरंगी, के रोमी के मुखमच्छी ॥
के वत्तकपत्तो, सिंहामुक्खो, के घुड़दौड़ी निपजाई ॥पूरब०॥५५॥
हुय बाबू भेला, सहु समेला, मिजलस मेला में आवें ।
त्रिभौदी नाले, बरषाकालें, वर गंगा जल भर जावें ॥
घण पङ्कज जातें, मोटे पातें पवने परमल पसराई ॥पूरब०॥५६॥
वेश्या संग लावे, नाच करावें, अति रूपाली जे अगे ।
तत्ता तत थेई, थेई थेई, साज बनावें सब संगे ॥
अति मीठौ गावें, नाच थटावे, घस आवें अप्सर धाई ॥पूरब०॥५७॥
कूदण अरु नाचण खावण पीवण, नावां ऊपर ही होवें ।
चंदनि जब छिटकें कौलनि चिटकें, के जागें ज्युं के सोवें ॥
बौलें बोलावें भमरौ आवें, संग करै पति पौढाई ॥पूरब०॥५८॥

दिनकर दिन चारै, वात उचारै, कौंला मानै सो भूठी ।
षट्पद के संगैं, अंगो अंगै, रमती रंगै, हम दीठी ॥
कौलन दल श्राखै, रीसैं मांखे, कौंलनि नैना¹ भरि आई ॥पूरब०॥५९॥
जिह पङ्कज नारी, खेजरयारी,² करनै खेलै कुज्जोड़ा ।
के नारी वरसैं, जारन फरसैं, ते ठामें रहिसज्जोड़ा ॥
भलघर री जावै, पड़दै आवै, पिण पड़दै में ठगाई ॥पूरब०॥६०॥
इक नौका जावै दूजी आवै, बाधै इक नै इक सेती ।
के जारै ल्यावैं, आपण जावै, पक्ष करै नर सू केती ॥
यूं रहिन भेला केतो वेला, न्यारी नावां कर जाई ॥पूरब०॥६१॥
ऊजाणै आवै, भाठी जावै, नइया साडी मिल गावै ।
सहु साही तालैं, बैठा चालै, ममकणदाणा भर ल्यावै ॥
लपका भम्मलिया डाडा कलिया, आगै सहु सूवे जाई ॥पूरब०॥६२॥
तिरता नौ सोहै, जन मन मोहै, मांहै बैठा सब सहिरी ।
जल ऊपर मिन्दर, मोहे सुरवर, मानू भासी सुरगपुरी ॥
क्या शोभा कीजै, देख्या रीझै, वरणन सू वरणीनाई ॥पूरब०॥६३॥
वरसालौ आवै नदी भरावै, वधतै पाणी विस्तारै ।
मचांण बधावै तेथ रहावै, इक इक नौका घर द्वारै ॥
तिण ऊपर आवौ, तिणमु जावौ, वलि जल भासी वनराई ॥पूरब०॥६४॥
नहीं काली घट्टा, वादल थट्टा, मोटी छंट्टा सू वरसै ।
नहि मोर भिगोरा, दादुर सोरा, पपिहा पिउ पिउ पी तरसं ॥
विन वरसा कालै, क्या मीयालै, ऊनालै घन वरसाही ॥पूरब०॥६५॥
बहु कीचड़ मच्चै, लचा विच्चै, लचलच धरती लचकावै ।

१—अंखियां । २—खेचरयारी ।

को भोलै भावै, पांय धरावै, फट तट सूधो धस जवै ॥
धर मत्थे मानूं' निगलो जांनूं, अवतारै कर यपमाई ॥पूरव०॥६६॥
मगरी ज्युं धर परत्युं जल ऊपर, नौका चालै जन बैठे ।
को संक न आनै, सब तिर जानै, नर जाणी तिण में पैठे ॥
टेऊ जब पावै, नीचो जावै, उठि आवै फिर धस जाई ॥पूरव०॥६७॥
नौका सूं आणो, नौका जाणो, आर पार रो काम पणो ।
गोहारै बैसे, जन सुविशेषै, ठीक न रासै भार तणो ॥
धारा में आवै धक्को खावै, के डूबो के विरजाई ॥पूरव०॥६८॥
तब मौज न काई, जीव डराई, कला न काई मरि आवै ।
हाहा कर रोवै, सब जन जोवै, कोय निकालण नावै ॥
क्या बाबू बेटा, धनके धोटा, गंगामाई गिलजाई ॥पूरव०॥६९॥
भाते परभाते, खावैं राते, फिर इक रासैं दे पाणी ।
दूजो दिन जावै, बुचबुच आवै, खावे सुरा खाणो जाणी ॥
अब मौज सुणेज्यो, हास न कीज्यो, सुगती चूरै मिरचाई ॥पूरव०॥७०॥
जो मौजी पन्नीया, मौजे चढ़ीया, आदरक चपू भातां में ।
नींबू नीचोय, लूणै देवै, भात चलाल कहै नामैं ॥
देख्या घिण आवै, स्वादैं खावै, सूग न लावै इक राई ॥पूरव०॥७१॥
इण विध पिण खाणो, भातैं जाणो, दाल दूसरी अरहर की ।
को चून न खावै, भोलै भावैं, पेट दुखावै भरदूं की ॥
पक्की नहीं पावै, केतै गामैं, ढीकी कर कण कूटाई ॥पूरव०॥७२॥
जौ भोलैं खाधी, रोटी बाधी, ऊपर आधी फिर खाधी ।
तौ उदर पीड़ावै, रद करावै, नांहि पचावै है व्याधी ॥
तिण कोई न खावैं, देख डरावै, सिखी खाधां मरजाहो ॥पूरव०॥७३॥

सब देस मसेरी चौदिस घेरी, बिच खाटैं घर सो जावै।
जो चौड़ैं पौढ़ैं, वस्त्र न ओढ़ैं, मच्छर चटका चटकावै॥
यूं रयणी जावै, नींद न आवै, दुखमा परगट दरसाई॥पूरब०॥७४॥
ए मच्छर खोटा, इन सुं मोटा, अति डांसा पिण तिण देसैं।
चूंचा पिण लम्बी, पांउ पलम्बी, घन वन छांही दब बैसे॥
रैणी जब आई, सब ऊड़ाई घरघर माहे धस जाई॥पूरब०॥७५॥
अति शोर मचावैं, लाक डरावैं, दौड़ी जावैं के ऊचा।
के पडदै पैसे, चौड़े बैसे, मारै जम दोढ़ पर चूंचा॥
तब खाज खुणावै धसल लगावै, केते मच्छर मरजाई॥पूरब०॥७६॥
परभातैं देखैं, न्यारी पेखैं ठाम ठाम कपड़ै छूंटौ।
कया सब राती, हुरी न पाती ओल बन्ध नहीं अतिछूटी॥
आ अनुभौ दीठी, तिणैं न झूठी, वीतक करणी वतलाई॥पूरब०॥७७॥
पिण देश न जूका, घोती हूका, पट देख्या नहिं पावै।
इनकौ इक कारण भाखै नारण, लोही बिन कुण निपजावै॥
सब रंगे पीला, अंगै ढीला, पुरुषा नारी नहिं गाई॥पूरब०॥७८॥
दासी कहि दाई, वेश्या बाई जी कारै रांघण जाई।
जल खाणौ भाखै, पूरी चाखै, बीबी दाखै बलि बाई॥
वैद्य कविराजा, बोल भाभा, मूंआं कहि गगा पाई॥पूरब०॥७९॥
जुरुआ कहि नारी, घर कूंवारी, पनरस भाखैं पुन्यूं कुं।
वड्डम जे डडो, मोग्या रडो, गाछ कहै सब वृक्ष कुं॥
पागल कहि गहिलैं, महिलौ महिलै, खावै सौदि सु वतलाई॥पूरब०॥८०॥
वहिणै कुं भसणौ, देलण तिरणौ, डाक हाक कुं बोलावै।
जिह लाज भरावै, गोलौ गावै, घाटो साडो जोग वे॥

ऊतरतो पाणी, भाटी वाणी, पढे बखाण सु वदिहाई ॥पूरब०॥८१॥
फरियादे नालम, पंचां मालम पद्रकुं हमरा कहि नामे।
दांदारु पैठश पर काठ का, गमछा रुमाले गावे ॥
मत्या कुं दुरमत, विश्रा इलत, भारी मागी कुं ग्याही ॥पूरब०॥८२॥
नहि नर आचारी, वृद्धा नारी पुरुषा नापै महुतेनै।
बहुआ कहि छोटे, बापू मोटे. पुत्र न भावै को जैने ॥
वैसण नै थाकी, राणी होक, इतनी बोली देग्याई ॥पूरब०॥८३॥
पति पैठो जोवै, जारो होवै नारी मोवै, जारां सूं।
पति कोय न पालै, नीचौ भालै, जोर न चालै दारा सु ॥
आ इण ही देसै, रीति विशेषै, किण ठामै निजरै नाई ॥पूरब०॥८४॥
पति नाहि सुहावै, दूजो ल्यावै, अदालत में को नावै।
जो कोई झगड़े, दांगे रगड़े, कचही साहिब तो पावै ॥
जोरू की नालस, लाये सालस, हम बीरो के हमराई ॥पूरब०॥८५॥
यूं न्याव निवेड़े, तिणै न छेड़े, पड़े न केड़े को रंडी।
तिण अति मदमाती, जारें राती, गिणै न राती क्या मंडी ॥
तिण नारी कीधो ऊंधी सीधी, सीधी ऊंधीनर गाई ॥पूरब०॥८६॥
घर पैसे पारै ऊलैं बधारैं, पीहर जैनो सो नारी।
पीहर मिस सेती, सासर हूंती जोखें खेलै केजारी ॥
नारी संकेतैं, घर पीहर वे, बोलावण आई दाई ॥पूरब०॥८७॥
माई बुलाई भेजी आई, हम बहुआरू लैने कूं।
नावैं बेसावैं, स्याने ल्यावै, पाछो फेरै स्यानं कूं ॥
अब ढकी ल्यावैं, तिह लै जावैं, जिह घर जारैं बतलाई ॥पूरब०॥८८॥
तिह रहिनैं रातैं, वलि परभातै, पीहर घर मे अब जाई।

तुम नांही बुलाई, हमतौ आई, मयौ हमकूं न सुहाई ।
पीहर न पिछाणै, पति नहि जाणै, अधि बिच जारी करि आई॥पूरब०॥८६॥
कुछुलियौ बसति, नारी ससती, नारैं घ.वै सो जावै ।
को अखी बोलै, थोड़ै मोलैं, हम तुमरे घर में आवैं ॥
अढ़ढाई तीनां, रुपीयां दीनां, लूंठै घर में धस जाई ॥पूरब०॥६०॥
क्या नर अरु नारी, चावै जारी, जो इण देसै सुखे रहो ।
को राज न सका, हिणै निसंका, मन मानै सो सुणौ कहो॥
इक चोरी जारी, तणी नकारी, देखी परगट दरसाई ॥पूरब०॥६१॥
इक माट भरावै, दही भरावै, नित कौ तैं में ते ठावै ।
पिलू पड़ जावै, पांखयां आवै, पंखी पांखे उड़ जावै ॥
इम वच्छर पावै, ठाहौ ठावैं आछ रही सो उठि आई ॥पूरब०॥६२॥
सो पाणी पीवै, राजी जीवै, घण दुरगंधी अति खट्टौ ।
तव मस्ती आवै, सुद्ध गमावै, किह पघरी किह दुप्पट्टौ ॥
खट्टी मुंगोरी स्युं कचोरी, खट्टो खाणौ खुस खाई ॥पूरब०॥६३॥
पूरब अति रोगी, मूल न सोगी, परगट देख्यौ नैनां सूं ।
जो रोग लखीजै, तौ बोलीजै, विण कारण छै तीनां सूं ॥
मुड़दा जल पीणौ, वायू लूणौ, वड़कौ रोगैं उपजाई ॥पूरब०॥६४॥
दिनमे कै तरके, पवन फरूकै, खिण सरदी अरु खिण सीजै ।
खिण में ओढीजैं, दूरौ कीजै, पंखौ लीजै ठहिरीजै ॥
ए बाहिर ताई, रहितां पाई, अभ्यन्तर नहिं समझाई ॥पूरब०॥६५॥
खिण धूप खमीजै, सिर पकड़ीजै, घट घूमै अरु चव मारी ।
जौ तिणही विरीयां, घट जल भरियां, माथ ढलियां क्या कारी ॥
युं पित्त कुपावै, उद्धक जावै, मूर्च्छा कर धर पड़जाइ ॥पूरब०॥६६॥

ज्युं धूपे सीधौ, त्युं ही सीधौ, वरण न जाणौ वलि पातें ।
पिण ते अधिकाई, दिन में पाई, औ पामीजै दिन रातें ॥
तिण इक अधिकाई, यातें पाई, अब पाणी धारी आई ॥पूरव०॥९७॥
सूतां नही रातें त्युं परभातें, ऊम्यौ जाग्यौ जिण कालें ।
पाणी जौ पीवें, मरें न जीवें, पिण रोगी है तत्कालें ॥
उत्कृष्टी वेला, निश्चै पेला, निस्संदेहा वध आई ॥पूरव०॥९८॥
के सेर दुसेरी, थेली ढेरी, चौ पञ्च सेर्यां के केई ।
के साता आठा, शिथिला काठा, पनरा सतरा केतेई ॥
अधमणीया केते, मणभर तेतें, के दो मणिया अढ़ाई ॥पूरव०॥९९॥
के खंध उठावें, कढ़िया जावें, चाकर पकड़ें के आगे ।
तब पीछें चालें, नहीं नहि हालें, चलता दीसें यूं मार्गें ॥
इत उत लड़ थड़ता, पटका पड़ता, टांग धरें दक्षिण बांई ॥पूरव०॥१००॥
लम्बा के रद्दा, गोल गिरद्दा, के लटकंता के ऊंचा ।
के जांघां ताइ गोडा मांई, पींड़यां पांई, केनीचा ॥
कोई जब बैठें, पोता हेठें, धर तिण ऊपर बैसाई ॥पूरव०॥१०१॥
केइ बैसंता, सास भरंता, मुख आगें पोता मेलें ।
बालक जब आवें, थेलौ पावें, चढ़ कर कूदें के खेलें ॥
के हाटें आवें, वही धरावें, लेखो मांडें लरआई ॥पूरव०॥१०२॥
को ढीलें पतलौ, पायां प्रथुलौ फील पांउ तिण रोगी कौ ।
नामे कर बोलें, गज पय तोलें, पांव हुवें सब कोई कौ ॥
क्या कोई धन धर, क्या निर्धन नर, त्यु नारी पिण का कोई॥पूरव०॥१०३॥
यूं कोई हाथें, बांहा साथें, खंधः माथें गल फूलें ।
के छाती पेटें त्युंही मेटें, पेडु आवें त्यूं फूलें ॥

यूं जांघा आवै, ढींचण जावै, जल सब अंगें सतराई ॥पूरब०॥१०४॥
ज्युं नर त्युं नारै एक विचारै, सब अंगें जल सम होई ।
विण गूभै छोरै, जल न किशोर वृद्धा छोटी क्या कोई ॥
नर एक नवाई, पोतें पाई, और नहीं को ओढाई ॥पूरब०॥१०५॥
कविराजा आवै, नाड़ दिखावै, सरसूं सरसी इण गोली ।
देखंता देसी, पय सूं लेसी, खान पान नहिं पथ मेलो ॥
इक दूध पिलावैं, दूध खिलावैं, दूध वड़ी तिण कहिलाई ॥पूरब०॥१०६॥
पाणी नहिं पावे, लूण न खावै, दूधे भावै ज्युं पावे ।
यूं सेर दुसेरी, धड़ी दुसेरी, के दस हुँवी बध जावै ॥
जे दूधे चढसी, रोगें घटसी दूध वढै, विण मर जाई ॥पूरब०॥१०७॥
इक दूध वड़ी जिम, दही वड़ी इम, इच्छा वटिका तिम ऐसें ।
विषधरें कमावैं, गुटी वणावै, जहिर मिलावैं फिर तेसें ॥
कठे कफ आवै, तौलु खावै, मर जावै के बच जाई ॥पूरब०॥१०८॥
तीनुं ही नामें, त्युं परिणामें, इच्छा वटिका जे भाखी ।
तिण अच्छा आवै, सोई खावै, इच्छा वटिका तिण दाखी ॥
सब शोथ उतारै, अंग समारै, विगरै देही विगराई ॥पूरब०॥१०९॥
इक तेल वणावै, आग चढावैं, अति ऊकालै जब आवै ।
तब अंगुरी दीजै, जलै न सीजै, फरसैं शीतल फरसावै ॥
यूं केती जातै, न्यारी भांतै, पाक तेल सब कहिलाई ॥पूरब०॥११०॥
किलकत्तै कानो, लूणो पाणी, लूनो वायु फिरवावै ।
तिण तेल लगावै, के मरदावै, पीछै नावै सब जावै ॥
जो पाक न पावै, सरसू ल्यावै, तेल बिना को न रहाई ॥पूरब०॥१११॥
इक नाकैं फोड़ी, दोवै तोड़ी, नवसादर की नास दवै ।

फाका करावैं, दिन दो जाये तीजे दिन कछु नाज लिये ॥
जो खबर न पाई, तो विघनाइ, आठ आरोगे मृत पाई ॥पूरब०॥११२॥
इक बंसे पेरी, पोले केरी, नामे चूंगी बोलावै ।
ते ग्वालण रावै. हाथें साहे पोवे तिणसुं पय पावै ॥
पय सब घर देवै, फिरती लेवैं, मच्छी चूंगे मरलाई ॥पूरब०॥११३॥
इक लिंगा कारें, मिट्टी सारें, बैठक मांहेतो छूटै ।
हुय ऊभी टेढो, वैसी ढेढो, धड़ी धड़ा कर सूं कूटै ॥
वट कादो जावैं, पेट फड़ावै, विण महिनत मल न फड़ाई॥पू०॥११४॥
विधनर आराधे, मंत्रे साधे, देवी सुप्रसन दे वाणी ।
पञ्चासित मेघा, गैंडा दीधा, माजे सीधा तिण ठाणी ॥
तिण जंगल जावें तिहां रहावै ब्यापारी संगे ल्याई ॥पूरब०॥११५॥
देवी धरमाली, दोनुं पाली, कार करी तिण बीच रहै ।
बाहिर पग चारैं, गैंडा मारै, मांहे रहितां क्युं न कहै ॥
खग जात सुभावै, फिरचर आवैं, बेही पर मल परठाई ॥पूरब०॥११६॥
मल मुंचन विरियां, दारू भरियां, मारै गोली मल धारै ।
तब आंतां बेधै, एतैं खेदैं, ओहेड़ी गैंडा मारै ॥
अब चाम कढाई, ढाल धणाई, मिलहट रंगे रंगाई ॥पूरब०॥११७॥
लट रेसम लावैं, तूत खिलावै, मसतो पावै घर मंडै ।
घर मांहे पैठें, तिण में बैठें, पक्के घर जब तब रडै ॥
तिण सेती पहिलो, पाणी मेली, उकाले जब उकलाई ॥पूरब०॥११८॥
क्रम रेसम घालै, फिर उथालै, सीजै जब तब चरखी पै ।
तारे विलगावै, चरख फिरावै, सबल पटावै तिणही पैं ॥
यु कीटक कोवें, रेसम होवें, जीतो लट जल सीजाई ॥पूरब०॥११९॥

काटी क्रम जावै, काम न आवै, कोयो निकमौ कहिलावै।
जीतां सीजावै, कांमे आवै, मूंथो सो कामे नांवै ॥
अति दुष्ट कमाई, करै सदाई, निरखी नैणा दिखलाई ॥पूरब०॥१२०॥
खंभ के लटकावै, केते ल्यावै, पात पात कर छीलावै।
सब कुं सूकावे, फेर जलावै, भसमी पाणी भीजावै ॥
पाणी उतारै, कपड़ो डारै, अब ऊकालै उकलाई ॥पूरब०॥१२१॥
गो अश्व मुताली, ठामै झाली, कपड़ो घाली ऊवालै।
युं मल छोड़ावै, कांठै जावै, धोई कपड़ो उजवालै ॥
लो निर्धन होवै, इण बिध धोवै, धन धर रजके धोलाई ॥पू० ॥१२२॥
जो साबण धोवै, साबण होवै, चरबी चूनौ मेलाई।
अब आग चढ़ाई, अति औटाई, साबण किरिया बतलाई ॥
जो द्रव्य दुर्गंधौ वस्त्र सुगंधौ, होवै कैसे कहिलाई ॥पूरब०॥१२३॥
वनराय वखाणूं, नाम न जाणूं, दीठा तरु जे इण देशे।
जे किहां न दीसे, विंशा बीसे, ते इण देशैं सुविशेषै ॥
घण पखी माला, दुझा बाला, सरस सुरे नभ पूराई ॥पूरब०॥१२४॥
रीसैं विकराला, भादौ वाला, घन माला ज्युं तनु काला।
फिरता दंताला, टलै न टाला, मदवाला ज्युं मतवाला ॥
जगल में दीसै, भरिया रीसें, थक पीसैं मानुज धाई ॥पूरब०॥१२५॥
ज्युं ही सुंडाला, त्युं पूंछाला, मूंछाला अति मछराला।
चल चंचल चाला, बीजलवाला, है आफाला हाथाला ॥
गज कुंभ विदारै, गैंडा मारै, माणस री क्या अधिकाई ॥पूरब०॥१२६॥
गैंडा फिर यूंही, आरण त्युंही, टोलै टोलै फिर चीता।
झिंगी में बैसे, माणस दीसे, पकड़ै रीस सुग्रदीता ॥

मानुज कुं मारैं, पेट विदारैं, भूखा सावज भख जाई ॥पूरब०॥१२७॥
देसैं अति ऊंडो, लोकैं लूंठो, लोकैं भूंडो नहीं दया।
पर पीर न आणैं, हुज्जत जाणैं, बढ़िया माणैं गया दया ॥
वार्गे अति वणीयो जाय न थुणियो द्रव्ये कमणा नहिकाई ॥पू०॥१२८॥
वस्त्रैं अति ओन्छो, देश न सुन्छो, बोली काबिल सुं मिलती।
रूपैं अति निबली, पुरुष न सबली, हिसा नारक सुं मिलती ॥
आचारैं उज्वल, चलणैं कज्जल, लज्जा वांति नहीं आई ॥पूरब०॥१२९॥
देहे अति दुकवो, सुकी लुक्खो, पुत्रे सुक्खी को दीसैं।
बसती अति बहुली, लंबी पहुली, सब घर वाड़ी ज्युं दीसैं ॥
म्यानों खड़खड़िया, श्रवणे सुणिया, घर घर दीसैं न नवाई ॥पू०॥१३०॥
जो लोभी होवै, पूरब जावै, जात्रा चाहै सो जावौ।
तीर्थं अति चारु, दर्शन सारू, जन्मन्तर जिन फरसावौ ॥
आवण नाकारो, रोगैं सारो और रीत दिस दिखलाई ॥पू०॥१३१॥
निंद्या नहीं कीधी, सबही सीधी दीठी जैसे ज्युं वर्गे।
त्युं ही मैं भाखी, काण न राखी. झूठ न दाखी इक अगें ॥
जनपद जिन देख्यो, जिणै न पेख्यौ, साच झूठ तिण परखाई ॥पू०॥१३२॥

॥ कलश ॥

घणुं वणुं क्या कहूं कह्यो मैं किंचित कोई।
सब दीठी सब लहै, देस दोठी नहिं जोई ॥
जाणी जेती बात तिती, मैं प्रगट बखाणी।
झूठी कथ नहीं कथी, कही है साच कहाणी ॥
पिण रहिसहू इक बात नौ, तन सुख चाहै देहधर।
नारण घरी अरु क्या पहुर, रहै नहीं सो सुघर नर ॥१३३॥

॥ इति पूरब देश छन्द सम्पूर्णम् ॥
सं० १८७२ रै मिती माघ शुक्ल द्वादश्यां तिथौ गरुवारे।

❀ श्री गौड़ी पार्श्वनाथाय नमः ❀

॥ श्री माला पिङ्गल छंद ॥

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्त सुसिद्ध पद, आचारज उवझाय।
सरव लोक के साधु कुं, प्रणमूं श्री गुरुपाय ॥ १ ॥
प्राकृत तैं भाषा करूं, माला पिङ्गल नाम।
सुरों बोध बालक लहै, परसम कौ नहिं काम ॥ २ ॥
असंख्यात सागर सबे, उपमा कैसैं होय।
श्रुत पूरब चवदै सकल, है अनन्त इह लोय ॥ ३ ॥
जो विद्या सब जगत की, इनमें रही मिलाय।
नदीनाथ के पेट में, ज्यों सब नदी समाय ॥ ४ ॥
पिङ्गल[1] विद्या सब प्रगट, नागराय नैं कीन।
लोक बहिर बुद्धैं कहै, पुन विचार अति खीन ॥ ५ ॥
शेष नाग वाणी रहित, फुनि विवेक तैं हीन।
लघु दीरघ गण अगण की, संकलना किम कीन ॥ ६ ॥
उरपर दुजिह्वा जात में, शेष नाग है मुख्य।
छंद शास्त्र रचना रचै, सो नहिं निपुण मनुष्य ॥ ७ ॥
ए सब कल्पित बात है, विद्या चवद निधान।
पूरब है उनतैं भयो, पट् भाषा को ज्ञान ॥ ८ ॥

---

१ छंद भेद सब ही

× आठ गण—मSSS भS।। ज ।S। स।।S न ।।। य ।SS र S।S त SS।

मंद मती कहै शेष ने, कहे छंद के छेद।
प्राणी सब की चाल पर, ताल छंद के भेद ॥ ९ ॥
थपन कोद है ताल के, तितैं छंद विच्छेद।
ताल छंद की योजना, घटै छेद प्रतिछेद ॥ १० ॥
सबै छंद के ताल के, भेद प्रभेद लिखन्त।
गहन कठिन कुं आज के, देख ग्रन्थ अलसन्त ॥ ११ ॥
यातैं थोरे छंद के, लक्षण करैं सुशुद्ध।
गण अक्षर मत ताल जति, शोधो सकल विबुद्ध ॥ १२ ॥
ताल बन्ध बिन छंद कुं, कैसे हू न कहाय।
ताल भंग तैं छंद की, चाल भंग हो जाय ॥ १३ ॥
बिन तालै सब जीव सुं, चाल चली नहीं जाय।
ताल चूक जिह पग धरै, तिण[1] प्राणी अखड़ाय ॥ १४ ॥
छंद पदै विच यति करी, ताल मान संकेत।
हीनाधिक जति करति गति, भंग होत इन हेत ॥ १५ ॥
प्रत्यक्षैं परिमाण को, भाख्यौ शास्त्र अभाव।
हाथ कंकणै आरसी, किण कारण सद्भाव ॥ १६ ॥
पिङ्गल दधि खीरोधि सम, छंद भेद अणपार।
लघु दीरघ द्वै[2] गण अगण विवरन करूं विचार ॥१७॥

टिप्पणी कृपाचन्द्र जी भंडार प्रति—स्थान अज्ञात
मस्त्रि गुरु स्त्रिलघु श्चनकारो मादि गुरु स्तत श्रादि लघुयः
जो गुरू मध्योमध्य लघूरसो त गुरुवः थितोत लंतन्न घुन्तः ॥

१ तिर २ दो

अथ लघु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथाः—

लघु अकार इ स ते मिलै, त्यों इकार मिल जाय।

पुन उ ऋ लृ सु ह्रस मिलै, पांचू लघु कहिवाय ॥ १८ ॥

अथ गुरु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथाः—

आ ई ऊ ए ह्रस मिलै, ऐ ओ बहुर मिलाय।

औ अं अः ह्रस कूं मिलै, ए नव गुरु कहिवाय ॥ १६ ॥

संयोगी की आदि में, जो लघु अक्षर होय।

ताकूं ही गुर जाण के, मात्रा गिणीयो दोय ॥ २० ॥

पद आदैं अंतै गुरू, तैसे ही लघु होय।

हीनाधिक मात्रा चहै, लघु गुरु मानी सोय ॥ २१ ॥

अथ आठ गण लक्षण नाम वर्णनम् यथा :–(तोटक छंद-इकताल

मगणैं गुरु तीन भगण कहै, गुर एक धुरैं लघु दोय चहै।

जगणैं लघु दो अरु मध्य गुरू, सगणैं लघु दो पुन अंत गुरु॥ २२ ॥

लघु तीन जहां नगणैं भखियै, लघु एक धुरैं यगणै भुणियै।

गुरु दो लघु मध्य गणै रगणैं, गुर दो लघु अंत करौ तगणै ॥ २३ ॥

अथ गण अगण फल अफल वर्णनम् यथाः–(पुनःतोटक छंद)

लक्षमी मगणै जस हो भगणैं, रुज भै जगणैं सगणेय भणै।

सुख आदु करै, यगणे, नगणैं, मरतै, द्रिमरै रगणैं तगणैं ॥ २४ ॥

॥ दोहरा छंद ॥

रूपक के आदे न कर, दाधा अक्षर आठ।
ह ज घ र घ न र भ प प्रगट, पूरव मांहि पाठ ॥ २५ ॥

अथ प्रथम मगण गण सुं सारंगी (इकताल) छंद लक्षण वर्णनम् यथा:-

आदें आठें जत्तें जाणौ, तातें दूजी कीजै हैं।
पादें पादें पत्रें दीर्घा, लघ्वें को ना लीजै है ॥
बीजौ कोई जाणौ भेदा, सो तौ इन में नांही है।
पांचे मग्गा सारंगी में, भाख्यौ पूर्वे माही हैं ॥ २६ ॥

अथ द्वितीय भगण गण सुं दोधक (इकताल) छंदलक्षण यथाः-

च्यार भगन्न बनाय रु आंनहु सोलह मात पदें पद ठानहु।
अंक विचार करौ गिन बारहु, लक्षण दोधक छंद उचारहु[४] ॥२७॥

अथ तृतीय जगण गण सुं मोतीदाम (इकताल) नाम छंद लक्षण यथाः-

पदें पद वेद जगन्न मिलाय, करौ दस दो गिन अंक बनाय।
यताबत पूरब सोलह मात, कहौ इह मोतिय-दाम सुजात ॥२८॥

अथ चतुर्थ सगण गण सुं तोटक नाम छंद लक्षण यथाः—

गण वेद अभेद सगण्ण करै, पद में दस दो गिण अंक धरै।
सब षोड्स मत्त अभिन्न गहौ, कहि नारण तोटक छंद कहौ ॥२९॥

---

४ विचारहु

अथ पंचम नगण सु तरुल नयन[५] नाम छंद लच्छण वर्णन यथाः-

मति गति उकति अति करहु, नगन पच गिन चतुर बहु।
बरणदुदस लघु पद धर, तरल नयन इन पर कर ॥ ३० ॥

अथ षष्टम यगण गण सु भुजंगप्रयाति(इकताल)नाम छंद लच्छण यथाः-

पदै च्यार यगन्न कौ साथ कीजै, भलौ बीस मत्ता सबै ठौर दीजै।
यही पूर्व में भेद याका किया है, भणी राज छंदा भुजंगप्रया है॥३१॥-

अथ सप्तम रगण गण सु कामिनी मोहन(इकताल)छंद नाम लच्छण यथाः

वेद रागन्न को मेल यामैं करै, बीस मत्ता पदैं सर्व मांहैं धरै।
पूर्व वाणी इसी धारकै लीजियै, कामिनी मोहनौं छंद यौं कीजियै॥३२॥

अथ अष्टम तगण गणसु मैनावली(इकताल)नाम छद लच्छण वर्णनंयथा:-

ठाणैं जहां वेद तग्गन्न कूं जाण, बीसूं भली मत्त मेली करै थाण।
भाखी इसी पूर्व में केवली वांध, मैनावली नाम सो छंद कौ जाण॥३३॥

अथ लघु गुरु सम्बन्धित नाराच (इकताल) छद लच्छण वर्णनम् यथाः—

उकत्ति मत्ति गत्ति अत्ति वीस चार हू कला।
मिलाय कैं जु कीजियै सु अंक सोलहू भला॥
इकेक अंक अंतरै लहू गुरु प्रमानियै,
कहो जु पूर्व बीच में नराच छंद जानियै॥३४॥

५ तगण

अथ लघु गुरु सम्बन्धित प्रमाणिका छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सु एक एक अंतरे, लहू गुरू वसू (८) करे ।
कला सु बारहीं गहे, प्रमाण काय यों कहे ॥३५॥

अथ गुरुलघु सम्बन्धित मल्लिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आठ अंक हू गिणाय, दीह चौ लघु मिलाय।
पूर्व उक्ति युक्ति जान, मल्लिकाय यों बखान ॥३६॥

अथ कमल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिल नगणैं लियै, दुतिय सगणैं दियै।
फिर लहु गुरु कियै, कमल कहि दीजियै ॥३७॥

अथ यगण सुंबद्ध भुजंगी संख नारी नाम छंद लक्षणयथाः—

भरो दोय गन्नै, तुकै भिन्न भिन्नै। दसौं मत्त सारी भयौ संख नारी॥३८॥

अथ अद्ध मोतीदाम मालती[६] नाम छंद लक्षण वर्णनम यथाः—

दोहा— जगन दोय कर एक पद, ऐसे पद कर चार।
मत्त आठ इक एक में, मालति छंद निहार ॥३९॥
प्रसन्नह होय कहो प्रभु मोहि। कबै निरधार करौ भव पार ॥४०॥

अथ प्रथम सगण गण सुंबद्ध तोटक तिलका नाम छंद लक्षणयथाः

दोहा— सगण दोय सबमें धरै, पट अंके पद होय।
मत्त आठ इक एक में, तिलका नामैं सोय ॥४१॥

---

६ मालती

करुणा करिये, सुद्दि ऊधरिये। विनतो करिहूं कमलूं फिरहूं ॥४२॥

अथ रगण गण सु भद्रं कांपनी मोहन विमोहा छंद लच्छण यथाः

दोहा सोरठा— रगन धरो इह दोइ, पद पद अंकै पद करो।
माञा दस दस होय, नाम विमोहा छंद को ॥४३॥

संकटै वारिये, दोनकूं तारिये। वावजो कथा कहूं, घाऊ लौ मौ फिरूं ॥४४॥

अथ मोहनी नाम छंद लच्छण वर्णनम् यथाः—
करहु प्रथम मत चार, दूसरै आठ।
मोहनी नाम कहिये पूरव पाठ ॥४५॥

अथ मरकत माला नाम छंद लच्छण वर्णनम् यथाः—
पहिलै कीजै ग्यार, दूजै बारै दोजै।
मरकत माला नाम, ऐसें दो दल कीजै ॥४६॥

अथ दोहा छंद नाम लच्छण वर्णनम् यथाः—
पहिलै पद तेरै करो, दूजो इक दस मात।
तीजै फिर तेरै धारो, दोहा छंद कहात ॥४७॥
तुम विन मोसें पतित की, लाज राख है कौन।
ग्रीष्म ताप को हर सकै, विन मलयाचल पौन ॥४८॥

अथ सोरठा नाम छद लच्छण वर्णनम् यथाः—
पहिलै पद इग्यार, दूजै तेरै मात घर।
तीजै इक दस धार, चौथै तेरै सोरठा ॥४९॥
अति ही चित्त उदास, गौड़ी गौडी जे कहै।
आपै सुक्ख निवास, तिहां उदासी दूर करे ॥५०॥

सोरठा भेद:— पहिलें कीजे ग्यार, तेरे ग्यारे दुतिय पद।
चौथे मात्रा ग्यार, सोहो··· ।।५१।।

सोरठा सोहो— करुणा निध करतार, जग सगलों जंपै सुजस।
वार सर्क तौ वार, नहीं तौ सर्वो··· ।।५२।।

अथ गाहा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदें दो दस कीजें, अट्ठारह बारह दूजै लीजै।
पह नव चौथे गाई, पुव्वं गाहा भारयौ नाम ।।५३।।

अथ उग्गाहा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

अठ सात कला विषमें चरण, समकी इग दस मान।
भणै पूर्व कवि नारग सुनहु, उग्गाहा पहिचान ।।५४।।

अथ चुल्लिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलै पद तेरे धरे, दूजै में सोलै कर लीजै।
सर्व चुल्लिका छंद की, गिन अट्ठावन मत कर दीजै ।।५५।।

अथ चौपाई नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर अठ मत्ता फिर कर सात, सब पद मांहै पनरै सात।
अठ सग मत्ता यति धिति धरौ, छंद चौपाई ऐसै करो।।५६।।

अथ अडिल्ल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

हीनाधिक अक्षर पद कीजे, पै पद दस मत्ता गिन लीजे।
लघु दीरघ को नियम न धरियै, ऐसै छंद अडिल्लै करियै ।।५७।।

अथ तोमर हरए फाल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

करियै सगणिगक लाय, चलि॰ दो जगण मिलाय।

षट् तीन अंक गिरोह, कहि छंद तोमर एह ॥५८॥

अथ मधु मार छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरठा— कर धुर मत्ता च्यार, एक जगन अन्तै धरौ।

औ लक्षण मधु भार, धार करौ कवि उक्ति मति ॥५६॥

कहि हुं पुकार, मुहि तार तार। सुनियै जिनेश, सेवित सुरेश ॥६०॥

अथ विजोहा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

रगणै कीजियै,दोय दो दीजियै। युंगणैं जोल है, सो बिजोहा कहै॥६१॥

अथ हरिपद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरह मत्ता प्रथम करीजै, ग्यारैं बीजै जान।

च्तार दल यौंही कर दीयै सो हरिपद पहिचान ॥६२॥

अथ ललित पद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरह मत्ता आदैं दीजैं, दूजै बारै आनैं।

यही ललित गति ललित पद नाम, छंदैं पूर्व वखानैं ॥६३॥

अथ अनुकूला छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद् उचारी भगन मिलावै, दो गुरु आगैं लहु चउ लावै।

अंत गुरू दो फिर कर लीजै, यूं अनुकूला समय कहीजै ॥६४॥

अथ हाकल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः —

इनमें मात चौदस मेल, ऐसे च्यार पद्द कर भेल।
चौ जत एक पण जत दोय, विरचै समय हाकल होय ॥६५॥

अथ चित्रपदा नाम छंद लक्षण वर्णन यथाः—

दोय भगण्ण करीजै, ज्यौं गुरु दो धर दीजै।
पूर्व कला रवि[१] यामैं, चित्र पदा कहि नामैं ॥६६॥
क्या कहियै तुम ही सूं, तूं सब जाण सबे सूं।
हो करुणानिधि तारौ, मो भव पार उतारौ ॥६७॥

अथ पवंगम नाम छंद वर्णनम् यथाः—

पहिलै कर इग्यार, और दसहू धरौ।
पदमें मत इक्वीस, रगण अंतै करौ ॥
वर कवि धर मति वांकि, समम जति कौ चहै।
छंद पवंगम नाम, नारायण इसौ कहै ॥६८॥

अथ रसावल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

करियै इक दस आदि, बहुर दस तीन मिलावै।
सब मत्ता चौबीस, कली का मेल मिलावै ॥
यति मति कर संभार, नाम कहि छंद रसावल।
इह लक्षण पूर्वोक्ति, जुगति मीठी अति यौं गुल ॥६९॥

१ रवि यामै

अथ पद्धड़ी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

अठ दोय मेल कर यति दिखाय। फुनि पंच एक घर पद मिलाय॥
सं लै मत अंतै, जगण होय। कहि पूर्व पद्धड़ी छंद सोय॥७०॥

अथ दुवहिया नाम छद लक्षण वर्णनम् यथा:—

करियै मात आद सूं सौलै, दूजै दो दस मेलै।
षीसरु आठ एक पद कीजै, ऐसै च्यारुं मेलै॥
दीरघ एक अंक धर अंतैं, अक्षर नियमन कीजै।
यही छंद को नाम दुवहिया, पूरब मांहि वहिजै॥७१॥

अथ शंकर नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

धर आदि की यति मत्त सौलै, दूसरै दस फेर।
इक पदै षीस रु पट करीजै, अंत गुरु लहु हेर॥
ऐसै बणावौ च्यार पद कुं, लखो लक्षण धार।
यूं कहै नारण पूर्व सेती, छंद संकर सार॥७२॥

अथ त्रिभगी नाम छंद लचण वर्णनम् यथा:—

धुरतैं घर दस की दूजी अठ की, फुनि दो पट् की कर तीजैं।
चौथी जति करियै पट मत भरियै, इन अनुसरियै सब कीजै।
दस करियै तिगुणा फिर द्यो धरणा, ऐसैं करणा पद संगी।
पूरब में गायौ लक्षण पायौ, छंद कहायौ तिरभंगी॥७३॥

अथ द्रटपटानाम छंद लक्षण वर्णनं यथाः—

पहिलै दस दो इक धरै, दस दूजै दीजै ।
इण लक्षण सूं द्रटपट, नारण इहि कीजै ॥७४॥

अथ मरहटा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर तैं दस कीजै अठ धर वीजै, तीजै इक दस ठाम ।
गुणतीसूं मत्ता सब संजुत्ता, अंत गुरू लहु धाम ॥
पद मत जुत लावै एकत उपावै, जति[१०] जति कर विसराम ।
नारण कहि करियै चाल बचरियै, छद मरहटा नाम ॥७५॥

अथ लीलावती नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा —

धुर तैं यति एक भरै अट्टारै, दूजी पण नव फेर करै
सब है बत्तीस कला इक पद में, ओसैं च्यारूं मांहि धरै ॥
इनमें नहीं गिणत अंक की गण की, एक गुरु तुक अंत गहै ॥
लक्षण ए मांख्यौ पूर्वं भाख्यौ, यौं लीलावति छद कहै ॥७६॥

अथ पौमावती नाव छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुरली विरत सोल की कीजै, दूजी जोड़ इसो पर लीजै।
सब बत्तीस कला भाखीजै, ओं च्यारूं सम राखीजै।
अक्षर गण की गिणत न भावै, अंतै दो गुरु निहचै ल्यावै ॥

१० यित

कहि नारग द पूर्वे गावै, श्री पौमावति छंद कहावै ॥ ७७ ॥

अथ गीया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

धुर सोलै कीजै एक यति में, फेर दो दस भेलिये ।
कर आठ बीसूं मात पद[1]में, च्यार ऐमें मेलिये ॥
नहिं लहु गुरू का भेद इनमें, रगण अंतै राखिये ।
मैं कहूं पूरब कथन सेती, छंद गीया भाखिये ॥ ७८ ॥

अथ पैड़ी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

इक दस दो धुरै धरियै, ज्यौं पण दस संख्या कीजियै ।
न गुरू लहु का भेद यामें, सब आठ बीस भर लीजियै ॥
अंक गिणती न इसी में, इक रगण अंतै वखाणियै ॥
पूर्व वक्क की जुगत सूं यौ, छंदै पैड़ी जांणियै ॥ ७९ ॥

अथ रुड्ड छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

प्रथम्म पनरै मात कीजै, एकादस दूसरै, तीजै आठ सग भर लीजै ।
चौथे कर दस एक, चौपट पण पांचमे दीजै ॥
राहा सगसठ मत्त कहि, याकौ पूरब धाम ।
जब यामैं दोहा मिलै, रुड्ड छंद कहि नाम ॥ ८० ॥

[1] ११ सब में

अथ कुंडलिया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं दोहा छंद कर, रोडक आगैं देय।
चौथो चरण करै जिको, सो दो वेर कहेय॥
सो दो वेर कहेय, पाय पण एक करीजै।
इक तुक में चौवीस कला गिण गिण मेलीजै॥
माख्यौ लक्षण एह, पूर्व कै मत संघादै।
इह कुंडलिया नाम, मिलै तुक अंतै आदै॥ ८१॥

अथ कुंडलिया छंद,मुनि स्तुतिर्यथाः—

पंखी अरु मुनि जनन की, रीत एक नहि दोय।
वे फिर फिर चेजो चुगै, फिरै गोचरी सोय॥
फिरै गोचरी सोय, रात दिन घन में वासा।
एक दिवस लघु विरख, वड़े तरु पंच प्रवासा॥
पुन निहचै नहीं रहै, ऊडजै दिस विन मंखी।
कहै नारण कवि मीत, मुनी जे आतम पंखी॥ ८२॥

अथ कुंडलिनी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

विषमैं वारै मत्ता बीजै अठार पंच दस चौथै रोडक आगैं दीजै।
भणैं पूर्व कुंडलनी छंद ए कुंडलनी छंद पदैं द्वै वेर भणीजै॥
इकसौ तेपन मात सबै पद में कर दीजै॥

और नहीं कछु भेद, अंत आदैं तुक इसमें।
मिलै यही है रहिस, पढम ते गाहा जिसमें ॥ ८३ ॥

अथ रंगिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

अठ दो कीजे प्रथम लाय, दूजे में अठ मिलाय।
तीजौ अठ पट कर उक्त विचार ॥
योंही जति[12] समझ लच्छन, सोई साधु विचच्छन पूर्व कथन प्रमान,
करौ ऐसैं च्यार ॥
और गण की गिणत नांहि, त्योंही मात कोठ[13] ठांहि,
वरन[14] बरत्तीस एक तुक धार अंतैं गुरु अरु लहु धर और नांहि भेद फिर
ऐसी चाल वही छंद रंगिका उचार ॥ ८४ ॥

अथ रंगी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलै चौ पांच जानियै, दूजै सात ठांनियै,
तीजै एते आनिय अंत पांच है।
वरन अठावीस धरौ, यूं च्यार तुक भरौ,
याकी चाल यौं करौ या जुगत है।
लहु गुरु अंत राखियै, कलकलौ भाखियै, मति छव दाखियै या कहत है।
गुरु लहु गिणत नहीं, यही जानलौ सही,
पूर्वं मांहि एक ही रंगियौ कहै ॥ ८५ ॥

---

१२ जित १३ कीन १४ वरन

अथ घनाक्षर नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर तें सवार कर धरौ वरन षोडस यातें आगे भरे आठ फेर सात लीजियै
सर्व इकतीस कौ प्रमाण जान एकै पद,
ऐसे मति उकति तैं च्यार चारू कीजियै ॥
यामैं लघु दीरघ रयुं गण गण भेद नांहि
अंत मांहि दोय सोय लहु गुरू चहियै ।
भेद छेद पूर्व देख, कह्यो ' सो अशेष लेख
नारण कहत याकुं घनाक्षरी कहियै ॥ ८६ ॥

अथ दुर्मला छंद नाम लक्षण वर्णनम् यथाः—

भर आठ सगन्न मिलाय भरै, पद भेद यही कवि जान करौ ।
इस एक तुकैं सब अक बनावहु, बीस रु चार विचार धरौ ॥
इनमें कछु और कहै नहिं भेद, कला दुय तीस नहीं विसरौ ।
कहि नारण भव्य सुनौ इस चाल्नहि, दुर्मल छंद सही उचरौ ॥८७॥

अथ मत्तगयंद छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद गुरय भगन्न करै, सग एक पदैं गुरु दो फिर दीजे ।
तीन रु बीस मिलावहु अक्षर,मात बत्तीस सबै गिन लीजे ॥
लच्छन जान सुजान बनावहु, भेद इसौ इन सूं समझीजे ।

मत्त मयंगल चालत नारण, मत्त गयंदह छंद कहीजै ॥ ८८ ॥

अथ कड़खा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

कीजिये दोय पद माहि दस दस फिरी, तीसरै आठ दो सात मेलै।
सर्व मत तीस अरु, सात उपर धरे, दोय गुरु अंत में सही मेलै ॥
राग कड़खा कहै, चाल याकी यहै,[१५] ताल दै तान सु मान लावै।
लछन इनकौ गही, छंद कड़खा कही, पूर्व के कथन सूं मति मिलावै ॥८६॥

अथ भूलणा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

मिलै आठ यगान्न कौ साथ याकै कछु, और तौ भेद याकौ नहीं है।
सबै मत्त चालीस चालीस पूरी धरौ, अंक चौबीस यामैं सही है।
कली च्यार ऐसी भरौ, चाल याही करौ, बालके भूलणा यौं भुलावै।
दुए वाल दीजै, इसी गत्त लीजै, यही ढाल तौ भूलणा छंद पावै ॥६०॥

अथ सवैया छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

धुर तैं विरत धरौ दस पद सुं पण दस की दूजी कर मेल।
सब मत तीस एक कर पद में, अंक गुरु लहु अंतै भेल ॥
और न कोई गण की गिणन, अंक न गिणती यामैं कोय।
बेतालै सैं चाल इसी की, नारण छंद सवइया सोय ॥ ६१ ॥

---

१५ लहै

अथ षटपदी चाल छं छप्पय नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः —

नहिं लहु दीरघ नियम, आठ सौलै मत करियै।
ग्यारै तेरै लत्त अन, चाह तुक भरियै।
एक रसाउल नाम, दूसरै वस्तुक कहियै।
अंतैं दो की विरत, पंच दस तेरह चहियै।
सब पट पद तामैं हूं रहे, इनमे वर अठवीस नहि
याकी गति यूका चाल पर, छप्पय छद कविता कहि ॥६२॥

अथ साडी पूर्व देशीय रागणी सम्बन्धित साटक नाम छद लक्षण वर्णनम् यथाः —

आदि दो दस अंक निसंक कीजै दूजै करै सातहू।
पहिले नव दो सात मात लीजे बीजै धरै चारऊ
पनरै दुणा धार कला करियै, अंते गुरू राखिये
पद मैं नौ नौ एक वरण भरियै पूर्वे कहै साटक ॥६३॥

अथ तुंगय छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नगन दुय धरीजै, सु अठ वरन कीजै।
दुय गुरु धर अन्तै, तुगय लख भनंतै ॥ ६४ ॥

अथ कमल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः —

पण वरन साधियै, लहु सहु आराधियै।
रगन धर अंत तै, कमल इम भत तै ॥ ६५ ॥

अथ मीना क्रीड़ नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद भगणै करिये फेरतगणै धरिये।
पैल लहुतैं गुरु है, नामहु मीनाकिड़ है ॥ ६६ ॥

अथ महा लक्ष्मी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

तीन मेलै रगण्ण भला,एक में पन्नरै हू कला।
या तरै च्यार कूं ही करौ, यूं महा लच्छि गण्णैं भरौ ॥ ६७ ॥

अथ पाइत्त छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं जाकै भगन करे, ताकै आगै भगन भरे।
वाकै आगै [१६]सगन गहौ, यौं पाईत्तैं समझि कहौ ॥ ६८ ॥

अथ इन्द्रबजा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं तगण्णै वर दोय कीजे, अंते जगण्णै फिर एक दीजे।
पादंत दो गुरु धार राखै, सो इन्द्र वज्रा विबुधेश भाखै ॥ ६६ ॥

अथ उपजाति उपेन्द्र वज्रा गुरु एकताल छंद्र लक्षण वर्णनम् यथाः-

धुरंत एकेक जगण्ण कीजै, बिचै फिरी एक तगण्ण दीजै।
पदन्न दो दीह विचार राखै. उपेंन्द्र वज्रा विबुधेन्द्र भाखै ॥१००॥

अथ पुष्पताग्र लघु (इकताल) छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

ननरय जिसमें पदैं सुधारै. नजर[१७] एक गुरु समैं बधारै।
इस विध लंद धारके करीजै,इन रचना वर पुष्पितामहीजै[१८]॥१०१

अथ द्रुत विलंवित गुरु[१९]ताल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नगन[२०]एक भगन्न दुए करौ, तिनहि अंतर नम्रकिरी धरौ।

१६, अंते १७ नजर, १८ महीजे, १६ एक, २० नगन।

इस विधे लखि लच्छन लीजिये, द्रुत विलंबित छंद करीजिये॥१०२

अथ कुसुम विचित्रा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

प्रथम नगणऐं यगण करीजै, नगण यगण्णैं फिर धर दीजै ।
इन विधनायै विरचह प्यारौ, कुसुम विचित्रा रहिम विचारौ ॥१०३

अथ गुरु एक ताल स्रग्विणी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

मध्य यामैं लघू सोय रगण्ण है, च्यार ऐमैं धरि एक पद्दैं कहै।
और यामैं नहीं भेद को जानियै,स्रग्विणी छंद को नाम वखानियै॥१०४॥

अथ लघु दोय ताल मणिमाला नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

तो यो फिर तीयो गण्णै समभीज जत्तैं पद अंकै च्यारू पद लीजै ।
यामैं कछु औरैं भेद नहीं जानो ऐमैं मणिमाला छंदै पहिचानो॥१०५॥

अथ लघु दोय ताल ललिता छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

यामैं प्रथम्म तगणैं करीजियै, ताहो तलैं भगण कू धरीजियै ।
यौंहो जगण्ण रगणंत धरियै, भासै सुबुद्धि ललिता उचारियै ॥१०६॥

प्रथम तीन गुरू ताल दीजै, पछै लघु दोय ताल (दो दो)दीजै,
अंते गुरु ताल दो एक पद में दीजै

वैश्वदेवी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

प्राथम्मैं कीजै दो मगण्णा मिलाई, ता आगै दीजै दोय गण्णा मिलाई ।
ऐसे जत्ते वैश्वदेवी गुणीजै, यूं पूर्व भाख्यौ ज्ञान सुकि मुणीजै॥१०७॥

इसौ नवमालिनी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

इस विध कीजियै सुगन धोरी, नगन जगन्न दो बुध विचारी।
भगन्न यगन्न यूं समझ लीजै, यह नव मालिनी लछन कीजै॥१०८॥

अथ क्षमा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नगण दुय करै तगण्ण दोय दै, प्रथम सग धरी फेर दो चौवदै।
इस विधि यति सूं अंत दीर्घ गहै.इह लछन धरै सो क्षमा नाम है॥१०९॥

अथ मत्त मयूर नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

कीजै आदै ज्यु मगणैं फेर तगणैं,तावैं आगै दोय गणैं मेल सगणैं।
च्यारै नवै यत्त धरी नै पदपूरै अंतै दीजै एक गुरु(पद)मत्त मयूरै॥११०

अथ मंजु भाषणी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुरैं करौ एक जगणैं तगण्ण कुं फिरी धरीजे सगण्ण यूं जगण्ण कूं
पदंत दीजै गुरु सु बुद्धि राखणी,यहो य नामैं प्रवर मंजु भाषणी॥१११॥

अथ माया नाम छद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदै दीजै पांच गुरु सगण लीजै. तैसें ही कीजै भगणैं दो गुरु दीजै
ऐसे धारै च्यार पदै अक्षर तैरै,मत्ता बावीसूं भरमाया धुनि टेरै॥११२॥

अथ प्रहरण कलिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

प्रथम करहु दो ननगन भगन कुं, फिर तिह धरियै नगन सगुरुकुं।
सब पट[२३]गिनीयै दस पट कलिका. कर वर बुद्धि तैं प्रहरण कलिका॥११३

अथ वसन्त तिलका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदै करै तगन फेर भगण्ण कीजै, तैसें फिरी जगन दोय गुरु दु दीजै

२३ मत

ऐसैं सुधार धरियै यर अंक मेली,जाकौं वसन्त तिलका कवि बुद्धि भेली॥११४

अथ सिंहोद्धता नाम छंद लच्छण वर्णनम् यथाः—

कोजै धुरै तगण एक भगण्ण एक, दो दे फिरी जगण एक गुरु विवेक
अंतै लघू समक्ष साथ गुरु न देय,[२४]सिंहोद्धता सुकविता कथिता प्रमेय॥११५

अथ उद्धर्षिणी नाम छंद लच्छण वर्णनम यथाः—

धारौ प्रथम्म तगणं[२५]फिर दो भगण्ण, दो दीजियैं जगण दीह लहूय वण्ण।
अैसें सुधार करियै अति वक्र धार,उद्धर्षिणीय कहियै करियै विचार॥११६॥

अथ मधु माधवी नाम छंद लच्छण वर्णनम यथाः—

कोजै तगण्ण धुर फेर भगण्ण देय, ताहि पछै करसुं दोय जगण्ण लेय।
अैसें सभार धरियै गुरु दो समीय,अंतै लघु कर लियै मधु माधवीय।११७

अथ इन्दुवदना नाम छंद लच्छण वर्णनम यथाः—

आद करियै भगन कुं फिर जगण्णं,ता ताल[२६]दियै सगन हू नगन भण्णं।
दोय गुरु अंत धरकै सु पद पूरैं,इन्दु वदना इस विधै कर सनूरैं॥११८॥

अथ अलोला नाम छंद लच्छण वर्णनम यथाः—

आदैं धार मगण्णैं दीजै, फेर सगण्णं, ता आगैं मगणैं ज्युं त्युं ही मेल भगण्णैं।
या रीतैं करियै दो अंतै दीह धरोजै, याकौ नाम अलोला सारैं छन्द करीजै॥११९॥

अथ शशिकला नाम छंद लच्छण वर्णनम यथाः—

धुर चउ नगन फिर इक सगन है, इस विध धर कर चतुर पद गहै।

---

२४ दोय २५ मगणै २६ तल

गिन पट दसहि वर इसमहि कला। पण दस वरण तिह[२७]इह शशि कला ॥ १२० ॥

अथ मणिगुण निकर नाम छंद लच्चण वर्णनम यथाः

प्रथम चउ नगन सहित सगन सूं. चतुर चतुर पद करइ सविध सूं
अवर सबहि लहु गुरु चरम धरैं, अठ सग जति हुय मणि गुण निकरैं ॥ १२१ ॥

अथ मालिनी नाम छंद लच्चण वर्णनम यथा।

नगन दुय करीजै फेर मग्ने धरीजै,यगन यगन दीजै पाय पूरो भरीजै
इन विध रचनायें साधियै भेद यामें, लहु दुय दुह तालै मालिनी छंद नामें ॥ १२२ ॥

अथ प्रभद्रक नाम छंद लच्चण वर्णनम यथा.—

नगण करै प्रथम्म जगण्यैं धरीजियै,भगण जगण्ण धार रग यांतदीजियै।
करहु सुधार मात पट तीन रुद्रकं, इह विध छंद जात कहियें प्रभद्रक ॥ १२३ ॥

अथ एला नाम छंद लच्चण वर्णनम यथा:—

कहिके धुरै सगन जगन धर दीजै,उनतै दुए नगन यगन धर लीजै
पण कीजै ते मत नव दस कर मेला, इनतै कहे बुध वर कवि नर एला ॥ १२४ ॥

अथ चन्द्रलेखा नाम छंद लच्चण वर्णनम यथा: —

आदैं धारै मगण्णो तातै रगण्णैं [२८] कहीजै,
आगें मगण्ण राखे त्यूं यगण्णा दोय दीजै ।

२७ जिहविह २८ क कीजै

याकी संभार जती पूर्वं कहि सात गेया।
ताकू आठैं समारैं यूं होय है चन्द्र लेखा ॥१२५॥

अथ ऋषभ गज विलसित नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

धार सुधार कै भगन धुर करई कहु।
ताहि तलैं धरै वर रगन बुधि नरहु॥
फेर दियैं नगरण तिय गुरु इक धरनैं।
नाम कहैं विबुध ऋषभ गज विलसतैं॥१२६॥

अथ वाणनी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

धुर धरियै नगरण जगणों भगरण लावै,
जगण रगरण देय पद अंत दीह आवै,
चतुर विचार वीस दुय मात सबै दीजैं।
इस विध पूर्वैं कहित वाणनीय कीजैं॥ १२७॥

अथ शिखरणी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:

प्रथम्मैं साधीजैं यगण मगणों नगण करैं,
फिर पाछे दीजै सगण भगणों हू बुध धरै।
पदन्तै दो धारैं इक लहु गुरुलक्षण भणी,
रसैं रुद्रैं जति उनहिं कहि नामैं शिखरणी॥१२॥

अथ पृथ्वी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

धुरैं जगण दे फिरी सगण यूं जगण्यौं करै,
पली सगण कीजियै यगण धार पांचे भरै।

दिये लहुय अंत में गुर इकेक देई रचै,
यही लछन जरा है अठ नयै पृथव्वी रुचे ॥ १२९ ॥

अथ वंश पत्र पतित नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आद दिये भगएण रगणै नगण फिर लिये,
ताहि तले भगएण नगणैं लग चरम दिये।
आदि विधैं कथोजन करै अति उकति छतै,
धारहु वंसपत्र पतितैं दस सग यतितैं ॥ १३० ॥

अथ हरिणी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

धुर धर दिये नगणौ कैं सगण्ण बसेराहू,
मगण रगणौ यूं ही लीजै सगएण फिरी लहू।
चरम करिये दीर्घ एकै मृगै गति ए गहै,
षट चउ सगैं जत्तैं मेलैं तिणैं हरिणी कहै ॥ १३१ ॥

अथ मन्द्राक्रांता नाम छद लक्षण वर्णनं यथा—

आदैं होजै भगण[२९] भगणै तगणै फेर आणैं,
पाछै कीजै तगण तगणै अंत दो दीह ठाणै।
ऐसें धारैं सरव गण कुं पाद पूरौ लहीजै,
मन्दाक्रान्ता चउ षट संगै जत्त याकी कहीजै ॥ १३२ ॥

अथा नर्कुटक नाम छद लक्षण वर्णनम् यथा—

प्रथम धरै नगण्ण जगणै भगणै करिये,

---

२९ मगण

उनहि तलै अगएण जगयौं ल गुरु भरियै ।
इस विध कीजियै पयद दो इक अंक तुकैं,
दस दस दोय मात पद मैं कर नर्कुटकै ॥ १३३ ॥

अथ कुसुमितलता वेल्लिता नाम छंद लचणम् यथा—

आदै धारीजे मगण तगणौ फेर दीजै नगण्णौं,
ता आगै लीजे यगण यगणौ और राखै यगण्णौ ॥
या चालै छंदा कुसुमित लता वेल्लिता नाम जांणौ,
यौं जत्ते कीजै पण पद सगे लच्छयौ हू विद्याणौ ॥ १३४ ॥

अथ मेघविस्फूर्जिता नाम छंद लचण वर्णतम् यथा—

करीजे आदैं यूं यगण मगणौं नगणैं त्यूं सगण्णौं,
फिरि पाछै दीजै रगण रगणौ अंत में दोह भण्णैं ।
इसी रीतैं धारै तिनहि कहियै मेघ विस्फूर्जिता है,
भली उक्तैं कीजै पद पद सगैं अत्त याकी कहा है ॥ १३५ ॥

अथ सार्दूलविक्रीड़ित नाम छंद लचणम यथा—

आदैं धार मगण्ण फेर सगणौ जगण्ण पाछै धरै,
आगे ताहि सगण्ण मेल तगणै तगण्ण दूजौ करै ।
ऐसै बुद्धि विचार पाय भरियै दोहूंक दे अंत तै,
बारै वण्ण सुधार जत्त करियै सार्दूलविक्रीडितै ॥ १३६ ॥

अथ सुवदना नाम छंद लचण वर्णनम यथा—

आदैं कीजै विचारी मगण रगणहू भगण्ण करियै,

ताके आगे करीजे नगण यगण कूं भगण्ण धरिये।
पादते दोय दीजे लहु गुर वरणौं पूर्वोक्त वचना,
याही रीतें सुधारी सग सग जतियें नामें सुवदना ॥ १३७ ॥

अथ स्रग्धरा नाम छंद लक्षणम यथा—

आदें दीजे मगण्णौ फिर रगण धरे भगणें भेल दीजे,
त्योंही लीजे नगण्णौ वलिय (तया) दुए यगण्णौ फेर कीजे।
बीजों को नाहि भेदा सग सग जतिये धार संभार राखे,
औसे अंके समारि कविवर करिये स्रगधरा पूर्व भाखें ॥१३८॥

अथ प्रभद्रक नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आद करीजिये भगणहू रगण्ण नगणौ रगण्ण करिये,
ताहि तले दिये नगण कूं फिरि रगण यूं नगण्ण धरिये।
या विधि धारके गण धरें इकेक गुरु अंत दे पद भरें,
दो अठ अक्षरें जति गहें यही वाक्न सूं प्रभद्रक करें ॥१३९॥

अथ अश्वललित नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

धुरि धरिये नगण्ण जगणो भगण्ण फिर दीजिये बुधि वरें,
तिनहि तलें जगण्ण भगणौ दिय वलि जगण्ण भगण धरें।
इण विधतें सर्व गण धरें लहु गुरुय अंत में दुय लहे,
इक दश दो दसे जति करें जदाश्वललिताख्य चाल चलिहै ॥१४०॥

अथ मत्ताक्रीड़ा नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

आदैं धारैं दो मगण्णौ अति ललित मति करहु धर तगणौ,
ता पाछैं दीजै नगण्णौ सरय लहु लख्न नगन तिय भणै।
ऐसें कीजै ग्यारूं पाया इक लहुय गुरुय चरम फिर धरैं,
मत्ताक्रीडा नामैं छंदा अडयरण पण दस अति युति करैं॥१४१

अथ तन्वी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आद करीजै भगन फिर करैं तगण्ण और नगण धर दीजै,
फेर सगणै करहु भगण फुं ताहि तलैं पुन भगण धरीजै।
दोय[३०] नगण्णौ फिर यगण करैं च्यार सुधार धरहु पद गिन्नी,
होय इसीकै जति पण सग तैं दो दस तैं मति धर कर तन्वी॥१४२॥

अथ क्रौंच पदा नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आदिम राखै भगण्णौ पुन करहु मगन लघु हर धर कैं,
तहि तलै दै एक सगण्णै पण पण अठ जति कर पद गिन कै।
त्यु हि करीजै फेर भगण्णौ नगण चतुर गुरू इक चरम गहै,
क्रौंच पदा से नाम भणीजै जिन समय कथन कवि जनहि लहै॥१४३

अथ भुजग विजृंभित नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आदैं धारैं दो मगण्णै फिर तगण लहु गुरू दुय पदतहि दीजियैं,
पाछैं राखैं दो नगण्णौ त्रतिय नगण विबुध रचैं रगणियुक कीजियैं।
ताकै आगै सगण्णौ कै अठ इक दस जति गिन कै भली पर कीजतैं,

३० देय

पूर्वं भाख्यौ ऐसो छंदा शुभतर सुरधुनि नकरै सुजंग विजु मितै॥१४४

अथ ग्रन्थ परिसमाप्ति प्रशंसा कथनम—

दोहा ।

आद् मध्य मङ्गल करन, सपूरन के हेत ।
अन्तिम मङ्गल हर्ष कौ, कारन कवि संकेत ॥ १४५ ॥
जो दधि मंथन की क्रिया, ताको तोलु खेद ।
माखन निकसै मथन कौ, उद्यम खेद निषेध ॥ १४६ ॥
परिसमाप्ति ग्रन्थै भई, इष्ट कृपा आयास ।
नौका बिन दधि तिरन को, को करि सकै प्रयास ॥ १४७ ॥
जवू द्वीपै मेर सम, और न को ऊतुंग ।
त्यूं शरीर मय गच्छ सकल, खरतर गच्छ उतमंग ॥ १४८ ॥
गीर्वाण बाणी सारदा, मुख तै भई प्रगट्ट ।
यातै खरतर गच्छ मैं, विद्या कौ आर्सट्ट ॥ १४९ ॥
ताके शिखा समान विभु, श्री जिन लाभ सुरीश ।
ज्ञानसार भाषा रचो, रत्नराज गणी शीश ॥ १५० ॥

चौपाई—

संवत कायँ फिर मय देय, प्रवचन मायँ सिद्ध शिश लेय ।
फागुण नवमी ऊजल पक्ष, कीनो लक्षण लक्ष विपक्ष॥ १५१ ॥
रूप दीपकै बावन किये, वृत्तारत्न मैं केते लिए ।
चिन्तामणि तै केई देख, रचना कीनो कवि मति पेख ॥१५२॥
नहिं प्रस्तार न कर वर्दिष्ट, मेरु मर्कटी न कियौ नष्ट ।

आधुनकाली पंडित लोक, ग्रन्थ कठिन लखि देहैं धोक॥१४३॥

॥ दोहा ॥

इक सौ अठ दो मेर के, रचि किए मतिमंद।
यातैं योकूं भाखियौ, नामैं माला छंद॥ १४४

॥ इति श्री मालापिङ्गल छंद सम्पूर्णम ॥

सं० १८८४ चैत्र शुक्ल १० शनौ पं. जेठा पठनार्थे लि० श्री विक्रमपुर नगरे महोपाध्याय युक्तिधीर गणि लिपीचक्रे।

॥ श्री माला पिङ्गल छंद सूची ॥

—इति छंदांसि—

॥ इति माला पिङ्गल छंदः सूची संपूर्णम् ॥

परिशिष्ट (१)

अवतरण संग्रह

पृष्ठ पंक्ति अवतरण

३५ २४ "अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चग्घाड़ियो चिट्ठइ।"

१४६ १३ " " "

३६ १६ यत्सत्त्वे यत्सत्व मत्वयः तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः।

४१ ७ 'तिन्नाणं तारयाण'। (नमोत्थुणं से)

४१ १५ अन्वय लक्षणमाह—यत्सत्वे यत्सत्त्वमन्वयः स्वरूप सत्वे परमात्मता सत्वं मृ अथ व्यतिरेक लक्षण माह-तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः स्वरूपाभावे परमात्मताभावः

८१ ६ न रंगिज्जा न धोइज्जा। (आचाराङ्ग)

१५६ १६ " "

८१ १३ "आरंभे नत्थि दया" दयामूले धम्मे पन्नते।

३५६ ७ " " "

८१ २० हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ

३५६ ६ " " " (पञ्चमांगे)

८२ १० पूयानिरारंभिया।

८३ ६ मदुक्तिः—मारे मत के ममत के करै लराई घोर।
जे आपण मत मे नहीं, कहै जिनागम चोर॥
(मतिप्रबोधछत्तीसी पृ० १५५)

८४ ५ अभयं सुपत्तदाणं, अणुकम्पा चिय कित्तिदाणं च।
दुन्नवि मुक्खो भणिओ, तिन्नवि भोगाइया हुंति॥

८५ ४ मन एव मनुष्याणां कारण बंध मोक्षयोः।
(चाणक्यनीति, पार्श्वनाथ चरित्र)

८५ ६ आगम आगमधर नै हाथें नावै किन विध आंकू।
किहां किंणे जो हठकरिनै हटकू वौ व्याल तणी पर
वांकू हो।। आनन्दघन कुंथुजिनस्तवन)

८६ ६ विवहारो विहुवलवं जं छउमत्थंच वंदए अरिहा—
आवश्यक-निर्युक्ती

८६ १२ किरिया वड़पत्त समा १८४ १६, ३५७-५, ३७६-८,
४१७ ३ (स्थानागे)

८७. ७ आनंदघन कहै—"निहचै एक आनंदो"
पुनः निहचै,सरम अनंत (पद नं०)

८८ १७ मदुक्तिः—आतम शुद्ध सरूप कौ, कारण जिनमत एक।
हमसे भैसे भेषधर कीच कियौ एक मेक॥
(मति-प्रबोध छत्तीसी देखो पृ० १७६)

'१४१' १५ अन्न गिलायवेत्ति अन्नं विना ग्लायति ग्लानो भवति
अन्न ग्लायक प्रत्यम कूरादिं निष्पत्ति यावत् बमुक्षातुर
तयाप्रतीक्षितु मेशक्नुवन् यः पयुत्त कूरादि प्रातरेव भुंक्ते
कूरगड्डुक प्राय इत्यर्थः [भगवती सूत्र]

१४१ २० सव्वेसु पि तवेसु कसाय निग्गह समं तवो नत्थि

जं तेण नागदत्तो सिद्धो बहुसोवि भुंजंतो ॥
[पुप्फमाला प्रकरणे]

१४२ १८ वर्षंति मेघ कुणालायां, दिनानि दस पञ्च च ।
मूसलधार प्रमाणेन यथा रात्रौ तथा दिवा । १ ।

१४३ १४ "जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहोव वड्ढइ
दोय मास कणय कज्ज कोडीएवि न नट्ठइ ॥"
(उत्तराध्ययन सूत्र अ० ८ गा०१७)

१४४ १० अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमति लोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥

१४४ १५ "विवहार नयच्छेए तित्थच्छेओ जओ भणिओ ।"
१८३ ६ १८६ ५ ३६४ ४ " "

१४५ १६ "ऋतेज्ञानान्न मुक्ति" अनुभूतिस्वरूपाचार्य कृत व्याकरण

१४८ ६ १८६ ३ ३५८ ५ ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

१४८ ६ हयं नाणं कियाहीणं हया अन्नाणिणो किया
१८६ पासंतो पंगुलोदड्ढो धावमाणोय अंधलो
४१५ २० " " "

१५० ६ कालो सहाव नियइ पुव्वकयं पुरसकारणे पञ्च
३७१ समवाए सम्मतं एगंते होइ मिच्छत्तं ॥ १ ॥

१५१ १६, १८५ १५, १८६ ५, ३६५-२२ एगंते होइ मिच्छत्तं
(उपर्युक्त कालो० श्लोक का चतुर्थ)

१५० १३ आनंदघन—काललब्धि लहि पंथनिहालसुं (अजित-स्तवन)

१५२ १६ "जोलू घट में प्राण है, तौलू वीण वजाय"

१५८ २२"प्रेत की सी पुरी, मधु लेपी सी छुरी" एवुं समयसार
वालो कहे छे क्रिया ने

१६० १६ जीवी आस मरण भय विप्पमुक्के।

१६१ १६ आत्मातु पुष्कर पत्रवन्निरूपलेप।

१६१ २० "सिद्ध सतातन जो कहूं, तौ उपजे विनसे कौन"

पुनरपि—शुद्ध स्वरूपी जो कहूं बंधन मोक्ष विचार
न घटै संसारी दशा पुण्य पाप औतार

१६१ ८ „ „ (आनन्दघन पद २१)

१६२ १६ कनकोपलवत् पयड़ पुरुष तणी, जोड़ी अनादि सुभाव
(आनन्दघन पद्मप्रभ स्त०)

१६२ १८ ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा स्वभ्रमेववा

१६३ १५ रूपी कहुं तो कछु नहीं, (आनन्दघन पद नं०८१)

१५"षट दरसण जिन अंग भणीजै" („ नमिनाथस्तवन)

१६७ १३ अप्पे समणा बहवे मुंडा

१६८ १२ पंखी पग आकाश

१६ जिय कोहा जियमाणा

१६६ १७ स्मृते भिन्न ज्ञानमनुभव

१७१ १५ आसवा ते परीसवा, परिसवाते आसवा (आचारांगे)

१७१ १२ बाह्य कष्ट थी ऊंचूं चढ़वुं, ते तो जड़नो भाव।
संयम श्रेणिशिखर पर चढ़वुं ते निज आतम भाव॥

१८८ १५ „ „ „
योग क्रिया वलि तेह—एहवुं १२ भावना में कह्युं

१७२ १५ ढूंढत हारी रे, सुनियत याहूं गाम। ढू०।
जिन ढूंढ्या तिन पाइयौरे, गहिरे पानी पैठ
हूं भूंडी डूबत डरी, रहिय किनारे पैठ। ढूं०।

१८६ ५ नमुकारसी व्रत नहीं, करतो कूर आहार
भावशुद्ध ते सिद्ध हैं, कूरगडू अणगार
भाव शुद्धता जो भई, तो कहाक्रिया को च्यार
दृढ़प्रहार मुगते गयौ, हत्या कीनी च्यार
(श्रीमद्कृत भावषट्त्रिंशिका)

१८६ २३ पढमे पोर सिज्झायं बीए झाणं तीए गोयरि कालं
३८३ चउत्थेपुणरवि सिज्झायं रात्रे पढमे पोरसि सिज्झायं
बीए झाणं तीए सयणकालं चउत्थे पुणरवि सिज्झायं—

१८७ २० मदुक्ति—पूर्वकोड़ि देशोनता, क्रिया कठिन जिन कीन
कूरुड़ बकुरड नरक गति, अशुद्ध भाव तें लीन। १।
(भाव छतीसी)

१८८ ५ यः क्रियावान् सः पण्डितः
१५ आनंदघन मुनि कहे—जबलग आवे नहीं मन ठाम,
तब लग कष्ट क्रिया सब निष्फल, ज्यूं गगने चित्राम।

नोट—वास्तव में यहां लिखने में नाम भूल प्रतीत होता है। इस पद के रचयिता उपाध्याय यशोविजय हैं। (दे० गुर्जरसाहित्य संग्रह पृ० १६४)

१८६ ६ नाणेण जाणए भावं दंसणेण च सद्दह

चारित्तेण मणुन्नाई तवेण परिसिज्झइ ।

(उत्तराध्ययन अ० २८ गा० ३५)

१८६ ६ संजोग सिद्धि अफलं वयंती नहु एग चक्केण रहो •पयाई।

४१६ ६ अंधोय पंगूय वणे समेच्चा तेनं पउत्ता नगरे पविट्ठा ॥२॥

१८६ १४ आनंदघन मुन्युक्ति :—

ज्ञान धरो करोसंयम किरिया न फिरावो मन वाम।
चिदानंदघन सुजस विलासी प्रगटै आतमराम ॥

(वास्तव में यह यशोविजयजी रचित पदका अंश है दे० गु० सा० सं० पृ० १६४)

१८६ २० पढमं नाणं तओ पवत्ति (दया) (दश०अ० ४ गा० १०)

२२२ ६ दिवस प्रते दिये सुजाण, सोना खंडी लक्ष प्रमाण।
तेहनै पुण्य न हुवै जेतलो, मामायक कीधां तेतलो ॥

२२७ १४ फूहड़ लंबोदर खर दशनी पृ० ६७

२४२ १६ "दौड़त दौड़त दौड़ियो, जेती मन नी रे दौड़।
प्रेम प्रतीत विचारो ढूकड़ी, गुरगम लेज्यो रे जोड़ ॥"
पुनः बंधमोख निहचै नहीं पुनः निहचै सरम अनंत
(आनन्दघन धर्मनाथ स्त)

अचलअबाधित देवकूं हो खेमसरीर लखंत एवा मदुक्तिः

२४३ १ निजस्वरूप निरचैनय निरखूं, सुद्ध परम पद मेरो।
हूंही अकल अनादि सिद्ध हूं, अजर न अमर अनेरो।

३२१ २० „ „ (बहुत्तरी पद १२ पृष्ठ ४१)

बंध मोख नहिं हमरै कबही नहीं उपपात विनाशा।
शुद्ध सरूपी हम सब कालै ज्ञानसार पद वासा॥

(पृष्ठ ५८)

२४४ ७ जो अप्पा सोई परमप्पा

२५४ १४ काल पाक कारण मिल्यै सहिज सिद्ध ह्वै जाय।
विन वरषा फूलै फलै, ज्यों वसंत वनराय॥

(पृष्ठ १५१)

२५७ १३ उट्ठाणेण कम्मेण परकम्मेणं बलेणं विरिण्णं पुरसक्कार परकम्मेति —भगवती

२६१ १६ पणवारा अवसमियं

२७१ १२ काल सत्त्वे सर्व पदार्थ सत्त्वं कालाऽभावे सर्व पदार्था-भावेति राद्धान्त.

२७२ ६ काल सृजति भूतानि काल. संहरते प्रजा.।
काल सुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः॥१॥ पुनरपि
काले फलंति तरव. काले बीजं च वापयेत्
काले पुष्पवती नारी सर्वकालेन जायते॥२॥

२७२ १८ वस्तुनः परणमनं स्वभावः परणमनत्त्वं च किं नाम वस्तु धर्मत्त्वं परणमनत्त्वं यत्र यत्र वस्तुत्त्वं तत्र तत्र परणमनत्त्वं परणमनत्वेन बिना पदार्थस्यापत्तिर्नस्यात् इति भावः इत्यनेन कृत्वा पदार्थस्य मूलकारण स्वभावैन दर्शित यत्र यत्र स्वभावत्त्व तत्र तत्र पदार्थत्त्वं यत्र यत्र स्वभावत्त्वा भाव स्तत्र तत्र पदार्थत्त्वाभावेतिराद्धान्त

२७४ ११ यस्मिन् यस्मिन् भावे यत्तद्व्यवस्थाभवनं तन्नियतत्वेति राद्धान्तः नियतत्व शब्दस्य सर्वेषु पदार्थेषु कार्य कारणताऽस्ति तदेव दर्शयति कार्यं भवितव्यं कारणता भवितव्ये पदार्थेषु तदैक्यत्वं इत्यनेन कृत्वा भवितव्यस्य पदार्थेन सह कार्य कारण भावता दर्शिता।

२७५ २० इदमपूर्वस्य लक्षणंकिं नाम अपूर्वत्वं पूर्वमुपार्जितं जीवेन शुभाशुभ कर्म तत् पूर्वोपार्जितं पुनः पूर्वोपार्जितः पूर्वोपार्जितेः पूर्वोपार्जिताः कुत्रवर्ततेपूर्वोपार्जिते पूर्वोपार्जितं च तत् कर्मं च पूर्वोपार्जित कर्म तस्मिन्नेव पूर्वोपार्जित कर्मेतति।

२७७ ३ कारणेन कृत्वा निष्पद्यते तत्कार्यं पुरुष निष्टौत्पत्तिना कृत्वा निष्पद्यते सत् पुरुषकार्य यथा देवदत्तेन घटः क्रियते तत्र घट निष्टौत्पत्त्यनुकूला मृपिण्डः कुलाल चक्र चीवरादिका या क्रिया सा घट निष्टोत्पत्तेः कारणं कार्यं घटोत्पत्तिः कारणं मृत्पिण्डादिः कार्यं घटोत्पत्तिः कार्यता घटोत्पत्तौ इत्यनेन कार्य कारण भावता दर्शितेति

२८२ १८ अमृत की इक बूंद तें, अजर होत सब अङ्ग।

२८३ ७ "क्षुरी छुरी कृपाणिका" इति हेमकोषे॥

२८४ ४ आनंदघनोक्ति—नींद अज्ञान अनादि की मेट गही निज रीत। (पद नं० ४)

१६ यावद्विघ्नोत्सारण समर्थं मङ्गलत्वेन कारणता समाप्ति प्रति। (नैयायिक)

२८७ ८ दान विघन वारी सहु जियनै, अभयदान पद दाता।
लाभ विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रस माता॥
वीर्य विघन पंडित वीर्ये हणी, पूरण पदवी योगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी॥
आनन्दघनजी कृत मल्लि जिन स्तवन

२८७ १७ एगे आया (आचारांग समवायांग स्थानाङ्ग)
२८८ ६ कडे माणे कडे (भगवती)
२८८ १८ बहिरातम अघरूप (आनन्दघन-सुमतिनाथ स्तवनः)
२८८ १६ "जीवा मुत्ता संसारिणोय" (जीवविचार)
२८६ १ मदुक्ति—सत्ताभिन्नै सिद्ध अनंतै रूप अभेद (पुष्ठ).
२६० १३ आनंदघने कह्युं—चेतनता परिणामन चूकै,
१७ पुनरपि आनंदघनोक्ति—कर्त्ता परिणामी परिणामो
२६५ ७ " " वासुपूज्यस्त०)
२६२ १४ एगो मे सासओ अप्पा (संथारपोरसी)
२६४ ७ पुनः एषा मदुक्ति—उपति विनास रूप रति परिणम,
जडकै गति थिति कायरे।
अविनाशी अनघड़ चिद्रूपी, कालै तूं न कलाय रे॥१॥
रोग सोग नहीं दुख सुख भोगी, जनम मरण नहि कायरे।
चिदानंदघन सिद्ध आभासी, अमई अमम अमाय रे॥२॥
२६६ ४ " " (बहुत्तरी पद ३ पृ० ३२)
पुनःमदुक्ति—
ज्ञान शक्ति निज चेतन सत्ता, भावी जिन दिनकारै।

मत्ता अचल अनादि अबाधित, (पृ० ३५)
पुनरपि मदुक्ति—
राग दोष मिथ्या की परणित, शुद्ध सुभावन समावै।
अनकल अचल अनादि अबाधित, आतम भाव समावै।१।
(बहुत्तरी प० १४ पृ० ४५)

३६६ १३
३१६ १४
२६५ १
३०२ ६
मिथ्यात्वाविरति कषाययोगा बंध हेतव
(तत्त्वार्थसूत्र अध्या० ८)

२६५ १० परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान करम फल भावी
३०८ २ " " (आनंदघन वासुपूज्य स्त०)
पुन मदुक्ति—चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान सकति विस्तारे। (पृ० ३५)

२६६ ६ पुन मदुक्ति—गज सुकमालादिक मुनि भयौ जड सम्बन्ध विभायरे (पृ० ३२)
१३ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेण पवेइयं (आचारांग)
२० आनदघनोक्ति आतम ज्ञानी श्रमण कहावै, बीजा तौ द्रव्य लिंगीरे • (वासुपूज्य स्त०)
२१ तथा मदुक्ति-आतम ततवेत्ता तप निधनी, अन्य श्रमण न कहाय रे (पृ० ३३)

३१० १२ " " " "
२६८ २ —दरसा यूंद समुंद समानें, खबर न पावै कोई

३४२·२० आनंदघन है ज्योति समावै, अलख कहावै सोई
(आनंदघन पद नं० ७३)

२६६ ९ ,,—औधू नटनागर की बाजी, जाणै न बांभण काजी
थिरता एक समय मे ठाणै, उपजै विनसै तबही
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखै, या हम सुनी न कबही
औ० १ ॥ (पद नं० ८०)

८ एगे समेए एगा किरिया (स्थानांग)

३०१ ६ आनंदघनोक्ति—आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहि-
रातम अघरूप। (सुमतिनाथ स्त०)

१५ ,, कहा तिगोडी मोहनी हो, मोहकलाल गिंवार।
(पद नं० ८७)

१६ एषा मदुक्ति—मोहनीय के लरका लरकी, हस हस
गोद खिलावे। (पृष्ट ४६)

३०२ १२ कर्मग्रन्थ कर्त्ताए कह्यु—कीरई जिएण हेऊहिं जेणतो
भन्नए कम्मं

१५ करता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करियैरे।
एक अनेक रूप नयवादे, नियते नर अणुसरियैरे।

३१४ ७ ,, ,, (आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३०४ १ नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा। वीरियं उव-
ओगोय ग्यं जीवस्स लक्खण (उत्त० अ० २८ गा० ११)

३०५ १ यथा आनंदघनोक्ति—कनकोपलवत् पइड पुरस तणी
जोडी अनादि सुभाव (पद्मप्रभ स्त०)

४ जीवति प्राणान् धारयतिजीव—जीवेन क्रियवेयत् तत्कर्मः
१० मदुक्ति-जीव करम जाड़, है अनादि सुभावसु
(पृ० १६२)

३०८ ३ —चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान करम फल भावीरे
३१४ १७ „ ज्ञान करम फल चेतन कहिए, लेज्योतेह मनावीरे
(आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३२१ १ „ „ „
३०८ ५ विशेषावश्यक—जहमो विसेसघम्मो चेयणं तह मया किरिया
१७ भाष्ये—ननु गुणस्वभावयोर भेद् एवं तद्भेद निर्वचन धर्मभेदा भावात्
१८ तर्कसंग्रहे—गुण गुणिनो क्रिया क्रियावतो।
३०६ १ सगति मरोरै जीव की, उदै महा बलवान
३१० १० आनंदघनोक्ति—आध्यातम जे वस्तु विचारी
„ भाव अध्यातम निजगुनसाधै, तो तेहथी रढ मंडोरे (श्रेयांस स्त०)
३११ ६ अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गुंथंति गणहरा निउणा।
१३ आनंदघनोक्ति—चित पंकज खोजै सो चीनै, रमता आनंद भौरा (पद नं० २७)
२० हेमकोश—मोक्षो पायो योगो ज्ञान
३१२ ६ आगमधर गुरू समकित्ती, क्रिया संवर सार रे

संप्रदाई अवंचक सदा, सुचि अनुभवाधार रे। १।
पुनः—भजै सुगुरू संतान रे, (आनंदघन शांति स्तवन)
पुन—परिचय पातक घातक साधुसुं रे, (संभव स्त०)
३५३ २२ „ „ अकुशल अपचय चते
३१३ ११ „ आपणो आतम भावजे, एक चेतना धार रे
३२६ ५ अवर सवि साथ संयोग थी, ए निज परिकर सार रे
३२७ ६ „ „ „ (शांतिनाथ स्त०)
३१५ ४ „ दीपक घट मंदिर कियौ, सहिज सुजोत सरूप
आप पराई आपनी, जानत वस्तु अनूप
(प० नं० ४)
६ निज सरूप बालक नहिं जानै पर संगति रति मानै।
भयै सरूप ज्ञान तें भगनी, अपने पर पहिचानै॥
(देखो ज्ञानसार पद नं० १३ पृ० ४२
१७ आनंदघन—निराकार अभेद संग्राहक, भेद ग्राहक
– साकारो रे।
३१६ ४ उत्तराध्ययने—नमुणी रण्ण वासेणं
३५३ १२ „ „
३५२ ११ „ नाणेण य मुणी होई
३१६ ६ „ एयं पंचविहं नाण दव्वाणय गुणाणय
पज्जवाणच सव्वेसिं नाण नाणीहिं दंसियं
(अ० २७ गा० ५)
१४ „ नादंसणिस्स नाण नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा
(अ० २८ गा० ३०)

३२० १८ आनंदघनोक्ति—चेतनता परिणाम न चूकै, चेतन कहि जिनचंदो। (वासुपूज्य स्तवन)

३२१ ७ ,, ,, ,, ,,

३२१ १६ ,, बंध मोख निहचै नहीं हो, विवहारै लख दोय। कुशल खेम अनादि ही हो, नित्य अबाधित जोय (पद नं० ८८)

३२२ १२ भवे मोक्षे च सर्वत्र निस्पृहो मुनि सत्तम ।

३२२ १२, ३६२ ८ अभयदेवसूरि—समे मुक्खे भवेवहा,

३२२ १८ मदुक्ति—फदेन लागे कर्म, कहै आतमारामसूं इह मिथ्यामति भर्म, बंध मोख है आतमा।
(आत्मप्रबोध छतीसी पृ० १६१)

३२३ १६ आनंदघन – चतन आपा कैसे लहोई चे०
सत्ता एक अखंड अबाधित, इह सिद्धंत पछजोई १
अन्वय अरू व्यतिरेक हेतु कूं, समक रूप भ्रमखोई
आरोपित सब धर्म और है, आनंदघन तत सोई २

२८७ १७, २६४ २, २६४-६, ३१७-१६, ३४५-५, (पद नं० ५५)

३२४ १७ साता उच्च गोय मणु सुर दुग पचिंद जाय।
पांच सरीर आद मति सरीर उवग-कहाय ॥

३२५ ११ आनंदघनोक्ति—आनदघन देवेन्द्रसे योगी बहुर न कलि में आऊं रे। वाल्हा ते योगेचित्त ल्याऊं (पद नं० ३७)

३२७ २१ अप्पा कत्ता विकत्ताय

३३१ १६ आनंदघनोक्ति—तृसना रांड भांडकी जाई, कहा घर करे सवारो (पद नं० १४)
जावत तृष्णा मोह है, तुमहुं तावत मिथ्या भावो (पद नं ८०)

३३३ ११ मुत्ता निग्गंथिया दुहा
१५ गाथा—जहा मत्थ वसूइ ए हयाए हम्मए ताडो तह कम्माण हम्मंति मोहणिज्जे खयंगए १
२० आनंदघनोक्ति—सत्ता थल में मोह विडारत, ए ए सुरिजन मुह निसरी (पद नं० ११)

३३५ १५ „ "बहिरातम अघरूप" "कायादिक नो साखी धर रह्यो (सुमतिनाथ स्तवन)

३३६ ११ „ आरोपित सब धर्म और है, आनंदघन तत सोई। (पद नं० २८)
२० „ निरविकल्प रस पीजिये, तौ शुद्ध निरंजन एक।

३४३ १ पुनः—गई पुतली लौन की, थाह सिन्धु कौ लेन आपा गल इकमिक भई, सिद्ध गमन की सैन १

३४६ ६ आनंदघनोक्ति—अतिंद्रिय गुण गण मणि आगरू, इम परमातम साघ (सुमतिनाथ स्तवन)

३४८ १६ मदुक्ति—स्यादवाद जिन मत कथन, अस्ति नास्तिता रूप ता बिनको कैसे लखै, आतम शुद्ध सरूप १ (पृ० १५६)

३४६ ६ सालंबणो झाणो

३५० ५ —फल विसंवाद जेह मा नहीं, शब्द ते अर्थ संबन्ध रे

सकल नयवाद व्यापी रह्यो ते शिव साधन संधि रे
(आनंदघन—शांति स्तवन)

१५ भाव अध्यातम निजगुण साधे तो तेहथी रढ मंडो रे
(आनंदघन—श्रेयांसजिन स्तवन)

३५१ १३ पाणिनी—ऽक्ष्ण परं परोक्षं

३५२ १० मदुक्ति—"पै वंचक करणी जिती, तेती सरब असिद्ध"
निश्चै सिद्ध जौलौं नहीं, विवहारै जिय मेल।
जोलू पियफरसै नहीं, तब गुढिया सू खेल। १।
जौलूं भावै न शुद्धता, तौलूं किरिया खेल।
घानी जौलौं पीलहै, तौलौं निकसै तेल। २।
जौलौं कारज सिद्ध नहीं, तौलौं उद्यम खेद।
घट कारज की सिद्ध तें, उद्यम खेद निपेध। ३।
(भावपद् त्रिंशिका पृ० १५२)

१६ अणाइए अपज्जवसिए

३६१ ६ न देवो विद्यते काष्ठे, (चाणिक्य नीति)

३६२ ६ रतन जड़ित मंदिर तजे, सब सखियन कौ साथ
धिग मन धोखै लालके, धर्यो पीक पर हाथ। (भर्तृहरि)

३६४ ११ सद्दा भट्ठो भट्ठो, सद्दा भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
चरण रहिआ सिज्झइ, सद्दा भट्ठा न सिज्झंति ॥ १ ॥
(पाठान्तर दंसण भट्ठो०)

२० मंद मविए, दुसमा कालनै जैनिए—ज्ञानसार बहुत्तरि

३६५ २१ सिद्ध समान सदा पद मेरौ—समयसार

३६६ १३ आनंदघन—अब हम अमर भये न मरेंगे—पूरा पद
(नं० ४२)

३७० १ स्वकीय बहुत्तरी में—अनुभव हम कबके संसारी
(पूरा पद नं० १४)

१३ सिद्ध संसार समापन्नगा असंसारे समापन्नगाय नो असंसार समापन्नगा संसार समापन्नगा—पन्नवणाटीका

३७२ ५ मदुक्ति—वैदेहक बिन जो निरआसी, सोइ विडंबनभासी
याकी आस्या विन आस्यानो, बीज कौन उगासी
कामादिक सब याकी संतति, पर परणितकी मासी
यातें योगी सोच सरोगी, जौं आस्या नवि घासी
(पद नं० ३७)

३७४ आनंदघन—निरपरपंच बसै परमेसर, घटमें सूखम वारी।
आप अभ्यास लखै कोई विरला निरखै धू की तारी ॥ (पद ७)

३७५ ५ „ रेचक कुंभक पूरक कारी, मन इन्द्रिय जय कासी।
ब्रह्म रंध्र मधि आसन पूरी, अनहद तान बजासी
माहरो बालूड़ो सन्यासी ॥ (पद नं० ६)

१८ "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे, मूरख खोजै खण्डे खण्डे"

६ आनंदघन—हल चल खेल खबर ले घट की, चीन्हे रमता जल में
(पद नं० ७)

३७६ ७ „ कायादिक नो साखी धर रह्यो, अन्तर आतम रूप
(सुमति स्तवन)

३७८ १ ,, जिन सरूप थई जिन आराधे, ते सही जिनवर होवे रे (नमिनाथ स्तवन)

३८१ १७ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहूणो गुरुणो। जिणपन्नते तत्त इय समत्त मए गहियं ॥ (आवश्यकसूत्र)

३८३ 'समइय सामाइयं होइ'

३८४ ३ कुक्कड़ि पाय पसारण, अतरंत पमज्जएभूमी। संकोसिय संडासा, उवट्टंतेय कायपडिलेहा (संथारापोरसी)

१० कम्मनिज्जरागति।

१३ बारस विहो तव निज्जराय।

३८५ ६ हेया बंधा तव पुण पावा।

१८ बाल मरणेय पंडिय मरणेयं सेकिंते बालमरणे २ दुवालसविहे पन्नते—भगवती

३८६ १ पंडिय मरणे दुविहे पन्नते पाओपगमणे य भत्तपच्चक्खाणेय से किं तं पाओपगमणे दुविहे पन्नते तंजहा नीहारिमेय अनिहारिमेय नियमा अप्पडिकम्मे भत्त पच्चक्खाणे दुविहे पन्नते तं०। निहारिमेय अनिहारिमेय नियम सप्पडिकम्मे दुविहे पंडिय मरणेण मरमाणे जीवे अणतेहिं नेरइय भवग्गहणेहिं अप्पाणं वि संजोए इ वीयीं वयति —भगवती जी १० शतक

३८७ १५ तच्चेवं सामाइयमिह पढम सावज्जे जत्थ वज्जिउं जोगे समणाण होइ समोदेसेण देसविरओवि ॥ व्या० ॥ इह सामायिकं नाम प्रथमं शिक्षाव्रतं भवति यस्मिन्सा-

मायिके कृतेसति देशविरतोपि सावद्यान्मनो वाक्काय व्यापारान् वर्जयित्वा-सर्वविरतानां सदृशो भवति कथमित्याह देशेन देशोपमया यथा चन्द्रमुखी ललना समुद्रवत्तड़ाग इति इतरथा तु अस्त्येव साधु श्राद्धयोर्महान् भेदः तथाहि साधुरुत्कर्षतो द्वादशांगी मप्यधीते श्राद्धस्तु षड्जीवनिकाध्ययन मेव पुनः साधुरुत्कर्षत सर्वार्थसिद्धि विमानेष्युत्पद्यते श्राद्धस्तु द्वादशे कल्पे एव तथा साधोर्मृतस्य सुरगतिः सिद्धिगतिर्वास्यात् श्राद्धस्यतु सुरगति रेव पुनः साधोश्चत्वारः संज्वलन कषायाएव कषाय वर्जितो वाऽसौस्यात् श्राद्धस्यतु अष्टौ प्रत्याख्याना वरणाः ४ संज्वलना ४ श्रायुः पुनः साधोः पंचानां व्रतानां समुदितानामेव प्रतिपत्तिः श्राद्धस्य तु व्यस्तानां समस्तानां वा इच्छानुसारेण स्यात् तथा साधोरेकवारमपि प्रतिपन्नं सामायिकं जावज्जीव मवतिष्ठते श्राद्धस्तु पुनः पुनस्तत्प्रतिपद्यते पुनः साधोरेक व्रतभंगे सर्व व्रतभंगः स्यात् अन्योन्यं सापेक्षत्वात् श्राद्धस्तु न तथेत्यादि

३८८ १५ आसवा ते परिसवा परीसवा ते आसवा—अचारांगे

३६६ १६ " " "

३८६ ३ जो बंधो मुक्खो मुणै, तो बंधो निब्भंत।
अप्प सहावैं निम्मलो, लहु निव्वाण लहंत। समयसार

४१७ १६ " " गाथाबद्ध कलशामेंछै

३८६ १६ तहारूवेणं भंते समणं वा माहणं वा पज्जवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा गोयमा सवणफला सेणं भंते सवणे किं फले णाण फले सेण भंते भाणे किं फले विन्नाण फले एवं विन्नाणेणं पच्चक्खाण फले पच्चक्खाणेणं संयम फले संजमेणं अणण्ह फले अणण्हेणं तवफले तवेणं वोदाण फले वोदाणेणं अकिरिया फले सेणं भंते अकिरिया किं फला गो० सिद्धि पज्जवसाण फला पन्नत्ते ति अस्यार्थः हे भदंत तथारूप मुनितस्य भाव श्रमणं वा साधु माहणं वा श्रावक पर्य्युपासमानस्य जतो पर्य्युपासना तत्सेवा साध्वादि सेवा किं फला कीदृग् फल प्रदायनी प्रश्नतेतिप्रश्नः अत्रोत्तरं गौतम श्रवण फलेति सिद्धान्त श्रवण फला तत्कि फलं नाणफलेत्ति श्रुतज्ञानफलं श्रवणादि श्रुतज्ञानमवाप्यते एवं प्रतिपदं प्रश्नकार्य विन्नाण फलेत्ति विशिष्ट ज्ञान फलं श्रुत ज्ञानादि हेयोपादेय विवेक कारि विज्ञान मुत्पद्यते एव पच्चक्खाणफलेत्ति विनिवृत्ति फलं विशिष्ट ज्ञानोहि पार्यप्रत्यार्ख्याति संयम फलेत्ति कृत प्रत्यार्ख्यानस्य हि संयमो भवत्येव अणण्ह फलेत्ति अनाश्रव फलः संयमवान् किल नवं कर्मनोपादत्ते तव फलेत्ति अनाश्रवोहि लघु कर्मत्वात्तिपस्यतीति वोदाण फलेत्ति व्यवदानं कर्म्मनिर्ज्जरणं तपसाहि पुरातनं कर्म निर्ज्जरयति अकिरिया फलेत्ति योगनिरोध फलं कर्मनिर्ज्जरा तोहि योगनिरोध कुरुते सिद्धि पज्जवसाण फलेत्ति सिद्धि

लक्षणं पर्यवसान फलं सकल फल पर्यंतवर्त्ति फलं यस्याः सा (भगवती शतक २ उद्देशा ५ वां)

३६१ १७ सजमेणं भंते जीवा किं जणइ—एगंतनिज्जरेति

३६२ ६ समाणे लिट्ठ कंचणे, समेपूआवमाणेसु

१० लाघवेणं च खंतीए गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे

संवरेणं तवेणंच संजमेण मणुत्तरे

३६४ ११ निश्चैसिद्ध जौलों नहीं, विवहारै जिय मेल।

जौलों पिय फरसे नहीं, तव गुढिया सुं खेल ।।१।।

३६५ १ निश्चै हू भी सिध नहीं विवहार दे छोड।

इक पतंग आकाश मे, फिर दै डोरी तोड।।

(पृ० १५२)

३६५ ३ ठाणांगजी मे—"हेउ चउविहे पन्नते अवाते उवाते ठवणाकम्मे पडुपन्न विणासी" अपाय उपाय स्थापना कर्म प्रत्युत्पन्न विनासी

१६ समणेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ

३६६ १५ समयसार—हीन भयौ प्रभु पद जपै, मुगति कहासे होय

२० अदेवे देव सण्णा देवे अदेवसण्णा धम्मे अधम्म सण्णा अधम्मे धम्म सण्णा सुगुरे कुगुरु सण्णा कुगुरे सुगुरु सण्णा

३६८ १४ "ज्ञान क्रियाभ्या मोक्षः" यथा—मदुक्तिः—

अंध क्रिया अरु पंगु ज्ञान, इकतै सिद्ध न होय निदान

ज्ञानवन्त जो करणी करै, मोख पदारथ निहचै वरै।१।

सुद्ध सरूप धरौ तपकरो, ज्ञान क्रियातैं शिवगति वरौ।

एक ज्ञान तें मानै मोख, सो अज्ञान मिथ्यामति

३९९ ३७ अपनौ शुद्धातमपद जोवै, क्रिया विभावै मगन न होवै ।
मोख पदारथ मानै ऐसे, जिनमत तें विपरीत विसेसैं ।१।

(पृ० १५८)

घर में या वन में रहो, भेख रूप बिन भेख ।
तप संजम करणी विना, कोई न लखै अलेख ॥
कोई न लखै अलेख, विना तप संयम करणी ।
ज्ञान क्रिया ए दोय, उदधि संसार वितरणी ॥
एक ज्ञान हू मोख, मान कारण क्यों भरमै ।
तप संजम द्वै धरो, लखौ अनलख घट घरमें ॥

(पृ० १६२)

४०१ १२ "अक्खाणसिणी"

४०२ ८ कबीरपंथीनिरंजनीः—

पत्थर पूज्यां हर मिलै तो, मैं पूजूं पहार ।
सब से भली चक्की, सो पीस खाय संसार ॥

४०४ ७ मदुक्तिः—पर परणित से भिन्न भए जब, किंचित कर असमर्थी । (पृ० ६३)

१७ न्हाया कयवलिकम्मा—भगवती, तुंगिया श्रावकाधिकारे

४०५ कयवलि कम्मत्ति स्नानानंतरं कृत वलि कर्मः यैं स्वगृह देवाना—अभयदेवसूरिकृत भगवतीजी वृत्ति

४१० ७ कइविहेण भंते ववहारपन्नते गोयमा पंचविहे ववहारे पन्नते तंजहा—आगमे सुत्तं आणा धारणा जीए जहासे तत्थ आगमे सिया आगमेण ववहारं पट्ठवेज्जा णोय

से तत्थ आगमेसिया जहासे तत्थसुएसिया सुएण ववहार पट्ठवेज्जा णोवासे तत्थसुए सिया जहासे तत्थ आणा सिया आणाए ववहारं पट्ठवेज्ञा णोय से तत्थ धारणा सिया जहा से तत्थ जीए सिया जीएणं ववहारं पट्ठवेज्ञा इचे एहिंपंचहिं ववहारं पट्ठवेज्ञा तंजहा आगमेण १ सुएणं २ आणाए ३ धारणाए ४ जीएण ५ जहा जहा से आगमे सुएआणा धारणा जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्ञा से किमाहु भंते आगम बलिया समणा निग्गथा इचे तं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सि ओवसि तं सम्मं ववहारमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ। (भगवती श० ८उ०८)

४११ ३ निच्छय मग्गो मुक्खो

४१२ १० सत्तनया भवंति नैगमादयः उक्तंच—नगम, संग्रह-व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत नयाः एते च द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक लक्षणे नय द्वयेऽन्तर्भाव्यन्ते द्रव्यमेव परमार्थतो ऽस्ति न पर्याया इत्यभ्युपगमपरो द्रव्यास्तिक. पर्यायाएव वस्तुतः संति न द्रव्य मित्य-ऽभ्युपगमपरः पर्यायास्तिक स्तत्राद्यास्त्रयो द्रव्यास्तिकाः शेषास्तु पर्यायास्तिकाः (अनुयोगद्वारवृत्तौ)

१८ जीवाण भंते किं सासया असासया गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया से केणट्ठेण भंते एवं

वुच्चइ जीवा सिय सासया सिय असासया गोयमा दव्वट्टयाए सासया भावट्टयाए असासया से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ जाव सिय असासया भगवती शतक ७ उद्देश २

४१३ १२ निच्छयओ दुन्नेयं को भावे कम्मि वट्टए समणो ववहारो अकीरइ जो पुव्वट्ठिओ चरित्तंमि ॥१॥
(आवश्यक निर्युक्ति)

४१४ ३ ववहारो विहु वलवं जं छउमत्थं च वंदए अरिहा जा होइ अणा भिन्नो जाणंतो धम्मयं एयं ॥१॥ (भाष्य)

४१४ १७ निच्छय मग्गो मुक्खो ववहारो पुन्न कारणो वुत्तो पढमो संवरख्वो आसवहेओ तओ वीओ ॥ १ ॥

४१५ ६ जइ जिण मयं पवज्जह ता मा ववहार निच्छये मुयह इक्केण विणा तित्थं छिज्जइ अन्नेण ओ तत्तं ॥ १ ॥

४१६ १५ णाणं पयासकं सोहगो तवो संजमोय गुत्ति करो तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिण सासणे भणिओ ॥१॥
[भगवती उ० ८ श० १०]

४१७ १ बाह्य कष्ट देखाड़ी मुफ सरिखा घणा,
वंचे मुगध नें दे उपदेश सुहामणा। (पृ० १३७)

६ प वंचक करणी जित्ती, तेती सरब असिद्ध। (पृ० १५४)

७ ज्ञानातम समवाय है, किरिया जड़ सम्बन्ध।
यातें किरिया आतमा, तीन काल असंबंध ।१। पृ० १४८

११ धर्मी अपनें धर्म कुं, न तजै तीनूं काल।
आत्म ज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल ॥
(पृ० १४६)

४१८ १२ असंवुडेणं भंते अणगारे किं सिज्झइ वुज्झइ मुचइ परि-
निव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गो० नो इणट्ठे समट्ठे से
केणट्ठेणं भंते जाव नो अंतं करेइ गो० असंवुडे अणगारे
आउय वज्जाओ सत्तकम्म पगडीओ सिढिल बंधण
बद्धाओ घणिय बंधण बद्धाओ पकरेइ रहस्स कालट्ठियाओ
दीह कालट्ठिईयाओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणु
भावाओ पकरेइ अप्प पदेसग्गाओ बहुपदेसग्गाओ
पकरेइ आउयंचणं कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ
असाया वेयणिज्जं चणं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ
अणाइयं चं अणवदग्गं दीह मद्धं चाउरंत संसार कंतारं
अणुपरियट्टइ से तेणट्ठेणं गो० असंवुडे अणगारे
णोसिज्झइ (भगवती श० १ उ० १)

४१९ ६ पयमक्खरंपि एगंपि, जो न रोयइ सुत्त निद्दिट्ठं।
सेसं रोयंतो विहु, मिच्छदिट्ठी जमालिव्व। १।

४२० ८ मण परमोहि पुलाए, आहरग खवग उवसमे कप्पे।
संजमति केवलि सव्भणाय, जंबुम्मि विच्छन्ना। १।
(प्रवचन सारोद्धार)

१८ कलहकरा डमरकरा असमाधिकरा वहवे मुंडा अप्पे समणा

४२१ ४ निश्चय नय हृदये धरी, पालीजे विवहार।
पुण्यवंत ते पामस्यै जी, भवसमुद्र नो पार।१।
(यशोविजय, सीमंधर स्त० ढा० ५)

६ आतमगुण विध्वंसना ते अधर्म, आतमगुण रक्षणा
तेह धर्म। —देवचन्द्रजी (अध्यात्म गीता)

१८ कहण्णं भंते जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छंति गो० पाणाइवाएणं मुसावाएणं आदि मेहुणं परिग्गह कोह माण माया लोभ पेज्ज दोस कलह अब्भक्खाण पेसुन्न रति अरति परपरिवाये मायामोसं मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु गोयमा जीवा गरुयत्त हव्व मागच्छंति कहण्णं भंते जीवा लहुयत्तं हव्व मागच्छंति गोयमा पाणाइवाय वेरमणे जाव मिच्छादंसण सल्ल वेरमणेणं एवं खलु गोयमा जीवा लहुयत्त हव्व मागच्छंति एवं संसार आउली करेंति एवं परित्ति करेंति एवंदीही करेंति एवं रहस्सी करेंति एवं अणुपरियट्टंति एवं वीयी वयंति पसत्था-चत्तारि अपसत्था चत्तारि (भगवती श० १ उ० १)

४२२ १३ वचन सापेक्ष व्यवहार साचौ कह्यो, वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठौ (आनंदघन, अनंतनाथ स्तवन)

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	४	तंही	तूंही
७	९	सह्दिबा	साद्दिबा
७	१५	संसरु	संसरूँ
२८	३	पूजता	पूरता
३५	१९	धमयन्त	धर्मवन्त
३५	२५	निच्चरपाद्दिओ	निच्चु रधाद्दिओ
३६	१७	मरवय:	मन्वय:
३६	२१	*	†
३६	२१	†	*
४०	२१	जणा पक्के	जणामक्के
४१	१६	सत्वं मृ	सत्वं
४१	२०	चेरा	चेरी
४५	१७	हुन्दर	हुभर
५६	२१	अनहदघु निकुं	अनहद धुनिकुं
५७	५	वसियारा	नसियारा १
६३	६	अवाधत	अवाधित
६३	११	डदासा	ददासा
६४	१६	विवजित	विवर्जित
६३	९	रिंदन	निंदन
७५	१४	पर	परि
७५	१६	भेव	भेव
७५	१७	मान्	मानूं
७६	१६	जिन	जिन
८३	११	हंसा	हिंसा
८५	८	हर	हट
८९	८	दशन	दर्शन
९०	१८	एकांतपणं	एकांतपणु
९०	२२	निर्देशन	निदर्शन
९२	१६	खभ	खम
९२	२१	हढिया	हुंढिया
१०४	१	दखे	देखे
१०४	११	सनोठा .	सनोटा
११५	८	उजेरा	उजरा
१२२	१७	दोसे	दीवसे
१३१	३	छाड	छांड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३४	१४	घरो	घरो	२२९	४	सुमत ·	सुमता
१३७	३	यचन	वचन	२३१	१४	दण	देण
१४९	१२	कालमा	काल मां	२३८	४	छत्र	छेत्र
१५३	१०	निश्चै	निश्चै	२३९	१२	गई गई	गई
१७१	८	कोघ	क्रोध	२५१	७	स्याघाये	बाघाये
१७१	२३	सामम्भावण	समम्भावण	२५१	८	दिव्यतीति	दिव्यन
१७२	३	तप	तप १	२५१	१०	निरुपद्रववी	निरुपद्रवी
१८६	१४	पोर	पोरिसि	२५५	१८	एतल	एतले
१८९	१२	तेन	तेण	२५७	४	छ	छे
१९४	१७	उफलै	उछलै	२६०	८	न जाणे .	जाणे
१९६	१८	प्रघल	प्रबल	२७१	५	तौ	नौ
१९९	१	करवर	करिवर	२७२	२	समुद्र	समुद्र
२००	१८	धूम	भ्रम	२७२	१०	काल	काल॰
२०५	९	अपने	अपने	२७२	१०	जाल:	काल:
२०५	१५	वृभष	वृषभ	२७२	१९	परणमन	परिणमनं
२०९	१८	उपचार	उपचार	,,	,,	परणमनत्व	परिणमनत्व
२१३	१३	कदव	कदब	,,	२०	,,	,,
२२४	६	चेतनै	चेतन नै	,,	,,	,,	,,
२२५	८	विष	विपे	२७३	२	परणमनत्वेन	परिणमनत्वेन
२२५	१२	ते	स्मृते	२७३	३	स्वभावत्व	स्वभावत्वं
२२७	७	माट	माटे	२७३	५	आलखाण	ओलखाण
२२७	९	माह्नि	मोहिनी	२७३	८	नीपज	नीपजे

२७३	१०	जार	जोर	२९९	१२	आ मरव	भातमरव
२७६	३	कमैतति	कर्मैति	३००	१८	साध्यक	साधक
२७६	६	कर छो	करै छै	३०४	१५	न	नै
२७९	८	इवणो	इवणौ	३१०	२	थो	थै
२७९	५।९	सूरिः	सूरि	,,	६	एतल	एतले
,,	११	परिमलाहृत	परिमलाहृत	३११	४	कहिय	कहिये
,,	१३	गुरुः	गुरु	३२०	२०	नू	नूं
,,	१५	रित	रति	३२१	६	सत्वे	सत्वं
२८०	३	०दीप्त	०दीप्ति	,,	९	रुच	रुचि
,,	१५	तदुलैः	तदुलै	३२३	१८	सिधत	सिद्धंत
२८२	५	ललति	ललित	३२५	२१	अराधे	आराधे
२८४	८	समभिरूढ	समभिरूढ	३२६	१३	,,	,,
,,	११	सु प्रशस्त	सुप्रशस्त	३२७	१३	मात्र	मान
,,	१९	अल्लोक	अलोक	३२९	२	अतिशन	अतिशयेन
२८५	१३	०काई	०कायादि	,,	१७	प्रग	प्रगट्यो
२८८	२१	ससारणोय	सैसारिणोय	३३१	१६	प्रधान	प्रधान .
२९०	५	मेदा	मेद	३३२	७	युयन	यु जन
,,	१६	परणमयी	परणमनयी	३३६	१९	घ्याने	घ्याने
२९५	१८	इम	इण	३४३	२	साम	नाम
२९६	४	अपाततनी	अपातनी	३४६	७	मण	मणि
,,	१०	मयो	भायो	३४८	३	अतिंद्रिय	अतींद्रिय
२९७	१८	तु	ते	३४८	१२	स्व स्व	स्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१४	स्यादवाद	स्याद्वाद
३५३	२	उपकठ	उपकण्ठ
३५३	७५	अणुभोगो	अणुवओगो
३५३	२	उपकठ	उपकंठ
,,	७१	अणुभोगो	अणुवओगो
,,	१६	जगतां	जागतां
,,	,,	अभ्यस न	अभ्यसन
३५४	४	पामीज	पामीजै
,,	९	चूर्ण	चूर्णि
,,	,,	निर्युक्त	निर्युक्ति
,,	१०	अभ्यसद्	अभ्यासाद्
३५५	७	वृत्तियैं	वृत्तियैं
३५७	७	जो	"जो
,,	,,	परमप्पा	परमप्पा
,,	,,	सिद्धप्पा	सिद्धप्पा
,,	१०	पर	पर
३५८	४	किहाई	किहाई
,,	८	श्रेणकैं	श्रेणिके
,,	१०	परमेश्वरैं	परमेश्वरे
,,		श्रेणक नै	श्रेणिकने
,,		तं	तैं
३५९	२	रोगोल	रोगीले
,,	१६	ल्यावनौ	त्यावानौ
,,	१६	व्यापारो	व्यापारो
,,	२१	हसा	हिंसा
३६०	४	गमनागम	गमनागमन
,,	७	आगम	आगमन
,,	१२	कोरणैं	कारणै
३६१	१७	बांदल	बांदल
,,	१८	वुद्धि	बुद्धि
३६२	२	बुद्धे	बुद्धैं
,,	३	बुद्ध	,,
३६३	७	देख्या	देख्यौ
,,	१६	प्रत्यक्षे	प्रत्यक्ष
,,	१७	प्रमाणा	प्रमाण
३६४	१	कृपायै	कृपायै
,,	१२	सिज्झइ	सिज्झन्ति
,,	१३	भांव	भाव
,,	१५	कदास	कदा च
,,	२०	दुसमा	दुसम
३६५	६	यायावन्मात्र	यावन्मात्र
,,	११	नौ	तौ
३६६	४	व्यभ	व्यभि
३६८	१७	विशेपैं	विशेषैं

३७१	५	आत्मानु	आत्मा नु
”	७	परविगार्थे	परं गोगार्थे
”	१५	जटलादिक	जटिलादिक
३७१	१५	उचाररणउचे	उचारणउचै
३७२	७	को	जो
३७३	६	नामिना लिगना	मूलनां स्वाधिष्ठान चक्रे तेज वायुथी रेचक कुंभक पूरक करे, त्यांथी नामिना
”	७	तीजो	चोथो
”	२०	ताई	तई
३७४	१२	धू	ध्रू
”	१९	ऐगें	एगें
३७५	१८	बौजु	बोज्जु
”	१९	मह्महे	मह्मांहे
३७६	५	ह्रो	हो
”	१०	दुखनो अवेदवु	दु खने अवेदै
”	१३	पचिई	पांचेई
३७७	१०	भीजै	भोजै
”	१६	परामात्मा	परमात्मा
”	२०	का का	का
३७८	१६	गत	गति
”	१८	मती	मतो
”		सर्वं	सर्वे
३७९	१०	जाणो	आणो
”	११	कैं	कै
”	१६	भमरा	भमरी
३८०	२१	चल्या	चाल्या
३८१	१२	ओव	जीव
३८२	३	ध्मान	ध्यान
”	६	छे	छै
”	७	जे कोई द्रव्यमें	छै कोईमां नथी ते साधारण असाधारण गुण कहीजै ...
”	१५	विचयै	विनय
३८३	१	अनमी	अनामी
”	१२	ह्ते	रहते
”	१४	पढमें पोरसि	पढमे पोरिसि
”	१५	”	”
”		चउथे	चउत्थे
”	१६	”	”
”		पुणर विसज्झाय	पुणरवि सज्झाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
„	१९	समय	समवै
„		पीहर	पहुर
„	२१	सजम जापना	सयम खपना
„		पालमा	पालवा
३८४	३	कुक्कड पाव	कुक्कुडि पाय
„		अतरत	अतरत
„	४	निरचै	निश्चै
„	१४	निउर्जरा	निर्जरा
„	१६	असमव मोक्ष	असमवे मोक्ष
३८५	१	विचारी	विचारी
„	२	पुण्य	पुण्य
„	६	पुण	पुण्ण
„	१३	पाचे इपदो	पांचेई पदो
„	१८	माणेय	मरण्य
„	१९	तैं	ते
३८६	२	पा ओपगमणे	पाओप-गमणे
„	३	निपयमा	नियमा
„		अप्पडिक्कमे	अप्पडिक्कमे
„	४	सपडिक्कमे	सप्पडिक्कमे
„	५	माणो	माणे
„		अणतेहि	अणंतेहि
„	१७	आए	आपे
„	२१	पद्मासन नै	पद्मासन नै
३८७	७	गो	तो
„	७	समजसन	समज न
„	१४	०नुष्टान	०नुष्ठान
„	२०	समुदव	समुद्र इव
„		तु	तु
३८८	१	पट	पट्ट
„	२	०प्पुत्राय ते	०प्युत्तय ते
„		साद्धस्तु	श्राद्धस्तु
„	७	०ठने	०ठते
„	१०	स्हतु	स्तु
„	११	वध	बध
„	१४	कर	करै
„	१७	पौंहचवानी	पहौंचवानी
„	१६	परीसवा	परीसवा
३८९	६	करणी करणी	करणी
„	१९	सेवणे	सवणे
३९०	१	फल	फला
„		ज्ञान	ज्ञान
३९०	९	पाव	पाव
„	२०	दम्पै	द्रम्पै

३९१	६	संजल	संज्वलन
,,	१३	निर्जेरा	निर्जरा
३९२	१	उत्ताराध्यपने	उत्तराध्ययने
,,	४	मोक्ष्याभिप्राय	मोक्षाभिलाष
,,	१२	सर्वोहृष्ट	सर्वोत्कृष्ट
,,	१४	र्वीयं	वीर्य
३९३	१७	रुपं	रूप
३९४	६	जिनौ नो	जिनोनो
,,	२१	प्रत्यक्षे प्रमाणा	प्रत्यक्ष प्रमाण
३९५	५	सद	सद्
,,	११	पौहचवु	पहोंचवु
३९६	१६	पंरमेश्वर रे	परमेश्वरे
,,	१७	मिथा	मिथ्या
,,	२०	सणा	सण्णा
३९७	९	,,	,,
,,		जीत	जोसा
,,	११	तीथकरे	तीर्थंकरे
४००	३	जावियउ	जीवियाओ
,,	९	उथपै	उत्थापै
,,	२२	प्रतिकर्मणादि	प्रतिक-मणादि
४०२	१	इहाँ	इहाँ
४०३	२	किरियैं	किरिया
,,	६	ओको	लोको
,,	१३	छु	छू
,,	१५	बंध	बंध

४०४	९	अंं यमर्मैथो	अंतग्गमैथो
४०५	५	नवंगी	नवांगी
,,	१२	बलकम्मा	बलिकम्मा
,,	१६	आधुनक	आधुनिक
,,	१९	कम्मा तो'	कम्मानो
४०६	१	तेमें	तमें
४०७	२	हुव	हुवै
,,	४	कदास	कदाच
४०८	७	जोवदयो	जीवादयो
,,	२०	आलोयगा	आलोयणा
४०९	८	दयवहार	व्यवहार
,,	९	दशाश्रु त	दशाश्रुत
,,	११	निमत्तें	निमित्तें
,,	१३	तिकौ	तिकौ आज्ञा
४१०	१८	आणाए	आणाए
४११	१७	भरयजीयैं	भरतजीयैं
४१२	१	दूजा	दूजा
,,	१२	०भश्चिन्ते	०भाव्यन्ते
,,	१३	०गमरो	०गमपरो
४१३	४	ध्यवहार	व्यवहार
,,	१४	भाव	माव
४१३	१५	अप्रशस्त	अप्रशस्त
,,	१६	ज्येष्ट	ज्येष्ठ
४१४	४	धमाय ऐवं	धम्मय एवं
,,	७	होय	होइ
,,	११	छद्गस्थ	छद्मस्थ
,,	१२	स्नानकै	स्नानकै

,,	१५	जाग	जवाब
,,	१६	० रगमे ०	० गमेः-
,,	१७	निच्छिय	निच्छय
,,	२०	फद्दयौ	मह्यौ
४१५	६	निच्छियए	निच्छये
,,	१४	निमित्त	निमित्त
४१८	१३	० भत	० मंत
,,	१८	अरसाया	असाया
,,	१९	च क्षणवद्गर्ग	
४१९	६	इक पि	एग
,,	१४	० विरत	० विगति
,,	१९	प्रगटपण	प्रगटपणै
४२१	११	आध्यात्म	अध्यात्म
,,	१४	थांन	थांनै
,,	१९	आदि	अदत्त
,,		परि	परिगह
४२२	१	पाणायवाय	पाणाइवाय
,,	६	विध्वसना	विध्वसना
,,		पर	पण
४२२	१९	आध्यात्म	अध्यात्म
४२३	१६	अममत्व	अममत्व
,,	२०	अयसय	अइसय
४२४	२	वांशी	वांणी
,,	३	जगचक्षु	जगचक्षु

—:※:—

पृष्ठ ४८ पद नं० १२ त्रुटक है जिसकी पूर्ति :—

बाकी रकम और के खातै, कोई सूँ न सरूझै।
देसावर आसामी काची, सो तो मूल न सूझै ॥ अ० ॥३॥
कैसे काम रहैगो इनकौ, रखे धको नहिं खावै।
ज्ञानसार जो पूंजी सूंपै, तो लज्या रहि ज्यावै ॥अ०॥४॥

नोटः—पृ० ४४ में फुटनोट नं० १ निम्नोक्त है :—

जड़ करनैं भासो नाम मिश्रित हुई पर क्षीर नीर छै ते सप्रदेशो अव्यापक छै प्रदेशो भिन्न-भिन्न छै। क्षीर रो प्रदेश भिन्न छै नीर रो प्रदेश भिन्न छै त्यों अविभासी छै नाम चेतनता जड़ै करनै भासो छै नाम चेतनता ने जड़ता दलिया नै संयोग सम्बन्ध छै पिण समवाय सम्बन्ध नहीं।

नं० २ का फुटनोट का नं० १ और नं० ३ "तृपत" का है जो नं० २ छपा है कृपया ठीक कर लें।

प्राप्तिस्थान (२)—
श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटों की गवाड़
बीकानेर

ग्रन्थमाला के नये प्रकाशन

१. बीकानेर जैन लेख संग्रह [२६०० शिलालेख, ६० चित्र, सजिल्द १२४ पेज की विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका, बृहद् ग्रंथ] मूल्य १०)

२. समयसुंदर कृति कुसुमाञ्जली [कवि की जीवनी व ५६३ रचनाओं का बृहद् संग्रह, सजिल्द, पृष्ठ८००) मूल्य ५)

३. बीकानेर के दर्शनीय जैन मंदिर मूल्य =)

४. आत्मसिद्धि [हिन्दी पद्यानुवाद] पू० सहजानदजी भेंट

५. श्री मद् देवचन्द्र स्तव नावली [जीवनीसह] मूल्य ।)

मुद्रकः—
न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता
भारतीय मुद्रण मंदिर, बीकानेर